

तृतीय सेमेस्टर
Third Semester

लोक वित्त
Public Finance

एम.ए.ई.सी. - 602
M.A.E.C. - 602

विषय-सूची

खण्ड – 1 परिचय (Introduction)	पृष्ठ संख्या 1-85
इकाई 1- अर्थव्यवस्था में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण (Analysis of State's Economic Activities in Economy)	1-13
इकाई 2- लोक वित्त की क्षेत्र, प्रकृति और महत्व (Scope, Nature and Importance of Public Finance)	14-40
इकाई 3- लोक वित्त की अवधारणाएं और बाजार असफलता (Concepts of Public Finance and Market Failure)	41-62
इकाई 4- निजी वस्तु, लोक वस्तु और मेरिट वस्तु एवं सिद्धान्त (Private Goods, Public Goods and Merit goods and Theories)	63-85
खण्ड – 2 लोक व्यय (Public Expenditure)	पृष्ठ संख्या 86-133
इकाई 5- लोक व्यय उद्देश्य, आवंटन वितरण और स्थिरीकरण (Public Expenditure: Objectives, Allocation, Distribution and Stabilization)	86-96
इकाई 6- लोक व्यय के नियम- वैगनर एवं वाइजमैन-पीकाँक (Canons of Public Expenditure- Wagner and Wiseman-Peacock)	97-108
इकाई 7- लोक व्यय का प्रभाव- उत्पादन, वृद्धि, वितरण और स्थिरीकरण (Effects of Public Expenditure- Production, Growth, Distribution and Stabilization)	109-119
इकाई 8- कार्यात्मक वित्त (Functional Finance)	120-133

खण्ड – 3 लोक राजस्व (Public Revenue)	पृष्ठ संख्या 134-171
इकाई 9- करारोपण के सिद्धान्त एवं वर्गीकरण (Canons and Classification of Taxation)	134-146
इकाई 10- करारोपण का प्रभाव उत्पादन, वृद्धि, वितरण और संसाधनों के आवंटन पर (Effects of Taxation on Production, Growth, Distribution and Allocation of Resources)	147-158
इकाई 11- करापात एवं कर विवर्तन (Incidence and Shifting of a Tax)	159-171
खण्ड – 4 लोक उद्यम (Public Enterprises)	पृष्ठ संख्या 172-207
इकाई 12- लोक उद्यमों के प्रकार, महत्व एवं उपयोगिता (Types, Importance and Use of Public Enterprises)	172-183
इकाई 13- लोक उद्यमों की कीमत नीति प्रबन्धित कीमते एवं आधिक्य सृजन (Public Policy of Public Enterprises, Restricted and Excess Buoyancy)	184-195
इकाई 14- लोक उद्यमों का कल्याणकारी प्रभाव एवं चुनौतियाँ (Welfare effects and Challenges of Public Enterprises)	196-207

Suggested Readings:

1. Agarwal, R.C. (2007) *Public Finance—Theory and Practice*, Lakshmi Naraiian Agarwal, Agra
2. Atkinson, A. B. and J. E. Stiglitz (1980) *Lectures on Public Economics*, Tata McGraw Hill, New York
3. Auerbach, A. J. and M. Feldstern (Eds.) (1985) *Handbooks of Public Economics*, Vol. 1, NorthHolland, Amsterdam
4. Buchanan, J.M. (1970) *The Public Finances*, Richard D, Irwin, Homewood
5. Chaudhury, R.K. (2008) *Public Finance and Fiscal Policy*, Kalyani Publishers, Ludhiana
6. Dalton, H. (2004) *Principles of Public Finance*, Allied Publishers Private Limited, New Delhi
7. Goode, R. (1986) *Government Finance in Developing Countries*, Tata McGraw Hill, New Delhi
8. Houghton, E. W. (Ed.) (1988) *Public Finance*, Penguin, Baltimore.
9. Jha, R. (1998) *Modern Public Economics*, Routledge, London
10. McNutt, P. (2002) *The Economics of Public Choice*, Edward Elgar Publishing Limited, U.K.
11. Mithani, D.M. (1998) *Modern Public Finance*, Himalaya Publishing House, Mumbai
12. Mueller, D. C. (1979) *Public Choice*, Cambridge University Press, Cambridge
13. Musgrave, R. A. (1959) *The Theory of Public Finance*, McGraw Hill, Kogakhusa, Tokyo
14. Sury, M.M. (2010) *Finance Commissions and Fiscal Federalism in India*, New Century Publications, New Delhi

इकाई-1 अर्थव्यवस्था में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण
(Analysis of State's Economic Activities in Economy)

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 आधुनिक राज्यों की आर्थिक क्रियाएं
- 1.4 राज्य के आर्थिक क्रियाओं के वृद्धि के कारण
- 1.5 राज्य की आर्थिक क्रियाओं की सीमाएं
- 1.6 आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका
- 1.7 अभ्यास प्रश्न
- 1.8 सारांश
- 1.9 शब्दावली
- 1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्राचीन काल से ही व्यवस्था को सामान्य बनाए रखने के लिए लोगो के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में राज्य द्वारा किसी न किसी रूप में हस्तक्षेप किया जाता रहा है। प्राचीन एकतंत्रीय शासन व्यवस्था में राज्य का कार्य क्षेत्र सीमित था और उसका कार्य केवल वामा आक्रमण से देश की सुरक्षा करना तथा आंतरिक शांति व्यवस्था को बनाए रखना था। इस तरह राज्य का कार्यक्षेत्र न्याय, पुलिस तथा सेना तक ही समित रहता था। परन्तु 19वीं शताब्दी के पश्चात इस दिशा में एक नया मोड़ आया। सार्वजनिक जीवन में राज्य के हस्तक्षेप को आवश्यक समझा जाने लगा। परम्परावादी व्यवस्था जो व्यक्तिवाद पर आधारित और स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की समर्थक थी, को कुछ प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों जैसे- **वैगनर, फैड्रिकलिस्ट, कार्लमाक्स, प्रो० लास्की, जी०वी०से तथा जे०एम० कीन्स** ने अनुपयुक्त बताते हुए सरकारी हस्तक्षेप एवं सरकारी व्यय की वकालत की।

आर्थिक विकास के अध्ययन में रूचि रखने वाले चिंतकों की धारणा है कि तीसरी दुनिया के गरीब राष्ट्र तक अपने आर्थिक स्तर को ऊँचा नहीं उठा सकते जब तक इन राष्ट्रों की सरकारें आर्थिक विकास में सक्रिय भूमिका न निभाएँ। यदि अर्धविकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास के लिए आर्थिक प्रणाली की स्वतंत्र क्रियाशीलता को स्वीकार कर लिया गया होता तो एशिया के अधिकांश देश आज भी भोजन, वस्त्र एवं रोजगार के लिए परेशान न रहते। इस संदर्भ में लिस्ट लिखते हैं कि **“अनुभव इस सत्य को उजागर करता है कि हवाएँ बीजों को उड़ाकर दूर-दूर ले जाती हैं और उन बीजों के कारण ही बंजर भूमि पर सघन वन उग आए हैं। परन्तु इस रूपांतरण हेतु हवाओं की प्रतीक्षा करना क्या बुद्धिमानी की बात होगी।?”**

इसके अतिरिक्त अर्धविकसित देशों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में अनेकानेक कठिनाईयों का समाना करना पड़ता है। ऐसी दशा में सरकार के सहयोग के बिना इन देशों के में सुधार आना कठिन होगा। इसके सा ही सम्पूर्ण देश के प्रत्येक क्षेत्र का विकास करना सरकार का दायित्व होता है। सरकार यह देखती है कि देश का कौन सा हिस्सा अभी विकास की दृष्टि से पिछड़ा है और किस प्रकार इस क्षेत्र के पिछड़ेपन को दूर किया जाए। राज्य इस बात की भी व्यवस्था करता है कि देश का तीव्र गति से विकास करने के लिए संसाधनों का संग्रह तथा आवंटन किस प्रकार किया जाए। इसके साथ ही अर्थव्यवस्था को कुछ गिने-चुने व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित होने से बचाने तथा उपभोक्ताओं एवं उत्पादकों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए सरकारी हस्तक्षेप उचित समझा जाने लगा। इस संदर्भ में आर्थर लुइस का कथन है कि, **“कोई देश अपनी बुद्धिमान सरकार के सक्रिय सहयोग के बिना आर्थिक विकास नहीं कर सकता।”** स्पष्टता आर्थिक जीवन में राज्य का सीन महत्वपूर्ण हो चुका है।

इस तरह राज्य हस्तक्षेप जो पहले अत्यंत सीमित था, उसमें धीरे-धीरे विस्तार होने लगा। समाजवादी विचारधारा लोकतंत्रीय शासन प्रणाली और कल्याणकारी राज्यों की सीपना से राज्य के कार्यक्षेत्र में और भी वृद्धि हुई। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में तीव्र आर्थिक विकास की इच्छा और आर्थिक नियोजन की व्यापकता ने सरकारी हस्तक्षेप को प्रगतिशील सरकार की आवश्यक निशानी बना दिया। आज स्थिति यह है कि राज्य मानव जीवन के हर क्षेत्र में प्रवेश कर चुका है और उसके कार्यों का दायरा बढ़ता जा रहा है। अब लगभग सभी प्रकार के राजनीतिक, अर्थिक तथा सामाजिक कार्य राज्य द्वारा ही किए जाते हैं।

आज समाज भी उससे बहुत से ऐसे कार्यों की आशा करने लगा है। पहले कोई सोचता भी नहीं था जैसे- सामाजिक सुरक्षा, मुल्य नियंत्रण तथा धन का समाज वितरण आदि। स्पष्टतया राज्य का कार्य राजनैतिक सुरक्षा एवं शांति व्यवस्था मात्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि समाज में संतुलन व्यवस्था उत्पन्न करना तथा प्रत्येक नागरिक के हित में कार्य करना भी है। आज मानव जीवन के सम्पूर्ण कार्यकलापों पर राज्य का आधिपत्य है। सत्य हो यह है कि अब राज्य **“गर्भ से शमशान भूमि तक मनुष्य की देखभाल करता है।”** प्रो० लास्की के अनुसार राज्य,

“समाज के महाराज की आधारशिला है जो उन हजारों मानव जीवनों के रूप और प्रकृति को साँचे में ढालता है जिनके भाग्य की सुरक्षा का दायित्व उस पर है।” इस तरह वर्तमान युग की जनतंत्रीय शासन प्रणाली में सरकार के कार्यकलापों में पर्याप्त वृद्धि हो चुकी है। कल्याणकारी राज्यों की सीपना के बाद आर्थिक नियोजन एवं नियोजित आर्थिक विकास के प्रयासों से राज्यों के क्रियाकलापों में पर्याप्त बदलाव आ गया है।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे

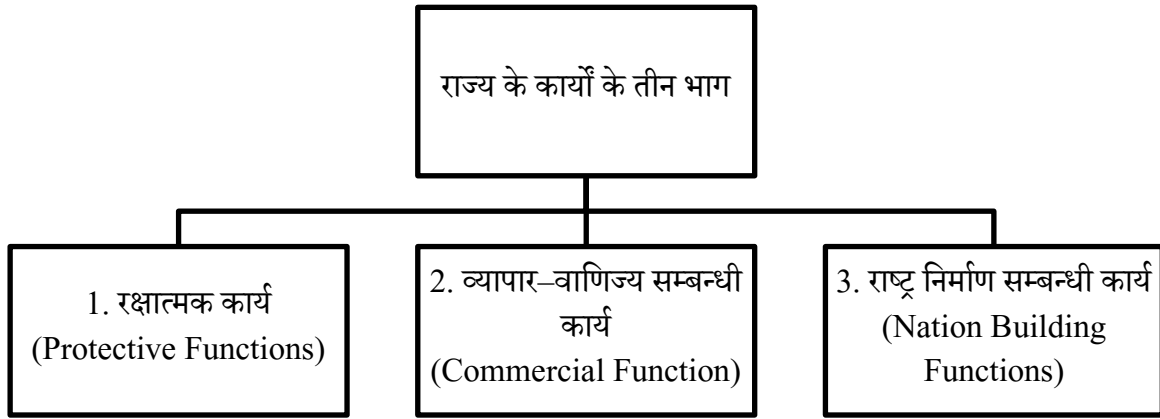
- ✓ देश के अर्थव्यवस्था में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का पता लगाना।
- ✓ राज्य के आर्थिक क्रियाओं के वृद्धि के कारणों की जानकारी प्राप्त करना।
- ✓ राज्य को किस सीमा तक आर्थिक क्रियाओं में भाग लेना चाहिए, इस बात की जानकारी प्राप्त करना।
- ✓ आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका का पता लगाना।
- ✓ अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में तेजी लाने के लिए सरकार के उत्तरदायित्व का पता लगाना।

1.3 आधुनिक राज्यों की आर्थिक क्रियाएँ (Economic Activities of Modern States)

लोक वित्त के क्रमिक विकास का अध्ययन करने से इस तथ्य की जानकारी प्राप्त होती है कि देश काल एवं पारिस्थितियों में अउए परिवर्तन के साथ-साथ अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप में भी परिवर्तन आता गया। प्राचीन काल में जहाँ राज्य का कार्य बाह्य आक्रमणों से देश की सुरक्षा करना तथा आंतरिक शान्ति को बनाए रखना मात्र था वहीं आज प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था में नागरिकों के जन्म से लेकर मृत्यु तक के समस्त क्रियाकलापों एवं आर्थिक क्रियाओं में सरकार का स्पष्ट हस्तक्षेप दिखाई पड़ता है। जनहितकारी कार्यों में लाभ का अभाव होने से निजी साहसी इस क्षेत्र के विकास में आगे नहीं आते, अतः सरकार इन क्षेत्रों में हस्तक्षेप कर सरकारी क्षेत्र विस्तार करती है। आर्थिक अस्थिरता, एकाधिकार, प्राकृतिक सम्पदा का अपव्यय, दुर्लभ एवं बहुमूल्य खनिजों का अकुशल प्रबंध, विदेशों को मेधा का पलयान, तस्करी, बेरोजगारी, व्यापार एवं भुगतान असंतुलन, अशिक्षा, मुद्रा-प्रसार एवं संकुचन आदि अनेक प्रकार की आर्थिक बुराइयों को रोकने हेतु राज्य की प्रतिनिधि सरकार ही उपयुक्त समझी जाती है। इन समस्याओं के समाधान हेतु सरकारी हस्तक्षेप का अधिकार क्षेत्र बढ़ाया ही जा रहा है।

डॉ० डी. ब्राइट सिंह के अनुसार, “प्रगतिशील अर्थव्यवस्थाओं में सरकारी हस्तक्षेप पूँजीवादी संकट के निदान के रूप में पनपा है, परन्तु अल्पविकसित देशों में राज्य ने अपनी आर्थिक शक्ति प्रचलित पिछड़ेपन के कारण ही बढ़ाई है।” इस तरह, वर्तमान समय में राज्य एक नहीं अपितु अनेक कार्यों का प्रतिपादन करता है। राज्य के कार्यों को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. रक्षात्मक कार्य (Protective Functions)
2. व्यापार-वाणिज्य सम्बन्धी कार्य (Commercial Function)
3. राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी कार्य (Nation Building Functions)



1. **रक्षात्मक कार्य (Protective Functions):-** राज्य का यह प्राचीनतम एवं परम्परागत कार्य है। वाह्या आक्रमण से देश की सुरक्षा करना तथा आंतरिक शान्ति स्थापित करना राज्य की प्रमुख कार्य होता है। राज्य यह कार्य आदि काल से ही करता आ रहा है। राष्ट्रों के उद्भव एवं विकास के साथ-साथ आंतरिक शान्ति एवं वाह्या आक्रमण से सुरक्षा सम्बन्धी कार्यों का भार राज्यों के ऊपर बढ़ता ही जा रहा है। वर्तमान समय में तो राष्ट्र अपने मित्र राष्ट्रों की सुरक्षा पर भी प्रत्यक्ष एवं परोक्षरूप से व्यय करते हैं। युद्ध में काम अपने वाले अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करना, युद्ध कला की गोपनीयता बनाए रखना तथा शत्रु देशों की युद्धकला एवं सुरक्षा सम्बन्धी जानकारी हेतु गप्तचरों की व्यवस्था करना भी सरकारों का ही कार्य होता है। आज सरकारें यु0 की नवीन तकनीकों को विकसित करने, नवीन युद्धकला तथा नवीन हथियारों के आविष्कार पर भारी मात्रा में व्यय कर रही हैं। इस तरह रक्षा उपकरणों एवं तकनीकों के उत्पादनों एवं आविष्कार पर व्यय करना आधुनिक सरकारों का एक प्रमुख कार्य है।
2. **व्यापार-वाणिज्य सम्बन्धी कार्य (Commercial Function):-** देश में व्याप्त आर्थिक असमानता को दूर करने, वितरण व्यवस्था को न्यायोचित बनाने तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य से आधुनिक राज्यों ने व्यापार एवं वाणिज्य सम्बन्धी कार्यों को अपने हाथ में ले लिया है। आंतरिक एवं अंतरराष्ट्रीय व्यापार एवं प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन पर नियंत्रण तथा जनहित में राष्ट्रीय महत्व के उद्योग-धन्धों का नियमन एवं संचालन करना आधुनिक सरकारों का प्रमुख कार्य है। समाजवादी देशों में तो वाणिज्य एवं व्यापार सम्बन्धी समस्त कार्य सरकारों द्वारा ही किए जाते हैं। पूँजीवादी देशों में भी सुरक्षा एवं राष्ट्रीय महत्व के उद्योग-धन्धों का संचालन सरकार द्वारा ही किया जाता है।
3. **राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी कार्य (Nation Building Functions):-** प्राचीन काल के शासकों से लेकर वर्तमान समय तक की सरकारें राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी कार्यों हेतु प्रतिबद्ध रही हैं। प्राचीन काल में एक राज्य से दूसरे राज्य पर आक्रमण करने हेतु सेनाओं के आने-जाने के लिए अथवा अन्य राज्यों के साथ व्यापार स्थापित करने के लिए शासकों द्वारा सड़कों का निर्माण किया जाता था। इसके साथ ही सड़कों के किनारे छायादार वृक्षों, धर्मशालाओं, सरायों, मंदिरों, स्कूलों तथा मठों का निर्माण भी शासकों द्वारा किया जाता था। भारत में अशोक महान द्वारा जनहित में किए गए अनेकों कार्य इसके उदाहरण हैं। इसी तरह शेरशाह सूरी ने आवागमन की सुविधा हेतु कलकत्ता से पेशावर तक सड़क का निर्माण कराया जिसे आज ग्रैण्ड ट्रंक रोड के नाम से जाना जाता है। आज राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी इन कार्यक्रमों पर सरकारें विशेष ध्यान दे रही हैं। यथा यातायात एवं दूरसंचार, मानव संसाधन विकास कार्यक्रम, पर्यावरण

सुधार, कृषि एवं विज्ञान की प्रगति से सम्बन्धित शोध कार्यक्रम तथा सामरिक महत्व के साज-समानों का उत्पादन एवं विकास कार्यक्रम आदि। आर्थिक विकास हेतु आधारभूत उद्योगों की सपना, सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं का निर्माण एवं उत्पादन तथा अन्य जनकल्याणकारी कार्य भी आज सरकारों द्वारा किया जाता है। देश की जनता को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना कल्याणकारी राज्य के कार्यों में सबसे प्रमुख है। आज राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी कार्यों का सही-सही अनुमान लगाना कठिन है। इस सम्बन्ध में इतना कहना पर्याप्त है कि इस मद से देश हित एवं जन हित में आने वाले लगभग सभी कार्यों को सम्मिलित कर लिया गया है।

1.4 राज्य की आर्थिक क्रियाओं की वृद्धि के कारण (Factors Responsible For Increasing State's Economic)

वर्तमान समय में देश के आर्थिक क्रियाकलापों में सरकार की भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। जिसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं।

1. **आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष सहभागिता (Direct Participation in Economic):-** आज प्रत्येक राष्ट्र तीव्रगति से आर्थिक विकास हेतु प्रतिबद्ध है जिसके लिए अतिरिक्त साधनों की व्यवस्था करना तथा उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलम उपयोग करना आवश्यक होता है। विकासशील देशों के समक्ष पूँजी की कमी तथा साहसी वर्ग के अभाव की समस्या होती है। अतः ऐसे देशों में सरकारें पूँजी निर्माण कार्य, आधारभूत उद्योगों की सपना तथा सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं के निर्माण के कार्य को अपने हाथों में ले लेती है। ऐसे देशों में पूँजीगत परियोजनाओं में जहाँ निजी निवेश उत्साहित नहीं होता, वहाँ सरकार स्वयं निवेश करना प्रारंभ कर देती है। इसके अतिरिक्त कुछ उद्योग एवं योजनाएँ ऐसी होती हैं जिनका संचालन सरकार के संरक्षण में ही उपयुक्त समझा जाता है यथा-सामरिक महत्व के उद्योग एवं विदेशी विनिमय नियंत्रण आदि।
2. **जनहित से सम्बन्धित कार्य (Works related to Public Welfare):-** आज समस्त राष्ट्रों में जनकल्याणकारी सरकारें कार्यरत हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य देश की जनता के सामान्य कल्याण में वृद्धि करना है। इसके लिए सरकारें जनहित की सामूहिक योजनाएँ चलाती हैं। जैसे-सामाजिक बीमा, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात एवं संचार सेवाएँ आदि। इसके अतिरिक्त आर्थिक शोषण से मुक्ति हेतु भी सरकारें जागरूक रहती हैं तथा यह व्यवस्था करती हैं कि जनता को उसकी आवश्यकता की वस्तुएँ सहजता से सुलभ हो सकें।
3. **गरीबी एवं बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रम (Eradication of Poverty and Unemployment Programme):-** विश्व की समस्त सरकारें विशेषकर विकासशील देशों की सरकारें गरीबी उन्मूलन एवं बेरोजगारी की समाप्ति हेतु सतत प्रयासरत हैं जिसके लिए सरकारें तरह-तरह की योजनाएँ चलाती हैं जिन पर भारी मात्रा में धन व्यय करने की आवश्यकता पड़ती है। बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने में निजी क्षेत्र का योगदान निराशाजनक रहा है, अतः सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण कार्यों में वृद्धि करके लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने का कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त गरीबों के हित में अनेक विकास कार्यक्रम चलाती हैं तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से उन्हें सस्ती दर पर अथवा निःशुल्क आवश्यक वस्तुओं को उपलब्ध करती हैं।
4. **संतुलित आर्थिक विकास का कार्य (Work for Balanced Economic Development):-**

संसार के अधिकांश देशों विशेषकर अल्पविकसित देशों में संतुलित आर्थिक विकास नहीं हो पाया है। इन देशों में कुछ क्षेत्रों में विकास हो चुका रहता है जबकि कुछ क्षेत्र विकास से अछूते रहते हैं, अतः इन देशों में सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन स्तर में समानता लाने के लिए देश के अविकसित भागों का विकास करना अत्यंत आवश्यक होता है ताकि समाजिक समानता तथा संतुलन बना रहे। निजी उद्यमी उनही क्षेत्रों में धन विनियोजित करते हैं जिससे उन्हें लाभ प्राप्त होता है। इससे क्षेत्र विशेष में उपलब्ध मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन नहीं हो पाता। अतः सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के माध्यम से सरकार वहाँ विकास का बीड़ा उठाती है जिसके लिए भारी मात्रा में सरकारी व्यय की आवश्यकता पड़ती है।

5. **आर्थिक विषमता को कम करना तथा पूँजी की संचय करना (Removal of Economic Disparity and Capital Formation):-** विकासशील देशों में आर्थिक विषमता व्याप्त रहती है तथा पूँजी निर्माण की दर नीची होती है। इन देशों में निर्धनता का दुःख देखने में आता है। प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण घरेलू बचतें कम होती हैं। आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक होता है। इसी तरह पूँजी की कमी को दूर करने के लिए भी सरकार तरह-तरह का प्रयास करती है। इससे आर्थिक क्रियाओं में सरकार की सहभागिता बराबर बढ़ती जा रही है।
6. **नियमन एवं नियंत्रण (Regulation and Control):-** सरकार देश के आर्थिक जीवन को नियमित एवं नियंत्रित भी करती है। सराकर उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के हितों की रक्षा करने के लिए एकाधिकारियों की क्रियाओं, मूल्य स्तर में हाने वाले उतार-चढ़ावों, मुद्रास्फीति, मुद्रा-संकुचन तथा व्यापार चक्र पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयास करती है। इसके साथ ही सरकार हानिकारक एवं नशीली वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रय पर नियंत्रण लगाती है तथा वस्तुओं की पूर्ति एवं उनकी गुणवत्ता को बनाए रखने हेतु कानून बनाती है तथा उस कानून को तोड़ने वाले को दण्ड भी देती है। सरकार श्रमिकों के हितों की सुरक्षा के लिए श्रमिकों एवं मालिकों के सम्बन्धों को नियमित करती है। राष्ट्र हित में देश में उपलब्ध तथा आयातित संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग हो तथा तस्करी की प्रवृत्ति हतोत्साहित हो, सरकारी इस बात की भी व्यवस्था करती है। इस तरह देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सरकार इस तरह का प्रयास करती है। कि देश में आर्थिक व्यवस्था बनी रहे। इस व्यवस्था को असफल बनाने का प्रयास करने वाले व्यक्ति अथवा संस्था को दण्डित किया जाता है।
7. **राष्ट्र के आर्थिक ढाँचे की रक्षा करना (Maintenance of the Economic Framework of the Nation):-** राज्य देश के आर्थिक जीवन के स्वरूपा एवं स्वभाव को निर्धारित करता है। राज्य देश की पारिस्थितियों को ध्यान में रखकर यह निश्चित करता है कि देश के आर्थिक जीवन का ढाँचा कैसा हो तथा उसको किस प्रकार स्थायी बनाए रखा जाए। राज्य आर्थिक ढाँचे को सुरक्षित रखने के लिए कानून बनाता है तथा कार्यरूप में परिणत करता है।
8. **आर्थिक स्थिरता (Economic Stability):-** देश में आर्थिक स्थायित्व को बनाए रखना भी सरकार का दायित्व होता है। सरकार मूल्यों में स्थिरता तथा उत्पादन एवं रोजगार के स्तरों को ऊँचा तथा स्थायी बनाए रखने का कार्य भी करती है। जिसके लिए वह सार्वजनिक व्यय, कराधान तथा सार्वजनिक ऋण आदि का सहारा लेती है।
9. **जनोपयोगी सेवाएँ (Public Utility Services):-** मानवीय आवश्यकताओं में वृद्धि होने के साथ-

साथ आज उत्पादन एवं वितरण की प्रणालियाँ भी बहुत जटिल हो गयी है अतः यह आवश्यक हो गया है कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति में राज्य पर्याप्त सहायता करें। इसे दृष्टिगत रखते हुए राज्य ने बहुत सी जनोपयोगी सेवाओं का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया है। जैसे- यातायात एवं संचार, पानी एवं बिजली की व्यवस्था आदि।

10. **जोखिम का अल्पीकरण (Minimization of Risks):-** सरकार विभिन्न प्रकार के जोखिमों के दुष्परिणामों से समाज को बचाने का प्रयास करती है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप आज आर्थिक जीवन बहुत ही अनिश्चित हो गया है। औद्योगिकरण में वृद्धि के परिणामस्वरूप दुर्घटना, बीमारी, बेरोजगारी तथा व्यापार चक्रों के दुष्परिणामों सामने आने लगे हैं। समाज को इन समस्याओं के बचाने का कार्य भी सरकार का है।
11. **आर्थिक सहायता (Economic Assistance):-** व्यक्तियों को उनकी आर्थिक क्रियाओं के संचालन हेतु सरकार आर्थिक सहायता प्रदान करती है। सरकार कृषकों को समय-समय पर ऋण उपलब्ध कराती है। उपदान (Subsidy) देती है, करों में छूट देती है तथा तकनीकी सहायता उपलब्ध कराती है। उद्योगों को संरक्षण प्रदान करती है। उचित मूल्य पर वस्तुओं की बिक्री हेतु बाजारों का नियमन करती है। तथा भण्डारण की व्यवस्था करती है। सरकार व्यक्तियों को व्यवसाय, मूल्य तथा विपणन सम्बन्धी सूचनाएँ उपलब्ध कराकर आर्थिक जीवन की अनिश्चित एवं बाधाओं को दूर करती है।
12. **मानव संसाधन विकास कार्यक्रम (Human Resource Development Programme):-** देश में आर्थिक विकास को गतिशील बनाने के लिए सरकार द्वारा मानव संसाधन विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। स्वस्थ एवं सुशिक्षित श्रम के बिना देश के वांछित प्रगति संभव नहीं होती। साधनों के अभाव में व्यक्ति स्वयं की शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास एवं पौष्टिक भोजन की समुचित व्यवस्था नहीं कर पाता। अतः यह कार्य सरकार को करना पड़ता है।
13. **युद्ध एवं अंतर्राष्ट्रीय मामले (War and International Affairs):-** देश की सुरक्षा करना तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को सौहार्द्रपूर्ण बनाए रखना भी सरकार का दायित्व होता है। देश की सुरक्षा के लिए वर्तमान सरकारों को अधिक साधन जुटाने होते हैं। आधुनिक युद्ध अत्याधिक महँगे होते हैं तथा सम्पूर्ण देश के आर्थिक जीवन एवं आर्थिक स्थिरता को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। सरकार को युद्ध हथियारों के उत्पादन एवं यद्ध तकनीकों एवं उपकरणों के आयात तथा सैनिकों की व्यवस्था पर भारी मात्रा में धन की आवश्यकता पड़ती है। युद्ध होने पर उससे होने वाली हानि की भरपाई करनी होती है। अतः वर्तमान सरकारें मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने तथा आपसी आर्थिक सहयोग एवं व्यापार को बढ़ावा देने के लिए कूटनीतिक प्रयास करती हैं। इसके लिए एक देश, दूसरे देश में दूतावास खोलता है तथा उसमें कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। एक देश से दूसरे देश में शिष्टमण्डल आते-जाते रहते हैं, नागरिकों की शिक्षा एवं संस्कृति का आदान-प्रदान होता रहता है। इससे सरकार के आर्थिक कार्यों में पर्याप्त वृद्धि हो गयी है।
14. **आर्थिक नियोजन (Economic Planning):-** वर्तमान समय में आर्थिक नियोजन राष्ट्रों की आर्थिक नीति का प्रमुख अंग बन गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सरकार को भारी मात्रा में धन व्यय करना पड़ता है। जिसकी पूर्ति हेतु सरकार कर लगाती है, ऋण लेती है तथा घाटे का बजट बनाती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन भले ही कुछ कम महत्वपूर्ण हो परन्तु समाजवादी एवं अल्पविकसित देशों में आर्थिक नियोजन अत्यधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होता है।

इस तरह स्पष्ट है कि देश के आर्थिक जीवन में सरकार की सहभागिता तथा हस्तक्षेप दिन प्रतिदिन निरंतर बढ़ता जा रहा है। यदि यही प्रवृत्ति विद्यमान रही तो वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य हर कार्य के लिए राज्य पर निर्भर हो जाएगा।

1.5 राज्य की आर्थिक क्रियाओं की सीमाएं (Limitations of State's Economic Activities)

इसमें संदेह नहीं कि आर्थिक विकास को गति प्रदान करने तथा सामाजिक कल्याण में वृद्धि हेतु देश की आर्थिक क्रियाओं में सरकार की सहभागिता उचित एवं वांछनीय है। परन्तु राज्य को किस सीमा तक आर्थिक क्रियाकलापों में भाग लेना चाहिए इस सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं

1. **पूर्ण सरकारी हस्तक्षेप (Complete State intervention):-** इस विचारधारा के समर्थकों का मत है कि विकास सभी कार्यों को सरकार द्वारा अपने नियंत्रण में रखना चाहिए। यदि न कार्यों को निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया जायेगा तो अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त करना संभव नहीं हो सकेगा। समाजवादी विचारधारा से प्रभावित इन विचारकों को मत है कि समस्त संसाधनों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण सीपित करते हुए सरकार को साहसी की भूमिका निभानी चाहिए और सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना करनी चाहिए। सरकार द्वारा आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया अपनाते हुए देश का तेजी से विकास किया जाना चाहिए। विकास का कार्य निजी क्षेत्र पर छोड़कर प्रतीक्षा करने से देश को तेजी से आर्थिक विकास नहीं किया जा सकेगा।
2. **क्रमिक हस्तक्षेप की भूमिका (Concept of Gradual Interference):-** इस विचारधारा के समर्थकों का कथन है कि सरकार को आर्थिक क्षेत्र में एकाएक प्रभावी ढंग से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए बल्कि क्रमशः धीरे-धीरे तथा जहाँ आवश्यकता हो, वहीं हस्तक्षेप करना चाहिए। कभी-कभी आवश्यकता से अधिक सरकारी हस्तक्षेप अर्थव्यवस्था के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। सरकार को देश की परिस्थितियों के अनुरूप ही आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप करना चाहिए।

परन्तु अल्पविकसित देशों में जहाँ व्याप्त रहती है तथा पूँजी निर्माण की गति धीमी और पूँजीगत वस्तुओं को नितांत कमी रहती है, वहाँ आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप के बगैर तेज नहीं किया जा सकता है। समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रणाली को अपनाया गया है जहाँ निजी क्षेत्र के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र में भी उद्योगों की स्थापना की गयी है। सरकार की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से ही निजी क्षेत्र फलता-फूलता है। इसलिए सरकार भी निजी उद्यमियों के सक्रय सहयोग के बिना अधिक समय तक सफल नहीं हो सकती। निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों की अपनी-अपनी कमियाँ तथा सीमाएँ हैं फिर भी देश के आर्थिक विकास में दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। अतः सरकारी हस्तक्षेप को मध्यमार्गी होना चाहिए।

1.6 आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका (Role of Government in Economic Development)

आर्थिक विकास हेतु किए जाने वाले सरकारी उपायों की निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(क) प्रत्यक्ष उपाय (Direct measures)

(ख) परोक्ष उपाय (Indirect Measures)

(क) प्रत्यक्ष उपाय (Direct measures):- प्रत्यक्ष उपायों के अन्तर्गत निम्न बातों को सम्मिलित किया जाता है-

1. **औद्योगीकरण में प्रत्यक्ष भागीदारी (Direct Participation in Industrialisation):-** देश में

औद्योगिक एकाधिकार को नियंत्रित करने हेतु सामाजिक न्याय की दृष्टि से उपभोक्ताओं एवं श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिए तथा निजी निवेश की कमी को पूरा करने के लिए सरकार स्वयं औद्योगिकरण की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भाग लेकर सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना करती है।

2. **उत्पत्ति के साधनों को गतिशील बनाना (Mobilize the Factors of Production):-** अल्पविकसित देश में उत्पादन से साधन गतिहीन अवस्था में सुप्त पड़े रहते हैं जिससे उनके विकास की गति बहुत धीमी रहती है। अतः सरकार साधनों की गतिशीलता तथा उनके उचित उपयोग हेतु प्रयास करती है। अल्पविकसित देशों में कृषि की प्रधानता, तकनीकी ज्ञान की कमी, पूँजी का अभाव तथा कुशल साहसियों की कमी रहती है। जिससे इन देशों के विकास की प्रक्रिया स्वस्फूर्त नहीं होती है। सरकार साहसियों को प्रोत्साहित कर उन्हें आर्थिक संरक्षण प्रदान कर नवीन प्राकृतिक साधनों की खोज कर तकनीकी शिक्षा तथा कुशल श्रमिकों की व्यवस्था कर पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को बढ़ावा देकर आर्थिक विकास के कार्यों को आगे बढ़ा सकती है।
3. **संस्थागत तथा संगठनात्मक परिवर्तन लाना (Bringing our Institutional and Organisational Changes):-** आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में संस्थागत एवं संगठनात्मक परिवर्तन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य द्वारा भूमि सुधार, उत्तराधिकार तथा भूस्वामित्व के नियमों में सुधार करके संस्थागत परिवर्तन किए जा सकते हैं। इन सुधारों के माध्यम से सरकार कृषकों की दशा में सुधार ला सकती है। इसके अतिरिक्त एकाधिकार पर नियंत्रण करके उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के हितों की रक्षा की जा सकती है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को चलाकर सहकारी समितियों की स्थापना तथा इसी तरह के अन्य कार्यक्रमों द्वारा अल्पविकसित देशों में सुधार लाया जा सकता है। सरकार श्रम सम्बन्धी कानूनों को पारित करके औद्योगिक विवाद समाप्त करने का प्रयास करती है ताकि सेवायोजकों तथा श्रमिकों के बीच परस्पर सद्भावना बनी रहे। इस तरह, विभिन्न नियमों में सुधार करके पुरानी व परम्परागत प्रवृत्तियों को समाप्त कर सरकार द्वारा विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है।
4. **आर्थिक अवसंरचना एवं सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था करना (Provision of Economic Infrastructure and Social Service)-** सरकार द्वारा विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक योजनाओं का संचालन कर आर्थिक विकास के मार्ग को प्रशस्त किया जाता है। इन सेवाओं के अंतर्गत मुख्य रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवास तथा अन्य कल्याणकारी कार्यक्रमों को सम्मिलित किया जाता है। जिनका आर्थिक विकास के कार्यक्रमों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले आर्थिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत आधारभूत उद्योगों की स्थापना आदि को सम्मिलित किया जाता है। सरकार आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए यातायात, परिवहन एवं संचार, शक्ति, सिंचाई, खाद, सीमेन्ट तथा स्टील आदि आधारभूत उद्योगों की स्थापना करती है। इस तरह सरकार बड़े पैमाने पर पूँजी निवेश करके सामाजिक एवं आर्थिक सेवाओं का विस्तार कर आर्थिक विकास में तेजी ला सकती है।

(ख) परोक्ष उपाय (Indirect Measures):- सरकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया में निम्न परोक्ष उपाय को सहारा ले सकती है।

1. **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy):-** आर्थिक विकास की प्रक्रिया में राजकोषीय नीति निम्नवत सहायक हो सकती है

- i) सरकार द्वारा इस तरह की कर प्रणाली लागू की जानी चाहिए ताकि सरकार की आय में तो वृद्धि हो परन्तु उत्पादन पर विपरीत प्रभाव न पड़े।
- ii) सरकार द्वारा सार्वजनिक व्यय को उत्पादक क्षेत्रों में लगाया जाना चाहिए तथा सार्वजनिक ऋण से प्राप्त धनराशि को ऐसे निर्माण कार्यों में व्यय किया जाना चाहिए जिसमें उत्पादन शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता हो तथा ऋणों का विनियोग उन वस्तुओं के उत्पादन में किया जाना चाहिए जो वस्तुएँ विदेशों से आयात की जाती हैं अथवा जिनकी माँग विदेशों में हों।
- iii) आर्थिक विकास हेतु धन जुटाने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था का सीमित एवं नियंत्रित प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके अनियंत्रित प्रयोग से मुद्रास्फीति एवं अन्य आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ सकता है।
- iv) करो में छूट एवं उपदान आदि के माध्यम से सरकार उद्यमियों को नए उद्योगों को स्थापित करने हेतु प्रोत्साहित कर सकती है।

इस तरह राजकोषीय नीति के माध्यम से सरकार राष्ट्रीय आय, उत्पादन एवं रोजगार पर वांछित प्रभाव डालने तथा अवांछित प्रभावों को रोकने का प्रयास करती है।

2. **मौद्रिक नीति (Monetary Policy):-** मौद्रिक नीति के अन्तर्गत किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति अर्थात् आर्थिक विकास हेतु मौद्रिक प्राधिकरण चलन में मुद्रा तथा सीख की मात्रा का नियमन करती है। अन्य शब्दों में मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुद्रा संकुचन तथा मुद्रास्फीति के प्रभाव को कम करने, विदेशी विनिमय को देश के पक्ष में करने हेतु आवश्यकतानुसार साख का सृजन एवं नियमन किया जाता है। मंदी के प्रभावों को कम करने तथा रोजगार एवं आर्थिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए लचीली मौद्रिक नीति अपनाई जाती है।

साख नियमन के उपकरण दो प्रकार के होते हैं—

- (i)- परिणामात्मक साख नियंत्रण- इसके अन्तर्गत बैंक दर, खुले बाजार की क्रियाएँ तथा निधि अनुपात में परिवर्तन सम्मिलित रहे हैं।
- (ii)- चयनात्मक साख नियंत्रण- इसके अन्तर्गत नैतिक दबाव, साख की राशनिंग, मार्जिन आवश्यकताओं में परिवर्तन, उपभोक्ता साख का नियमन तथा प्रत्यक्ष कार्यवाही आदि आते हैं।

ये उपकरण साख को वांछित दिशा में ले जाकर आर्थिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होते हैं।

3. **मूल्य नीति (Price Policy):-** विकासशील देशों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया में विभिन्न परियोजनाओं पर भारी मात्रा में व्यय किया जाता है। इससे रोजगार एवं आय में वृद्धि से लोगों की क्रयशक्ति एवं माँग में वृद्धि हो जाती है। इन देशों में तेजी से हो रही जनसंख्या वृद्धि से भी वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग में वृद्धि हो जाती है। इससे इन वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों पर्याप्त वृद्धि हो जाती है जिससे उपभोक्ताओं एवं उत्पादकों को भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कुछ सीमा तक स्फीति आर्थिक विकास को गति प्रदान करने में सहायक हो सकती है परन्तु नियमित रूप से तेजी से बढ़ती जाने वाली स्फीति आर्थिक विकास की प्रक्रिया को छिन-भिन्न कर देती है। अतः सरकार बढ़ते मूल्यों पर नियंत्रण करने के लिए तरह-तरह के उपाय करती है। तथा मौद्रिक एवं वित्तीय नीति का सहारा लेती है। इस तरह सरकार उचित मूल्य नीति अपनाकर उपभोक्ताओं एवं उत्पादकों को राहत प्रदान करती है।

4. **कार्यात्मक वित्त प्रबंधन (Functional Finance Management):-** वर्तमान समय में कार्यात्मक वित्त प्रबंधक की प्रणाली को अपनाकर आर्थिक विकास को प्रभावित किया जाता है। इसके अंतर्गत करारोपण, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण का उपयोग करते हुए औचित्यपूर्ण ढंग से बजट का निर्माण किया जाता है। कार्यात्मक वित्त की सहायता से आर्थिक उतार-चढ़ाओं, कीमत स्तर, उत्पादन, आय एवं रोजगार के स्तर में आने वाली गिरावट को दूर किया जा सकता है तथा आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।
5. **तटकर नीति (Tariff Policy):-** घरेलू उद्योग धंधों का संरक्षण प्रदान करने तथा देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने के लिए तटकर नीति के अन्तर्गत आयात को हतोत्साहित तथा निर्यात को प्रोत्साहित किया जाता है। इसके अतिरिक्त विदेशी व्यापार की नीति में परिवर्तन करके स्वदेश का आर्थिक विकास किया जा सकता है।

1.7 अभ्यास प्रश्न(Practice Questions)

प्रश्न लघुउत्तरीय प्रश्न

1. मौद्रिक नीति किसे कहते हैं ?
2. राजकोषीय नीति क्या है ?
3. तटकर नीति को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

- निम्नलिखित में से कौन परिमाणात्मक साख नियन्त्रण की विधि नहीं है।

(क) रेपोदर	(ख) बैंक दर
(ग) साख का अनुभाजन	(घ) वैधानिक तरलतानुपात
- निम्न में से कौन आधारभूत संरचना के अन्तर्गत नहीं आता है ?

(क) बिजली	(ख) बैंक
(ग) सड़क	(घ) जल

सत्य/असत्य

1. कीन्स के अनुसार सरकार का आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।
2. आयात को नियंत्रित करने के लिए तटकर लगाया जाता है।
3. बैंक आर्थिक विकास का संस्थागत स्रोत है।

1.8 सारांश (Summary)

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में तेजी लाने के लिए सरकार को निम्नलिखित कार्यों को करना आवश्यक समझा जाता है।

1. आधारभूत संरचना का निर्माण
2. उद्योगों का विकास

3. विदेशी पूँजी को आकृष्ट करना
4. कृषि के विकास के लिए सहायता उपलब्ध कराना
5. भूमि व्यवस्था में सुधार करना।
6. मानव संसाधन विकास (स्वास्थ्य, शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण) हेतु प्रयास करना,
7. विकास की दृष्टि से हानिकारक सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास।
8. सरकारी सेवाओं को सशक्त बनाना।
9. राजनीतिक स्थिरता के लिए अनुकूल स्थिति का निर्माण करना।

उपरोक्त सभी कार्यों के संचालन हेतु भारी पूँजी की आवश्यकता होती है तथा इनके निर्माण में काफी लम्बा समय भी लगता है। इनके निर्माण कार्य के पूरा होने पर इनसे जो लाभ मिलता है, वह पूँजी निवेश की तुलना में बहुत कम होता है। अथवा लाभ नहीं भी मिल सकता है। अतः इनक कार्यों को करने हेतु निजी क्षेत्र कोई रूचि नहीं लेता। इसलिए विकास के इनक कार्यक्रमों के संचालन में सरकार की सक्रिय भूमिका आवश्यक समझी जाती है।

1.9 शब्दावली (Glossary)

- कार्यात्मक वित्त (Functional Finance)- राजकोषीय उपकरणों सन्तुलन ।
- चयनात्मक साख विधि (Selective Credit Method)- साथ में गुणात्मक नियन्त्रण करना।
- अहस्तक्षेप की नीति (Policy of laissez faire)- सरकार हस्तक्षेप नहीं।
- मुद्रा स्फीति (Inflation)- कीमत में वृद्धि ।
- मुद्रा संकुचन (Deflation)- मुद्रा की मात्रा में कमी।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1 (ग) साख का अनुभाजन

2 (ख) बैंक

सत्य/असत्य

(1.) असत्य

(2.) सत्य

(3.) सत्य

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- आर0ए0मसग्रेव, पब्लिक फिनान्स इन ए डेमोक्रेटिक सोसाइटी वाल्यूम-II
- आर0 ए0 मसग्रेव, द थियरी ऑफ पब्लिक फिनान्स, मैग्राहिल 1984।
- जे0 सी0 पन्त राजस्व, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन 1979।
- अमरेश बागेची ,रीडिंग इन पब्लिक फिनान्स, आक्सफोर्ड 1980।
- ए0 प्रेमचन्द्र गवर्नमेन्ट बजटिंग एण्ड एक्सपेन्डीचर कन्ट्रोल, IMF 1983।

- एस0 के0 सिंह लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2008।
- Peet, "Speeches"; quoted in Mc Gregor, Public Aspects of Finance, p. 71
- H. Parnell, "On Financial Reform"; quoted by G. Findaly shirrras in the science of Public Finance, p. 31

1.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)

- भाटिया एच. एल. (2006), लोकवित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे. सी. (2005), राजस्व (Public Finance), लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वाष्णोय, जे. सी. (1997), राजस्व (Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, हास्पीटल रोड, आगरा।
- डॉ. जे.पी. मिश्र : लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स, वाराणसी

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. आधुनिक राज्यों के आर्थिक क्रियाओं की विवेचना कीजिए।
2. राज्य के आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि के कारणों को स्पष्ट कीजिए।
3. समझाइए कि लोक वित्त किस तरह आर्थिक विकास एवं मूल्य स्थिरता में सहायता प्रदान करता है?
4. आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

इकाई 2 लोकवित्त का क्षेत्र, प्रकृति एवं महत्व

(Definition, Scope, Nature And Importance of Public Finance)

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 लोकवित्त का अर्थ
- 2.4 लोकवित्त की परिभाषाएँ
- 2.5 लोक वित्त की विषय-वस्तु एवं क्षेत्र
- 2.6 लोकवित्त की प्रकृति
- 2.7 लोकवित्त का महत्व
- 2.8 लोकवित्त एवं निजी वित्त में अन्तर
- 2.9 लोकवित्त तथा विकासशील देश
- 2.10 लोक वित्त का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध
- 2.11 अधिकतम सामाजिक लाभ या कल्याण का सिद्धान्त
- 2.12 अभ्यास प्रश्न
- 2.13 सारांश
- 2.14 शब्दावली
- 2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.17 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.18 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह लोक व्यय खण्ड की दूसरी इकाई है जो लोकवित्त का क्षेत्र, प्रकृति एवं महत्व पर आधारित की गयी है। इससे पूर्व की प्रथम इकाई में राज्यों की आर्थिक क्रियाएँ को स्पष्ट किया गया है जो राज्यों की आर्थिक क्रियाएँ में वृद्धि के कारण आर्थिक क्रियाओं की सीमा तथा आर्थिक विकास में सरकार की भूमिकाके विभिन्न पक्षों को समायोजित करती है। आप इस इकाई में दर्शाये गये उद्देश्यों को भली भाँति समझ गये होंगे। प्रस्तुत इकाई में लोकवित्त का अर्थ, परिभाषाएँ एवं लोक वित्त की विषय-वस्तु एवं क्षेत्र, प्रकृति और महत्व को बताया गया है। साथ ही लोकवित्त एवं निजी वित्त में अन्तर को समझाया गया है। अन्त में लोक वित्त के अधिकतम सामाजिक लाभ या कल्याण का सिद्धान्त को व्यक्त किया गया है।

2.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे

- ✓ लोकवित्त का अर्थ एवं परिभाषाएँ को समझ सकेंगे ॥
- ✓ लोक वित्त की विषय वस्तु एवं क्षेत्र-, प्रकृति और महत्व को बता सकेंगे।
- ✓ लोकवित्त एवं निजी वित्त में अन्तर को समझ सकेंगे ॥
- ✓ लोक वित्त का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध को बता सकेंगे।
- ✓ लोक वित्त के अधिकतम सामाजिक लाभ या कल्याण का सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

2.3 लोकवित्त का अर्थ

लोकवित्त अथवा राजस्व अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो सरकार के आय-व्यय का अध्ययन करती है। राजस्व को लोकवित्त के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया जाता है। राजस्व, संस्कृत भाषा का शब्द है जो दो अक्षरों-'राजन + स्व' से मिलकर बना है जिसका अर्थ होता है 'राजा का धन'। राजनैतिक दृष्टि से राजा को समाज एवं क्षेत्र विशेष को प्रतिनिधित्व करने वाला मुखिया माना जाता है। इस तरह सरल शब्दों में राजस्व का अर्थ 'राजा के धन' या राजनैतिक दृष्टिकोण से 'मुखिया के धन' से होता है जिसके अनतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि राजा धन को कहाँ से तथा किस प्रकार प्राप्त करता है तथा उस धन को किस प्रकार व्यय करता है।

अंग्रेजी में व्यक्त किया गया 'Public Finance' भी दो शब्दों Public और Finance से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है 'जनता का वित्त' अथवा 'सार्वजनिक वित्त'। परन्तु हम लोक वित्त अथवा राजस्व के अतर्गत जनता के वित्त का अध्ययन नहीं करते बल्कि जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संख्या 'राज्य' अथवा सरकार की वित्तीय व्यवस्थाओं का अध्ययन करते हैं।

लोक वित्त को विभिन्न देशों की भाषाओं में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है यथा, जर्मनी में इसे 'Finanzwissenschaft' है जिसका अर्थ है वित्त का विज्ञान, फ्रांस में इसके लिए 'Science des finances' शब्द का प्रयोग किया जाता है। तथा इटली में इसे ने नाम से जाना जाता है। इन शब्दों को सार्वजनिक आय एवं व्यय के प्रबंध के रूप में प्रयोग किया जाता है।

2.4 लोक वित्त की परिभाषाएँ

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने लोकवित्त को भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। डॉ० डाल्टन (Dalton) के अनुसार, "लोकवित्त उन विषयों में से एक है जो अर्थशास्त्र एवं राजनीति शास्त्र की सीमा रेखा पर स्थित है। इसका सम्बन्ध लोकसत्ताओं के आय-व्यय तथा उनके पारस्परिक समायोजन और समन्वय से है।" प्रो०सी०एफ० बैस्टेल (Bastable) के अनुसार, "लोकवित्त राज्य की लोकसत्ताओं के आय-व्यय, उनके पारस्परिक सम्बन्ध, वित्तीय प्रशासन एवं नियंत्रण का अध्ययन करता है।" प्रो०फिण्डले शिराज (Findlay Shirras) के अनुसार, "लोकवित्त के अंतर्गत लोक सत्ताओं के कोषों में वृद्धि एवं व्यय से संबंधित सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है।" उपर्युक्त परिभाषाओं को अधिक विस्तृत इसलिए कहा जाता है क्योंकि लोकसत्ताओं और उनकी सभी प्रकार की आय एवं व्यय को चाहे वह मौद्रिक हो अथवा अमौद्रिक, सबको लोकवित्त के अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया गया है।

दोष:- इन परिभाषाओं के कुछ प्रमुख दोष इस प्रकार हैं-

1. उपर्युक्त परिभाषाओं में प्रयुक्त शब्द लोक सत्ताओं पर कुछ अर्थशास्त्रियों ने आति प्रकट की है। उनका कहना है कि यह आवश्यक नहीं है कि सभी लोक सत्ताएँ राज्य की वैधानिक अंग हों। लोक सत्ताओं के अंतर्गत यदि सार्वजनिक कम्पनियाँ तथा शिक्षण संस्थाएँ आदि भी सम्मिलित कर ली जाती हैं तो लोक वित्त का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत हो जाएगा। वास्तविकता यह है कि लोक वित्त में हम केवल राज्य की वित्तीय क्रियाओं का अध्ययन करते हैं।

2. इन परिभाषाओं में लोक सत्ताओं की सभी प्रकार की आय-मौद्रिक और अमौद्रिक को सम्मिलित कर लिया गया है जबकि विषय के क्षेत्र को निश्चितता प्रदान करने के लिए लोकवित्त के अंतर्गत केवल मुद्रा एवं साख सम्बंधी आय को ही सम्मिलित किया जाना चाहिए। उपर्युक्त दोषों के बाद भी यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि विभिन्न मौद्रिक एवं आमौद्रिक साधनों के बीच भेद करना सरल नहीं है। राज्य अपने कार्य संचालन के लिए सभी तरह के साधनों का प्रयोग करता है। इस तरह, मुद्रा के महत्व में वृद्धि के साथ लोक वित्त का क्षेत्र भी विस्तृत हो गया है। ऐसी स्थिति में इस तरह की आपत्ति अनुपयुक्त है और उक्त परिभाषाएँ औचित्यपूर्ण हैं।

लुट्ज (Lutz) के अनुसार, "लोकवित्त उन साधनों की व्यवस्था, सुरक्षा तथा वितरण का अध्ययन करता है जिनकी सार्वजनिक अथवा सरकारी कार्यों को चलाने के लिए आवश्यकता पड़ती है।"

कार्ल प्लेहन (Plehan) के अनुसार, "लोकवित्त वह विज्ञान है जो राजनितिज्ञों की उन क्रियाओं का अध्ययन करता है जिनके द्वारा वे राज्य के कर्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक भौतिक साधनों को प्राप्त करते हैं तथा उन साधनों का प्रयोग करते हैं।"

आर्मिटेज स्मिथ (Armitage Smith) के अनुसार, "राजकीय व्यय तथा राजकीय आय की प्रकृति एवं सिद्धान्तों की व्याख्या को लोक वित्त कहा जाता है।"

श्रीमती उर्सला के.हिक्स (U.K. Hicks) के अनुसार, "लोक वित्त का मुख्य विषय उन विधियों का निरीक्षण एवं मूल्यांकन करना है जिनके द्वारा सरकारी संस्थाएँ आवश्यकताओं की सामूहिक संतुष्टि करने का निरीक्षण करती हैं और अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक कोष प्राप्त करती हैं।"

प्रो० मसग्रेव (Musgrave) के अनुसार, "वे जटिल समस्याएँ जो सरकार की आय-व्यय प्रक्रिया के इर्द-गिर्द केन्द्रित रहती हैं, उन्हें परम्परागत दृष्टि से लोक वित्त कहा जा सकता है।"

प्रो० डी० मार्को (D.Marco) के अनुसार, "लोक वित्त राज्य की उन उत्पादक क्रियाओं का अध्ययन करता है जिनका उद्देश्य सामूहिक आवश्यकताओं को पूरा करना होता है।"

निष्कर्ष उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि लोक वित्त मूल रूप से सरकारों के आय-व्यय से सम्बन्धित है तथा सरकारों का अर्थ केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सत्ताओं से है। वर्तमान समय में लोक वित्त का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है, अतः अब इसके अंतर्गत सरकारी आय-व्यय के अतिरिक्त वित्तीय प्रशासन, लेखा निरीक्षण एवं वित्तीय नियंत्रण आदि कार्यों को भी सम्मिलित किया जात है।

2.5 लोक वित्त की विषय-वस्तु एवं क्षेत्र

लोक वित्त की विषय-वस्तु की जानकारी के लिए यह याद रखना होगा कि लोक वित्त के विभिन्न पहलुओं की विवेचना का इतिहास काफी पुरा है। एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'Wealth of Nations' (1776) के खण्ड 5 (Book V) में लोक वित्त के विभिन्न अंगों का विश्लेषण किया है। इस खण्ड में तीन अध्याय हैं जो क्रमशः सरकार के व्यय, सरकार के राजस्व तथा लोक ऋण की विवेचना करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि लोक वित्त को क्षेत्र तीन विषय-वस्तु तक सीमित है, यथा लोक व्यय, लोक राजस्व तथा लोक ऋण (**Public Expenditure, Public Revenue and Public Debt**)

रिकार्डो की पुस्तक का नाम था '*The Principles of Political Economy and Taxation*' (1819), जिसमें दस अध्याय करारोपण की विभिन्न समस्याओं पर लिखे गये। लोक व्यय पर कोई पृथक् अध्याय नहीं है। लोक ऋण की विस्तृत विवेचना उनके पृथक् प्रकाशन *Essay on the Funding System* में मिलती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि रिकार्डो ने केवल कर तथा लोक ऋण को ही लोक वित्त के अध्ययन की प्रमुख विषय-वस्तु माना।

जे०एस० मिल ने भी अपनी पुस्तक *The Principles of Political Economy* जो 1848 में प्रकाशित हुई, में लोक वित्त के विभिन्न अंगों की पर्याप्त विवेचना की, लेकिन इस पुस्तक में भी करों के विभिन्न पक्षों के विश्लेषण पर विशेष ध्यान दिया गया तथा राष्ट्रीय ऋण (**National Debt**) की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया। जहाँ एडम स्मिथ ने लोक व्यय के विवेचन का प्रथम पंक्ति में रखा वहाँ रिकार्डो तथा मिल ने करारोपण एवं लोक ऋण को अधिक महत्व दिया।

उन्नीसवीं सदी के अन्त की ओर एक अत्यधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। इसके पूर्व अर्थशास्त्रियों ने अपनी महान् कृतियों में लोक वित्त को एक छोटा-सा स्थान प्रदान किया था अब लोक वित्त पर पृथक् पुस्तक लिखी जानी लगी। इस प्रवृत्ति की श्रीगणेश 1892 में सी०एफ० बैस्टेबल (C.F.Bastable) की पुस्तक *Public Finance* से हुआ। इसी श्रृंखला में डाल्टन (Hugh Dalton) की पुस्तक *Public Finance* सर्वप्रथम 1922 में प्रकाशित हुई जिसे आधिकारिक ख्याति मिली। इस पुस्तक में डाल्टन ने लिखा कि लोक वित्त की विषय-वस्तु है सरकार की आय तथा व्यय तथा एक का दूसरे के साथ समायोजना।

डाल्टन ने उपयुक्त विषय-वस्तु की विवेचना में लोक वित्त के क्षेत्र को विस्तृत किया। उन्होंने रिकार्डों तथा मिल की तरह विशेष करों के प्रभाव के विश्लेषण के साथ ही कर के सामान्य सिद्धान्तों की भी व्याख्या की। साथ ही, एडम स्मिथ की परम्परा को अपनाते हुए उन्होंने व्यय का भी विस्तृत अध्ययन किया। वस्तुतः कर, लोक व्यय तथा लोक ऋण का पृथक्-पृथक् अध्ययन नहीं करके, उनके आपसी सम्बन्धों पर विचार किया जाने लगा। इसलिए **एलेन तथा ब्राउनली (Allen and Brownlee)** ने कहा कि लोक वित्त तेजी से लोक अर्थव्यवस्था का अध्ययन बनता जा रहा है।

लोक वित्त की विषय-वस्तु में आगे चलकर जो विभिन्नता आयी उसकी जानकारी **पीगू** की पुस्तक *A Study of Public Finance* से मिल सकती है जिसका प्रथम संस्करण 1928 में प्रकाशित हुआ तथा तृतीय संस्करण 1947 में। दोनों ही संस्करणों में कर के सिद्धान्तों के साथ-साथ विशेष करों के गुण एवं दोषों की विवेचना की गयी है। प्रथम संस्करण के बाकी भाग में युद्ध वित्त की समस्याओं का जिक्र है। इसके विपरीत तृतीय संस्करण में 'लोक-वित्त एवं रोजगार' शीर्षक के अन्तर्गत उन राजकोषीय उपायों का पूर्ण विवेचना शामिल किया गया है जिनका द्वारा समग्र आय को प्रभावित किया जा सकता है। लोक वित्त को आधुनिक समय में इसी रूप में ढाला गया है। युद्धोत्तर काल में एक समय तो ऐसा लग रहा था कि अल्पकालीन स्थिरीकरण राजकोषित नीति (**Short-term Stablisation Fiscal Policy**) ही लोक वित्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग बन जायेगी। किन्तु, ऐसा नहीं हुआ। 1959 में **आर0ए0 मसग्रेव (Richard A. Murgave)** की महत्वपूर्ण पुस्तक *The Theory of Public Finance* प्रकाशित हुई। इस पुस्तक की भूमिका में मसग्रेव ने लिखा कि रिकार्डों से लेकर केन्स तक शायद ही किसी ने अर्थव्यवस्था की क्रिया पर बजट नीति के प्रभाव पर लिखा। इस विषय को 1930 के दशक के बहुत अधिक प्रेरणा मिली जब राजकोषीय नीति की नयी अवधारणा आर्थिक यान्त्रिकी (**Economic Mechanism**) के हृदय में प्रवेश कर गयी अर्थात् प्रमुख विषय बनी गयी। इससे लोक वित्त के प्रति हमारे दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि मैक्रो आर्थिक सिद्धान्त के अन्तर्गत बजट नीति की भूमिका का विश्लेषण होने लगा।

मसग्रेव कहते हैं कि लोक वित्त को इस प्रकार मैक्रो आर्थिक सिद्धान्त में शामिल करना एक-पक्षीय विकास था। कारण यह है कि इससे लोक वित्त का मैक्रो सिद्धान्त (से, अल्पकालीन स्थिरीकरण सम्बन्धी राजकोषीय नीति) की ओर ही विशेष ध्यान गया और इसी साधनों के आवंटन पर प्रभाव के अध्ययन की फलतः बट नीति के आय के वितरण तथा निजी क्षेत्र में साधनों के आवंटन पर प्रभाव के अध्ययन की अवहेलना की गयी। इस कमी को मसग्रेव ने दूर किया तथा बताया कि लोक वित्त का क्षेत्र तीन प्रमुख राजकोषीय कार्य, यथा, आवंटन कार्य (**Allocation function**) वितरण कार्य (**Distribution function**) तथा स्थिरीकरण कार्य (**Stabilisation function**) तक फैला हुआ है। उन्होंने लोक वित्त की पारस्परिक विषय-वस्तु (जैसे, करारोपण, लोक व्यय तथा लोक ऋण) का विश्लेषण आवंटन, वितरण तथा स्थिरीकरण के दृष्टिकोण से करके लोक वित्त के क्षेत्र को काफी विस्तृत कर दिया। आवंटन कार्य के अन्तर्गत लोक व्यय तथा करों की रचना इस प्रकार की जाती है ताकि साधनों को निजी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से हटाकर सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लगाया जा सके। वितरण कार्य के अनुसार कर तथा लोक व्यय की रचना इस प्रकार की जाती है। कि साधनों को एक व्यक्ति के उपयोग से हटाकर दूसरे व्यक्ति के उपयोग में (जैसे, अमीरो से हटाकर निर्धनों के उपयोग में) लगाया जा सके। स्थिरीकरण कार्य के

अन्तर्गत कर एवं लोक व्यय की रचना पूर्ण रोजगार तथा कीमत स्थायित्व के दृष्टिकोण से की जाती है। इसका सम्बन्ध अल्पकालीन स्थिरीकरण की समस्या से तो है ही, साथ ही इसमें दीर्घकालीन आर्थिक विकास के सम्बन्ध की भी विवेचना की जाती है। दूसरे शब्दों में, इस कार्य के अन्तर्गत लोक वित्त के समष्टि पहलू (**Macro aspect**) पर विशेष ध्यान दिया जाता है। 1960 के दशक के पिछले भाग तथा 1970 के दशक में मैक्रो आर्थिक नीति के महत्व में मास हुआ। इसके कई कारण थे। यथा, इस नीति को लागू करने में व्यावहारिक कठिनाइयाँ, आर्थिक विचारों के क्षेत्र में मुद्रावादी प्रति-क्रान्ति (**monetarist counter-revolution**) तथा लोक वित्त के पारम्परिक क्षेत्र में अन्य विषयों का उदय तथा उनकी फिर से खोज। इस नये विषयों में एक लोक व्यय है। लोक व्यय खुद नया विषय नहीं है, किन्तु इस विषय को नये रूप से देखा जाता है जिससे इसके क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई है। पहले लोक व्यय के अन्तर्गत इसमें वृद्धि के कारण, इसके प्रभाव, वर्गीकरण, आदि का ही विश्लेषण किया जाता था। आज लोक व्यय के अन्तर्गत जिन मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया जाता है, वे हैं सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के सापेक्ष आकार, वे परिस्थितियों जहाँ बाजार यन्त्र टूट जाता है, सार्वजनिक क्षेत्र के आकार के निर्धारण में राजनीतिक समाधान का महत्व, आदि। दूसरा नया विषय है बहुस्तरीय वित्त (**Multi-level Finance**) जहाँ राजकोषीय संघ (**Fiscal Federalism**) की समस्याओं अर्थात् केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों की वित्त की समस्याओं की विवेचना की जाती है। राज्य द्वारा निजी क्षेत्र को दी जाने वाली सब्सिडी (**subsidy**) अर्थात् अर्थिक सहायता की प्रकृति तथा परिणामों की भी गहराई से खोज की जाने लगी है। लागत-लाभ विश्लेषण (**Cost-benefit analysis**) भी लोक वित्त का एक आकर्षक विषय बन गया है। इस तरह लोक वित्त अर्थशास्त्र का वह भाग है जो किसी देश की वित्त व्यावस्था तथा उससे सम्बन्धित प्रशासनिक एवं अन्य समस्याओं का अध्ययन करता है और अंततः उसका उद्योग स्थिरता के साथ आर्थिक विकास की गति को बनाये रखना होता है। उपरोक्त विवरण के आधार पर लोक वित्त के अध्ययन क्रम को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. सार्वजनिक व्यय (**Public Expenditure**)
2. सार्वजनिक आय (**Public Revenue**)
3. सार्वजनिक ऋण (**Public Debt**)
4. वित्तीय प्रशासन (**Financial Administration**)
5. राजकोषीय या वित्तीय-नीति (**Fiscal Policy**)

1. **सार्वजनिक (या लोक) व्यय (Public Expenditure):-** लोक वित्त के इस अंग के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि सार्वजनिक व्यय किन-किन मदों पर करना आवश्यक है? व्यय का स्वरूप तथा परिमाण क्या हो? व्यय करते समय किन-किन नियमों एवं सिद्धान्तों का पालन किया जाए? इन व्ययों का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है ता इससे संबंधित कठिनाईयाँ क्या हैं? तथा उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है। राज कीय अथवा सार्वजनिक व्यय का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। जन कल्याण के सभी का सार्वजनिक व्यय पर ही निर्भर करते हैं। सार्वजनिक व्यय की मदों तथा उन पर व्यय की जाने वाली धनराशि जिसके आधार पर उस देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक नीतियों तथा स्थितियों की समीक्षा की जा सकती है।

2. **सार्वजनिक (या लोक) आय (Public Revenue):-** इस अंग के अंतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि सरकार अपनी आय किन-किन स्रोतों से प्राप्त करती है। इसमें आय के विभिन्न स्रोतों का विश्लेषण वर्गीकरण, साधनों की गतिशीलता तथा उनके सापेक्षिक महत्व एवं सिद्धान्त का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त आय के इन स्रोतों का देश के उपभोग, उत्पादन वितरण, बचत तथा विनियोग पर क्या प्रभाव पड़ा है, का भी अध्ययन किया जाता है।
3. **सार्वजनिक ऋण (Public Debt):-** इस अंग के अंतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि सरकारी ऋण क्यों और किस उद्देश्य हेतु लिए जाते हैं। राज्य किन सिद्धान्तों के आधार पर ऋण प्राप्त करता है? तथा इन ऋणों का भुगतान किस प्रकार किया जाता है। ऋणों के क्या प्रभाव पड़ते हैं? सार्वजनिक ऋणों से सम्बन्धित विभिन्न समस्याएँ क्या हैं? अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋणों का सापेक्षित महत्व क्या है? इत्यादि।
4. **वित्तीय प्रशासन (Financial Administration):-** इस विभाग के अंतर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि सरकार वित्तीय क्रियाओं का प्रबंध किस प्रकार करती है? इसके अन्तर्गत विशेष रूप से यह अध्ययन किया जाता है कि बजट किस प्रकार बनाया जाता है, बजट बनाने के क्या उद्देश्य होते हैं, घाटे के बजट तथा आधिक्य के बजट का क्या महत्व है, इसके अतिरिक्त लेखों का अंकेक्षण करना भी इसके अंतर्गत आता है। वित्तीय प्रशासन लोक वित्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभाग है। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् इसका महत्व काफी बढ़ गया है। प्रो० बैस्टेबल लोक वित्त के इस भाग के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि 'लोकवित्त की कोई पुस्तक तब तक पूर्ण नहीं कही जा सकती जब तक कि वह वित्तीय प्रशासन और बजट की समस्याओं का अध्ययन नहीं करती।
5. **राजकोषीय या वित्तीय नीति (Fiscal Policy):-** लोक वित्त के एक भाग के रूप में राजकोषीय अथवा वित्तीय नीति के महत्व को आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने स्वीकार किया है। स्थिरता के साथ आर्थिक विकास, को गति प्रदान करने के लिए आज वित्तीय नीति का सहारा लिया जाता है। वित्तीय नीति के द्वारा देश में उत्पादन क्रियाओं को नियमित करके, राष्ट्रीय आय के वितरण को न्यायपूर्ण बनाकर तथा कीमतों में स्थिरता लेकर आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह, नियोजित आर्थिक विकास हेतु राजकोषीय नीति का प्रयोग एवं अध्ययन लोक वित्त की विषय वस्तु का एक प्रमुख अंग है।

2.6 लोकवित्त की प्रकृति (Nature of Public Finance)

लोक वित्त की प्रकृति के विवेचन हेतु यह जानने का प्रयास किया जाता है कि लोक वित्त विज्ञान है। अथवा कला?। विज्ञान ज्ञान का वह शास्त्र है जिसमें किसी विषय का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन निरीक्षण, प्रयोग एवं विश्लेषण पर आधारित होता है। इस तरह के अध्ययन के आधार पर जो नियम बनाए जाते हैं या निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उनका स्वभाव वैज्ञानिक होता है। इस आधार पर लोक वित्त को विज्ञान कहना अनुचित नहीं होगा। परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि लोक वित्त एक स्वतंत्र विज्ञान नहीं है बल्कि एक आश्रित विज्ञान है क्योंकि इसका अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है और यह उन पर आश्रित है।

विज्ञान भी दो प्रकार के होते हैं- प्राकृतिक विज्ञान (**Positive Science**) तथा आदर्श विज्ञान (**Normative Science**) प्राकृतिक विज्ञान में हम वास्तविक एवं वस्तु स्थिति का अध्ययन करते हैं। वह क्या है? का उत्तर देना है परन्तु क्या होना चाहिए? से इसका सम्बन्ध नहीं है। वास्तविक विज्ञान उस दीप स्तंभ की तरह है जो जहाज को रोशनी दिखाता है और इंगित करता है कि यहाँ चट्टान है परन्तु यह नहीं बताया कि जहाज हमारा ध्यान आकर्षित करता है। इस तरह, आदर्श विज्ञान ज्ञान का वह पुंज होता है जिसका सम्बन्ध आदर्शों को स्थापित करना होता है। इस दृष्टि से दोनो विज्ञानों में 'वस्तु स्थिति' तथा 'आदर्श' का अंतर है।

लोक वित्त के अंतर्गत तथ्यों का अध्ययन दोनो दृष्टिकोणों से किया जाता है।

कला ज्ञान का व्यावहारिक स्वरूप है। किसी बात का ज्ञान तो विज्ञान है और उस ज्ञान को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने के लिए जब नियम बनाए जाते हैं तो उसे कला कहते हैं। इस तरह किसी कार को रोकने के लिए व्यावहारिक नियमों को बताना ही कला है। इस दृष्टि से लोकवित्त कला भी है। यह कला का रूप उस समय धारण कर लेता है जब किसी देश की सरकार विविध स्रोतों से प्राप्त अपनी आय को इस प्रकार व्यय करने का निश्चय करती है ताकि सामाजिक कल्याण अधिकतम हो सके। सामाजिक कल्याण में वृद्धि के लिए सरकार का यह भी दायित्व हो जाता है कि राजकोषीय नीति का इस तरह प्रयोग करें ताकि समाज में धन एवं आय के वितरण की विषमता को समाप्त किया जा सके। इस तरह निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि लोक वित्त विज्ञान तथा कला दोनों हैं। जब हम सार्वजनिक आय एवं व्यय के सिद्धान्तों एवं नियमों का अध्ययन करते हैं तो यह लोक वित्त का वैज्ञानिक पहलू होता है और जब इन सिद्धान्तों एवं नीतियों का प्रयोग सरकार की वित्तीय समस्याओं को हल करने में किया जाता है तो वही लोक वित्त का कलात्मक पहलू हो जाता है।

2.7 लोक वित्त का महत्व (Importance of Public Finance)

प्राचीन काल में राज्य के कार्य सीमित थे, अतः लोक वित्त का महत्व भी उसी के अनुरूप कम था। लोक वित्त का महत्व राज्यों की आर्थिक क्रियाओं से सम्बद्ध होता है। प्रारम्भ में सरकार के कार्य केवल वाह्य आक्रमण से सुरक्षा तथा न्याय तक ही सीमित थे, फलस्वरूप सरकार का कोष भी सीमित ही रखा जाता था। क्लासिकल अर्थशास्त्री भी अहस्तक्षेप नीति के समर्थक (**Laissez-faire**) थे और चाहते थे कि आर्थिक क्रियाओं के स्वतः संचालन में सरकार को किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए इस तरह के सरकार के अल्प योगदान पर विश्वास करते थे। यग बदला, परिस्थितियाँ बदलीं। राज्य के कार्यों एवं उनके योगदान में परिवर्तन हुए तथा राज्य के अहस्तक्षेप नीति के भयंकर दोष सामने आने लगे। इंग्लैंड के **राबर्ट ओवन**, फ्रांस के **सिसमांडी** तथा जर्मनी के **फेडरिक लिस्ट** ने इस नीति की कटु आलोचना करते हुए राज्य को आगे आने का आह्वान किया। अहस्तक्षेप नीति पर सबसे प्रभावपूर्ण एवं कारगर प्रहार **कार्ल मार्क्स**, **लास्की**, **वेब्स** तथा **जे० एम० कीन्स** ने किया। वास्तविकता तो यह है कि राज्य के क्षेत्र एवं महत्व का विकास 19वीं शताब्दी के अंत से ही प्रारम्भ हो चुका था जिसका श्रेय जर्मन अर्थशास्त्री **वैगनर (Wagner)** को है उन्होंने 'राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं का नियम' प्रतिपादित किया था। राज्य के कार्यों में वृद्धि के साथ ही साथ लोक वित्त का क्षेत्र एवं महत्व भी बढ़ता जा रहा है। अब राज्य केवल देशज की रक्षा एवं नागरिकों की सुरक्षा ही नहीं करता वरन् कल्याणकारी राज्य के रूप में वह देश के लोगों की बीमारी, गरीबी, अशिक्षा को दूर करने के साथ-साथ नागरिकों के जीवन के प्रत्येक पहलू पर अपना नियंत्रण रखता

है स्थिति यह है कि आज राज्य मानव के समस्त आर्थिक क्षेत्रों-उत्पादन, उपयोग, विनिमय तथा वितरण में प्रवेश कर चुका है। कीन्स के “सामान्य सिद्धान्त” के प्रकाशन के बाद देश की आर्थिक क्रियाओं में राज्य के हस्तक्षेप और लोक वित्त के महत्व में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। कीन्स ने प्रतिपादित किया कि देश में आर्थिक स्थिरता तथा रोजगार में वृद्धि राज्य के हस्तक्षेप द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। सरकार राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतिक का सहारा लेकर अर्थव्यवस्था को वांछित दिशा में ले जा सकती है। आज विकसित देश आर्थिक स्थायित्व के लिए तथा विकासशील देश स्थिरता के साथ तीव्र आर्थिक विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। परिणामस्वरूप इन देशों में राज्य एवं लोकवित्त का महत्व अपेक्षाकृत बढ़ता जा रहा है। सरकार अपनी राजकोषीय नीति के द्वारा स्थिरता के साथ विकास तथा राष्ट्रीय आय के न्यायोचित वितरण आदि उद्देश्यों को सुगमतापूर्वक प्राप्त कर सकती है। राज्य आज आर्थिक विकास को बढ़ावा देने, बाह्य आक्रमण से सुरक्षा तथा आंतरिक शान्ति बनाए रखने, सामाजिक सुरक्षा तथा जनकल्याणकारी कार्यों के कार्यान्वयन करने, सामाजिक बुराइयों को दूर करने, शिशु उद्योगों को संरक्षण प्रदान कर विदेशी प्रतियोगिता से बचाने के लिए, आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए, दुर्लभ साधनों के सर्वोत्तम ढंग से आवंटन के लिए, राष्ट्रीय उपक्रमों का विकास करने तथा बेरोजगारी दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये महत्वपूर्ण कार्य सरकार राजकोषीय नीति के द्वारा सुगमतापूर्वक कर सकती है। कोई भी राज्य कुशलतापूर्वक अपने उक्त कार्यों का सम्पादन तब तक नहीं कर सकती जब तक कि उसके पास सुसंगठित लोकवित्त नहीं होगा। इस तरह, राज्य के कार्यों एवं महत्व में वृद्धि होने से लोकवित्त के महत्व में अधिक वृद्धि हो चुकी है।

लोकवित्त की सीमाएँ:- लोक वित्त से सम्बन्धित नीतियाँ राष्ट्रीय आय, उत्पादन एवं रोजगार पर वांछित प्रभाव डालने एवं अवांछित प्रभावों को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और इस तरह देश के आर्थिक जीवन को प्रभावित करने में भारी योगदान प्रदान करती है। देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के बावजूद लोक वित्त की नीतियों की अपने कुछ सीमाएँ भी हैं यथा- (i) कर प्रणाली में मनचाहा परिवर्तन करना सुगम नहीं होता। सामान्यतया लोग नए करों का विरोध करते हैं। (ii) कभी-कभी सरकारी व्यय में वृद्धि से निजी निवेश में गिरावट आने लगती है। सार्वजनिक क्षेत्र के विकास से निजी क्षेत्र का संकुचन होने लगता है। (iii) सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम तभी सफल हो सकते हैं जब उन्हें उचित समय पर क्रियान्वित किया जाए परन्तु इस उचित समय अर्थात् मंदी का पुर्वानुमान लगाना कठिन होता है। (iv) सार्वजनिक निर्माण कार्यों को तुरंत लागू करना सदैव संभव नहीं हो पाता। सरकारी मशीनरी अपने ढंग से कार्य करती है, अतः निर्माण कार्यों को प्रारम्भ करने में कुछ न कुछ देरी तो हो ही जाती है।

इस तरह अकेली लोकवित्तीय नीति अर्थव्यवस्था को स्थिरता के साथ विकास के पथ पर तेजी से ले जाने में पूर्णतया समर्थ नहीं है। अतः सरकार मंदी एवं बेरोजगारी का प्रभावपूर्ण ढंग से सामना करने तथा स्थिरता के तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राजकोषीय नीति के साथ-साथ मौद्रिक नीति का भी सहारा लेती है। समन्वित मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति के क्रियान्वयन से ही अर्थव्यवस्था में वांछित लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं।

2.8 लोक-वित्त एवं निजी-वित्त में भेद (Distinction between Public and Private Finance)

लोक वित्त तथा निजी वित्त में सामान्यतया ऊपरी तौर पर कोई विशेष भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती क्योंकि दोनों का उद्देश्य आय तथा व्यय के बीच सामंजस्य अथवा संतुलन स्थापित करना होता है। दोनों की समस्याएँ एक सी हैं तथा दोनों का उद्देश्य अपनी आय तथा व्यय से अधिकतम संतोष प्राप्त करना होता है। निजी व्यय इसलिए होता है ताकि 'अधिकतम संतुष्टि' की प्राप्ति हो सके और सार्वजनिक व्यय इसलिए किया जाता है ताकि उससे 'अधिकतम सामाजिक लाभ' उपलब्ध हो सके। इसलिए अतिरिक्त देश की आर्थिक स्थिति में किसी भी प्रमुख परिवर्तन का प्रभाव व्यक्ति तथा सरकार दोनों की वित्तीय स्थिति पर पड़ता है। फिर भी लोक वित्त तथा निजी वित्त की प्रकृति, उद्देश्य, सिद्धान्त व्यवस्था तथा प्रशासन आदि में आधारभूत एवं मौलिक भेद हैं जिनकी क्रमबद्ध विवेचना निम्न है।

1. **आय तथा व्यय के समायोजन में भेद (Difference In the Adjustment of Income And Expenditure)** सामान्यतया व्यक्ति अपनी आय के अनुसार व्यय करता है। वह पहले आय को देखता है फिर उसी अनुसार अपने व्यय को निर्धारित करता है। इसके विपरीत, सरकार पहले अपना व्यय निश्चित कर लेती है फिर उस व्यय के अनुसार आय के साधन जुटाने की व्यवस्था करती है। परन्तु दोनों की वित्त व्यवस्थाएँ अनेके व्यावहारिक कठिनाईयों के कारण सदैव ही उपरोक्त सिद्धान्तों के अनुसार नहीं चल पाती हैं। कभी-कभी व्यक्ति को कुछ विशेष अवसरों पर अपनी आय के अधिक व्यय करना पड़ता है। जैसे-विवाह, त्यौहारों एवं अन्य सामाजिक उत्सवों के अवसर पर व्यक्ति का व्यय बढ़ जाने पर वह अतिरिक्त कार्य करके, आराम का त्याग कर, कठिन परिश्रम करके अपनी आय को बढ़ाने के लिए प्रयास करता है। इसी तरह कभी-कभी सरकारें भी अपनी आय के अनुसार ही व्यय को समायोजित करती हैं। इसके अतिरिक्त सदैव यह आवश्यक नहीं है कि सरकार अपने व्यय के अनुरूप आय को प्राप्त करने में सफल ही हो जाए। कभी-कभी सरकार को अपनी खर्चों में कटौती भी करनी पड़ती है। इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रो० फिण्डले शिराज कहते हैं कि निजी वित्त तथा लोक वित्त में अंतर केवल मात्रा का है प्रकृति का नहीं।
2. **उद्देश्यों में भिन्नता (Difference In Aims)** (क) व्यक्ति सदैव अपने हित की भावना से प्रेरित होकर कार्य करता है जबकि सरकार के कार्यों का उद्देश्य सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना होता है। इस सम्बन्ध में डी० मार्को का कथन है कि *"निजी-वित्त व्यवस्था में व्यक्तियों की, उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने सम्बन्धी क्रियाओं का ही अध्ययन किया जाता है जबकि लोक-वित्त में सरकार की उत्पादन क्रियाओं का जो सामूहिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए की जाती है, का अध्ययन किया जाता है।"* (ख) व्यक्ति व्यय करते समय प्रायः सम-सीमांत उपयोगिता नियम को पालन करने का प्रयास करता है ताकि वह अपनी निश्चित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सके। परन्तु सरकार के लिए ऐसा पाना संभव नहीं हो पाता क्योंकि सरकार को अधिकांशतः अपना व्यय राजनीतिक आधार पर करना पड़ता है भले ही उससे मिलने वाली उपयोगिता कितनी ही कम क्यों न हो। इस तरह, सरकार के

सामान्य व्यय के चुनाव की स्वतंत्रता बहुत सीमित होती है। जबकि व्यक्ति अपना व्यय अपनी इच्छा एवं अभिरूचि के अनुरूप निरिचित कर सकता है। (ग) सामान्यता व्यक्ति अपने वर्तमान एवं तत्कालीन आवश्यकताओं को संतुष्ट करने का प्रयास करता है और उसी के अनुरूप व्यय करता है जबकि सरकार वर्तमान एवं भविष्य के हितों को ध्यान में रखकर अपने व्यय को निर्धारित करती है। डाल्टन ने इस सम्बन्ध में कहा है कि राज्य ने केवल वर्तमान के लिए बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए भी एक प्रत्यासी (Trustee) होता है, राज्य अमर है जबकि व्यक्ति मरणशील है। इसलिए व्यक्ति प्रायः शीघ्र लाभ प्राप्त करने को उत्सुक रहता है।

3. **आय के साधनों में लोच-सम्बन्धी अन्तर (Difference In the Sources of Income and Its Elasticity)** सरकार की आय तथा उसके प्राप्त करने के साधन निजी आय एवं उसके साधनों की अपेक्षा अधिक लोचपूर्ण होते हैं। सरकार अपनी आय को पुराने करों की दर में वृद्धि करके, नए कर लगाकर, नोट छापकर, आंतरिक एवं बाह्य ऋण प्राप्त करके तथा लाभ कमाने वाले उद्योगों का राष्ट्रीकरण करके बढ़ सकती है। कोई व्यक्ति उपरोक्त साधनों का प्रयोग नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का मत है कि सरकार अपनी आय को सीमा से अधिक नहीं बढ़ा सकती। वह एक सीमा के बाद मनमाने ढंग से कर को नहीं बढ़ा सकती, नोट को नहीं छाप सकती तथा बाह्य ऋण भी नहीं प्राप्त कर सकती। सरकारी वित्त व्यवस्था केवल युद्ध या आपातकालीन परिस्थितियों में अधिक लोचपूर्ण बनायी जा सकती है। जैसे-जैसे सरकार की आय बढ़ती है। वैसे-वैसे व्यक्तियों की व्यक्तिगत आय कम होती जाती है। इस सम्बन्ध में श्रीमती हिक्स का विचार है कि सरकार अपनी आय बढ़ाने के बजाय उस अनुपात को बदल सकती है। जिसमें देश की सम्पूर्ण आय सरकार तथा नागरिकों के बीच बंटी रहती है।
4. **बजट की प्रकृति में अंतर (Difference in the Nature of Budget)** एक व्यक्ति के बजट का अतिरेक होना उस व्यक्ति की कुशलता एवं दूरदर्शिता का प्रमाण समझा जाता है कि जबकि सरकार के बजट में अतिरेक का होना वित्त मंत्री की अकुशलता को प्रदर्शित करता है। सरकार के अतिरेक बजट का अर्थ है- उच्च स्तरीय कराधान तथा निम्न स्तरीय व्यय। ये स्थितियाँ एक जन हितकारी सरकार के लिए उचित नहीं समझी जाती है। जहाँ अधिक कर देना देश की जनता के लिए कष्टकारी होता है वही सरकार द्वारा सार्वजनिक हित के कार्यक्रमों पर कम व्यय करना असंतोष पैदा करता है। सार्वजनिक वित्त में बजट का संतुलित होना ही उचित समझा जाता है। कभी-कभी घाटे का बजट भी उपयुक्त होता है। इस सम्बन्ध में फिन्डले शिराज का कथन है, "यदि किसी सरकार का बजट अतिरेक बतलाता है तो इससे देश के वित्त मंत्री की अकुशलता का परिचय मिलता है। सरकारी बजट का संतुलित होना ही उचित समझा जाता है और कभी-कभी घाटे का बजट बनाना भी युक्तिपरक होता है।"
5. **गोपनीयता का अंतर (Difference in Secrecy)** प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय तथा व्यय सम्बन्धी बातों का विवरण अन्य लोगों पर प्रकट नहीं करना चाहता और उसे गुप्त रखने का प्रयास करता है। इसके विपरीत सरकारी बजट में पूर्णरूपेण पारदर्शिता रहती है। सरकार अपने बजट को समाचार पदों एवं अन्य प्रचार माध्यमों के द्वारा प्रसारित करती है ताकि जनता उसके बारे में भली भाँति जान सके तथा टीका-टीप्पणी कर सके।

6. **अवधि में अंतर (Difference in the Period of Time)** सरकार एक निरिचित अवधि, सामान्यता एक वर्ष की अवधि के लिए आय-व्यय का बजट तैयार करती है परन्तु व्यक्तिगत अर्थ प्रबंधन में कोई व्यक्ति अथवा परिवार ऐसी किसी निश्चित अवधि के लिए अपने आय-व्यय का लेखा तैयार नहीं करता। सरकार की योजनाएँ अत्यधिक विस्तृत होती हैं जबकि व्यक्ति की योजनाएँ बहुत लघु स्तर की होती हैं।
7. **राज्य का अपेक्षाकृत अधिक प्रभुत्व (State is More Powerful)** राज्य का प्रभुत्व व्यक्ति की अपेक्षा अधिक होता है अर्थात् राज्य अधिक शक्तिशाली होता है। यद्यपि व्यक्ति और राज्य के स्रोत कुछ अंश तक एक जैसे हैं, यथा- दोनों ही अपनी आय प्राप्त कर सकते हैं। दोनों ही दूसरों से दान ले सकते हैं और दोनों ही ऋण ले सकते हैं, फिर भी राज्य शक्तिशाली होने के कारण व्यक्तियों की सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमा कर सकता है और आवश्यकता पड़ने पर उसको हड़प भी सकता है। परन्तु, एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति को हड़ नहीं सकता है। इसके अतिरिक्त सरकार का नागरिकों पर प्रभुत्व होने के कारण वह अपने नागरिकों को ऋण देने के लिए विवश कर सकती है, जबकि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को ऋण देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता।
8. **विचारपूर्ण व्यय (Diliberation in Expenditure)** व्यक्तिगत व्यय प्रायः आदतों, रीति-रिवाजों तथा उस सामाजिक वर्ग की आर्थिक एवं व्यावसायिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है जिसका किवह सदस्य होता है। इसके विपरीत, सार्वजनिक व्यय का आकार व स्वरूप सरकार द्वारा पूर्ण निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सोच-समझ कर बनाई गयी नीतियों पर निर्भर करता है।
इस प्रकार लोक वित्त एवं निजी व्यवस्था में अनेक अंतर पाए जाते हैं परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि दोनों में कोई मौलिक अंतर नहीं है। इन दोनों में मात्र अंश का ही अंतर है। यदि अंतर है तो मात्र इतना कि एक का सम्बन्ध केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय निकायों के आय-व्यय से है तो दूसरे का सम्बन्ध निजी व्यक्तियों तथा परिवारों के आय-व्यय से है।

2.9 लोकवित्त तथा विकासशील देश (Public Finance and Developing Countries)

लोक वित्त का विकासशील देशों में महत्वपूर्ण स्थान होता है। विकासशील देशों में सरकार राजकोषीय नीति के माध्यम से स्थिरता के साथ आर्थिक विकास तथा आय वितरण की असमानता को कम करने के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहजता से सफल हो सकती है। वाल्टर हेलर (Walter Heller) की धारणा है कि विकासशील देशों में कर तथा बजट नीति के आर्थिक उद्देश्य निवेश को प्रोत्साहित करना, मुल्य स्थायित्व तथा धन एवं आय की असमानता को कम करना आदि हैं। उनका कथन है कि, "निजी उद्योगों पर आधारित विकसित देशों में राजकोषीय नीति के उद्देश्य-साधनों का अनुकूलतम् आवंटन, आर्थिक विकास, स्थायित्व तथा आय का सर्वोत्तम वितरण आदि हैं जो अल्पविकसित देशों के उद्देश्य से बहुत भिन्न नहीं हैं। यद्यपि विकसित तथा विकासशील देशों के राजकोषीय नीति के उद्देश्यों में बहुत हद तक समानता है फिर भी विकसित एवं विकासशील देशों में लोकवित्त के कार्य क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। विकासशील देशों की आर्थिक परिस्थितियाँ, वैधानिक तथा राजनीतिक वातावरण तथा प्रशासन की क्षमता विकसित देशों के भिन्न होती हैं। अतः एक ही तरह के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी भिन्न

नीतियों की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त इन देशों की प्राथमिकताएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं यथा- अमेरिका जैसे विकसित देश की प्राथमिकता अर्थिक विकास के उच्च स्तर को बनाए रखना हो सकता है, जबकि भारत जैसे विकासशील देश के लिए स्थिरता के साथ विकास करना तथा पूँजी निर्माण को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण होगा।

विकासशील देशों में आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने में राज्य को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। अतः इन देशों में लोक वित्त का महत्व अधिक होता है ऐसे राज्यों में जहाँ जनतंत्रीय प्रणाली कार्यरत है, वहाँ भौतिक नियंत्रण को अच्छा नहीं माना जाता है। अतः ऐसे राज्यों में मौद्रिक एवं राजकोषिय नीतियों के माध्यम से परोक्ष नियंत्रण का सहारा लेकर वांछित उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयास किया जाता है। भारत की द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इंगित किया गया है कि "नियोजन की प्रजातंत्रीय पद्धति में साधनों के प्रत्यक्ष अधिग्रहण से बचा जाता है तथा मुख्य रूप से कीमत यंत्र के माध्यम से ही कार्य किया जाता है।" अल्पविकसित देशों में लोकवित्त के महत्व को स्पष्ट करते हुए राजा चेलैया ने लिखा है कि, **"एक प्रजातंत्रीय देश में राजकोषीय नीति सर्वाधिक शक्तिशाली तथा सबसे कम अवांछनीय नियंत्रण यंत्र है जिसका उपयोग सरकार अर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए कर सकती है।"** पूँजी निर्माण अल्पविकसित देशों की प्रमुख समस्या है जिसके समधान हेतु इन देशों को राजकोषीय नीति का सहारा लेना पड़ता है। उचित नीति के माध्यम से बचतों में वृद्धि तथा विनियोग को प्रोत्साहित किया जा सकता है। नर्क्स के अनुसार, **"अल्पविकसित देशों में पूँजी निर्माण की समस्या का सामना करने में लोक वित्त की भूमिका महत्वपूर्ण है।"** अल्पविकसित देशों में लोकवित्त के महत्व को स्पष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि इन देशों में आर्थिक विकास को गति प्रदान करने, आर्थिक विषमता को कम करने, उद्योगों का संरक्षण एवं सहायता देने, सामाजिक सुरक्षा एवं जनकल्याण को बढ़ावा देने, देश की आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा बनाए रखने, दुर्लभ साधनों का सर्वोत्तम ढंग से आवंटन करने, आधारभूत उद्योगों की स्थापना करने, सामाजिक एवं आर्थिक पूँजी का निर्माण करने, बाजारों का विस्तार करने तथा गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर करने में सरकार राजकोषीय नीति को एक कारगर अस्त्र के रूप में प्रयोग कर सकती है।

2.10 लोक-वित्त का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध (Relation of Public Finance with other Social Science)

लोक वित्त एक सामाजिक विज्ञान है जिसमें मानव एवं समाज के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि इस बात की जानकारी प्राप्त की जाए कि लोक वित्त का उन सामाजिक विज्ञानों से क्या सम्बन्ध है जो मनुष्य एवं समाज के व्यवहार के भिन्न-भिन्न पहलुओं का भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन करते हैं। यहाँ हम निम्न सामाजिक विज्ञानों के साथ लोक वित्त के सम्बन्धों की चर्चा करेंगे।

1. **लोकवित्त एवं अर्थशास्त्र (Public Finance and Economics)** लोक वित्त, अर्थशास्त्र का ही एक पूरक अंग है, अतः इससे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। लोकवित्त के अध्ययन के बिना अर्थशास्त्र का अध्ययन अधूरा है। लोकवित्त तथा अर्थशास्त्र दोनों का ज्ञान होना आवश्यक है। यथा-लोकवित्त के सिद्धान्तों को समझने के लिए अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का ज्ञान होना आवश्यक है। अर्थशास्त्र के मूल नियमों को जाने बिना ही हम लोक वित्त के सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए (i)

किसी वस्तु पर नया कर लगाने से पूर्व वित्तमंत्री को उस वस्तु की मांग की लोच को ध्यान में रखना पड़ता है। (ii) सार्वजनिक आय को विभिन्न मदों पर किस प्रकार व्यय किया जाए ताकि सामाजिक लोभ अधिकतम हो, इसके लिए सरकार को अर्थशास्त्र के 'सम-सीमांत उपयोगिता नियम' का सहारा लेना पड़ता है। (iii) सार्वजनिक ऋण और विशेष कर ऋण के भुगतान की विधियों का अध्ययन करने के लिए मुद्रा, साख एवं बैंकिंग विधि का समुचित ज्ञान होना आवश्यक होता है। इस तरह, लोक-वित्त का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्तों को जानना परम आवश्यक है। **वैस्टेबल के अनुसार, "लोक वित्त के विद्यार्थी को अर्थशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना बहुत आवश्यक होता है।"** इस सम्बन्ध में एडमस का कथन है कि, **"लोक वित्त की ठोस नीति के निर्धारण हेतु राजनैतिक अर्थव्यवस्था का ज्ञान होना आवश्यक है।"**

2. **लोकवित्त एवं राजनीति शास्त्र (Public Finance and Political Science)** लोक वित्त तथा राजनीतिशास्त्र दोनों ही मानव व्यवहार का अध्ययन करते हैं। लोक वित्त किसी देश की राजनैतिक परिस्थितियों के अनुरूप ही कार्य करता है। डाल्टन के अनुसार, "लोक वित्त अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र की सीमा पर स्थित है।" इस तरह, अर्थशास्त्र की ही तरह, लोक वित्त का राजनीतिशास्त्र से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी देश की आर्थिक नीति एवं लोक वित्त की व्यवस्था इस बात पर आधारित होती है कि उस देश का राजनैतिक ढाँचा कैसा है तथा उस देश की राजनैतिक आर्कोक्षाएँ क्या हैं? देश की सरकार जिस 'वाद' (पूँजीवाद समाजवाद अथवा साम्यवाद) पर विश्वास करती है, उसी के अनुरूप ही देश की आर्थिक क्रियाएँ संचालित होती हैं। एक पूँजीवादी देश की आर्थिक नीति निश्चित रूप से एक सामाजवादी देश की आर्थिक नीति से भिन्न होगी सरकार कोई नया कर लगाने से पूर्व उसके आर्थिक परिणामों के साथ-साथ देश की राजनैतिक परिस्थितियों का भी ध्यान रखती है। सरकार की आय, व्यय एवं विनीय क्रियाएँ देश के राजनैतिक वातावरण से ही प्रभावित होती हैं। सरकार लोक कल्याणकारी कार्यों पर ही अपनी आय का अधिकांश भाग व्यय करती है, जो देश के राजनैतिक कलेवर पर निर्भर करता है। एक समाजवादी सरकार देश में धन के वितरण की असमानता को कम करने के लिए धनिकों पर अधिक कर लगाकर प्राप्त आय को गरीबों के हित में खर्च करने का प्रयास करती है। इस तरह, राजनीतिक शास्त्र के नियमों के आधार पर ही लोकवित्त के नियमों का निर्माण किया जाता है। तथा व्यावहार में लोकवित्त, देश में व्याप्त राजनैतिक ढाँचों के अनुरूप कार्य करता है। स्पष्ट्यता, लोकवित्त एवं राजनीतिशास्त्र परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।
3. **लोक वित्त एवं इतिहास (Public Finance and History)** लोकवित्त का इतिहास से भी सम्बन्ध होता है। इतिहास के अध्ययन से हमें अतीत की घटनाओं एवं प्रभावों की जानकारी प्राप्त होती है। जिसके आधार पर भविष्य योजनाएँ तैयार की जाती हैं। विभिन्न देशों के इतिहास का अध्ययन करने से हमें इस तथ्य की जानकारी प्राप्त होती है कि उनके द्वारा समय विशेष में अपनाए गए लोकवित्त के विभिन्न सिद्धान्त किस तरह सफल अथवा असफल सिद्ध हुए। यह ज्ञान लोक वित्त की वर्तमान एवं भावी नीति को प्रभावित करेगा। यदि पूर्व की घटनाएँ लाभप्रद रही होती हैं। तो उनका अनुसरण किया जाता है अन्यथा उनकी पुनरावृत्ति नहीं की जाती है। इस तरह, लोकवित्त की कोई नीति बिना अतीत की घटनाओं को जाने

नहीं बनाई जा सकती है। इतिहास हमें तथ्य, आँकड़े तथा उदाहरण प्रदान करता है। जो लोकवित्त की नीतियों एवं कार्यकलापों के निर्धारण में बहुत ही सहायक होते हैं।

4. **लोक वित्त एवं सांख्यिकी (Public Finance and Statistics)** लोकवित्त एवं सांख्यिकी में परस्पर प्रत्यक्ष एवं घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। सांख्यिकी में आंकड़ों के आधार पर अनुमान एवं निष्कर्ष निकाले जाते हैं तथा उनका सापेक्षिक अध्ययन किया जाता है। लोकवित्त सही और वैज्ञानिक आधार पर एकत्र किये गये आंकड़ों के सहारे चलता है। सरकार प्राप्त आय को किन-किन मदों पर कितना-कितना व्यय करती है, कुल व्यय में किसी विशिष्ट मद का क्या अनुपात अथवा सापेक्षिक महत्व है तथा विगत वर्षों की तुलना में विभिन्न मदों पर अधिक अथवा कम व्यय किया जा रहा है, इसकी जानकारी आंकड़ों के सहायता से सहजता से प्राप्त की जा सकती है। इसी तरह, आंकड़ों की सहायता से यह ज्ञात किया जा सकता है कि सरकार को किन-किन मदों से कितनी आय प्राप्त होती है। विगत वर्षों में इन मदों से कितनी आय प्राप्त हुई थी तथा आय प्राप्ति की दृष्टि से कौन-कौन सी मदें अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं। इसी तरह, आंकड़ों के माध्यम से करों के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। करों से राज्य को कितनी आय प्राप्त होती है, प्रत्येक नागरिक को औसतन कितना कर अदा करना पड़ा है। कर का पंजी निर्माण पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, करदाता क्षमता कितनी है, राष्ट्रीय आय में करों का क्या योगदान है, करों का वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है, आदि बातों का ज्ञान आंकड़ों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। बजट का निर्माण करने में भी आंकड़े महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बजट चालू वर्ष में होने वाली आय एवं व्यय के अनुमानित आंकड़ों का एक विवरण होता है। इसमें आय एवं व्यय के जो अनुमान लगाए जाते हैं, वे सांख्यिकीय सिद्धान्तों पर आधारित होते हैं। इसी तरह, प्रत्येक सरकार अपनी वित्तीय नीति के निर्धारण से पूर्व सार्वजनिक आय-व्यय सम्बन्धी आंकड़ों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करती है।
5. **लोक वित्त एवं समाजशास्त्र (Public Finance and Sociology)** लोक वित्त का समाजशास्त्र से भी गहरा सम्बन्ध है। कर लगतो समय सरकार इस बात का ध्यान रखती है कि इसका समाज के निर्धन वर्ग पर विपरीत प्रभाव न पड़े। इसके अतिरिक्त, देश में कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए सरकार आर्थिक दृष्टि से निर्धन वर्गों के लिए सहायता की व्यवस्था करती है।

2.11 अधिकतम सामाजिक लाभ या कल्याण का सिद्धान्त (Principle of Maximum Social Advantage)

आजकल इस बात को विशेष महत्व दिया जाने लगा है कि राजस्व का उचित सिद्धान्त क्या होना चाहिए। राजस्व के अन्तर्गत सरकार आय व व्यय सम्बन्धी दो मुख्य कार्यों को करती है, इसलिए राजस्व का जो भी सिद्धान्त होगा वह यह बतायेगा कि सरकार की कितनी आय प्राप्त करनी चाहिए तथा कितनी व्यय रकना चाहिए। यहाँ यह कहा जा सकता है कि राजस्व का न्यायोचित सिद्धान्त वह होगा जिनकी अनुसार राजकीय आय व व्यय से अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त हो सके। डाल्टन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए इसको अधिकतम सामाजिक लाभ का नियम कहा है। उसके अनुसार, "यह नियम राजस्व के मूल में विद्यमान रहता है तथा राजस्व की

सर्वोत्तम प्रणाली वह है जिसमें राजकीय आय-व्यय सम्बन्धी कार्यों के फलस्वरूप अधिकतम लाभ होता है।

अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त का आधार सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का तथा सम-सीमान्त उत्पादनशीलता नियम है। जिस प्रकार एक व्यक्ति अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च करता है कि उसे प्रत्येक खर्च से लगभग समान सीमान्त उपयोगिता मिलती रहे; तथा वह उत्पत्ति के विभिन्न साधनों का उपयोग इस प्रकार करता है कि उसे प्रत्येक साधन से अधिकतम उत्पत्ति मिले, ताकि कुल उत्पत्ति अधिकतम हो सके। इसी प्रकार, सामाजिक लाभ को अधिकतम करने के लिए राज्य को भी विभिन्न मदों पर इस प्रकार व्यय करना चाहिए कि प्रत्येक व्यय से समान सीमान्त उपयोगिता मिले, और प्रत्येक साधन से इस प्रकार आय प्राप्त करनी चाहिए कि कुल आय अधिकतम हो जाये।

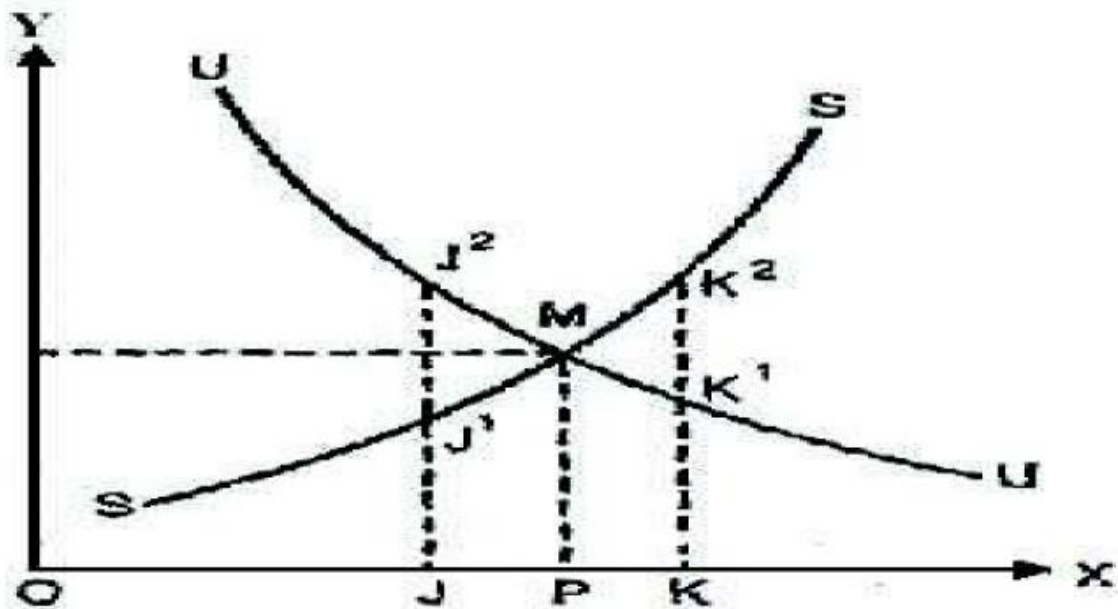
सिद्धान्त की व्याख्या- इस सिद्धान्त की महत्वपूर्ण व्याख्या डाल्टन के द्वारा की गयी है। उनके अनुसार **"राजस्व के मूल में एक बुनियादी सिद्धान्त होना चाहिए। इसे हम अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त कह सकते हैं। राजस्व की समस्त क्रियाएँ एक प्रकार से समाज के एक वर्ग से दूसरे वर्ग में क्रय-शक्ति का हस्तान्तरण हैं। इस क्रय-शक्ति के हस्तान्तरण का मुख्य उद्देश्य अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त करना है।"** सिद्धान्त की स्पष्ट रूप से व्याख्या करते हुए डाल्टन ने लिखा है कि **"राजकीय व्यय प्रत्येक दिशा में उस सीमा तक बढ़ता रहना चाहिए जब तक कि इस व्यय से उत्पन्न होने वाला सन्तोष राज्य द्वारा लगाये गये करों से उत्पन्न होने वाले असन्तोष के बराबर न हो जाए। यह सीमा ही राजकीय आय और व्यय में वृद्धि करने की आदर्श सीमा हो सकती है।"**

अधिकतम सामाजिक लाभ उसी दशा में प्राप्त हो सकता है, जबकि सार्वजनिक आय (करारोपण) से होने वाला सामाजिक असन्तोष सार्वजनिक व्यय से प्राप्त सन्तोष के बराबर न हो जाय। जब तक सामाजिक त्याग सामाजिक सन्तोष के बराबर न हो जाये। सरकार के द्वारा सार्वजनिक कार्यों की पूर्ति के लिए समय-समय पर लगाये जाते हैं। करों के लगाने से लोगो का त्याग बढ़ने लगता है, उनकी क्रयशक्ति में कमी आने लगती है, और उनके रहन-सहन के स्तर में भी कमी आ जाती है। कुल मिलाकर हम इसे **'सीमान्त सामाजिक त्याग (Marginal Social Sacrifice)** कह सकते हैं। सरकार आय प्राप्त करने के बाद इस आय को उन विभिन्न प्रकार की योजनाओं में व्यय करती है, जिनसे समाज के लोगो को सुख-सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार सार्वजनिक व्यय से प्राप्त होने वाली सामाजिक सुख-सुविधा को हम **'सीमान्त सामाजिक सन्तुष्टि (Marginal Social Satisfaction)** कह सकते हैं। अतः राज्य को सार्वजनिक व्यय उसी सीमा तक बढ़ाने चाहिए जहाँ पर व्ययों से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता करारोपण के सीमान्त त्याग के बराबर न हो जाय। अधिकतम सामाजिक लाभ को तालिका 2.1 से स्पष्ट किया जा सकता है।

कर व व्यय की राशि की इकाई	कर की प्रत्येक इकाई से होने वाला सामाजिक त्याग	सार्वजनिक व्यय की प्रत्येक इकाई इकाई से होने वाली सामाजिक उपयोगिता
1	50	95
2	55	85

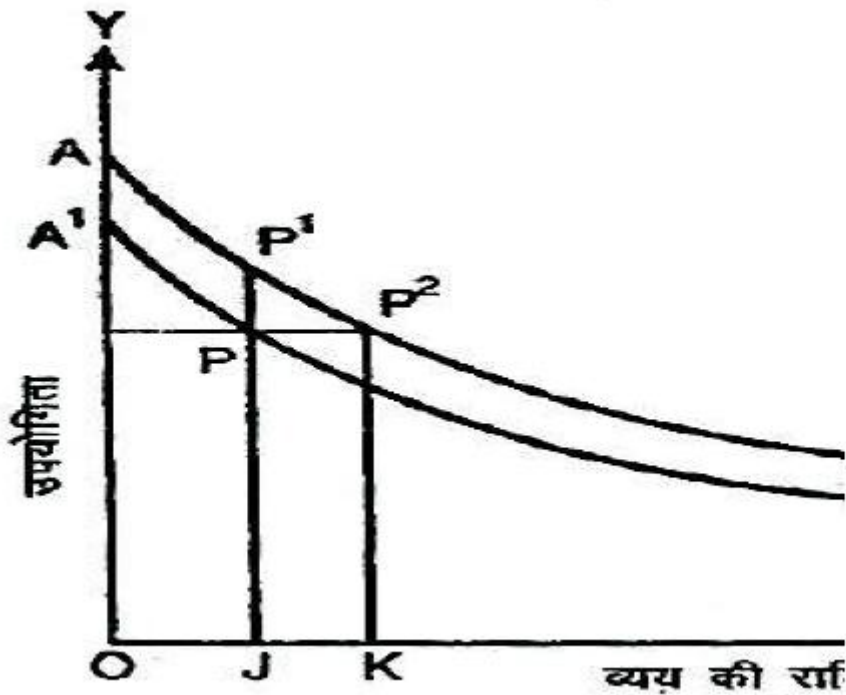
3	60	75
4	65	65
5	70	55
6	75	45
7	80	35

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ज्यो-ज्यो समाज में कर भार बढ़ता है त्यों-त्यों सामाजिक त्याग में वृद्धि होती है, क्योंकि लोग पुराने कर भारों को तो थोड़े समय बाद भूल जाते हैं, परन्तु प्रत्येक नया कर सीमान्त त्याग में वृद्धि कर देता है। जहाँ तक सार्वजनिक व्यय का प्रश्न है, व्ययों के बढ़ जाने से बार-बार समान सुविधाएँ उपलब्ध होती रहे तो उन सुविधाओं का समाज के लिए विशेष महत्व नहीं रह जाता है। उपयोगिता हास नियम की प्रवृत्ति के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। तालिका के अनुसार अधिकतम सामाजिक लाभ चौथी इकाई पर है। अतः चौथी इकाई के बाद सरकार को कर नहीं लगाने चाहिए; क्योंकि ज्योंही इससे आगे कर लगाये जायेंगे, त्योंही सामाजिक त्याग 65 से बढ़कर 70 तक पहुँचा जाता है। और सामाजिक लाभ 65 से घटकर 55 रह जाता है। इस प्रकार चौथी इकाई पर लाभ और त्याग आपस में बराबर होते हैं। यहाँ इस बात को भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि करारोपण की प्रथम, द्वितीय और तृतीय इकाई के त्यों से व्यय की गयी राशि से मिलने वाला लाभ अधिक है। अतः करारोपण उस बिन्दु तक किया जाय जहाँ पर त्याग और सन्तोष दोनों बराबर होते हैं। इस व्याख्या को रेखाचित्र 2.1 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।



रेखाचित्र 2.1 में Ox - अक्ष पर सार्वजनिक आय व व्यय को तथा OY - अक्ष पर सामाजिक सीमान्त त्याग व सीमान्त उपयोगिता को प्रदर्शित किया गया है। SS रेखा त्याग को व UU रेखा सन्तुष्टि को व्यक्त करती है। ज्यों-ज्यों की दर में वृद्धि की जाती है। त्यों-त्यों SS रेखा बायें से दायीं ओर ऊपर को उठती है। इसका अभिप्राय यह है कि ज्यों-ज्यों कर-भार बढ़ता है, त्यों-त्यों सामाजिक त्याग में वृद्धि होती है। इसके विपरीत, ज्यों-ज्यों सार्वजनिक

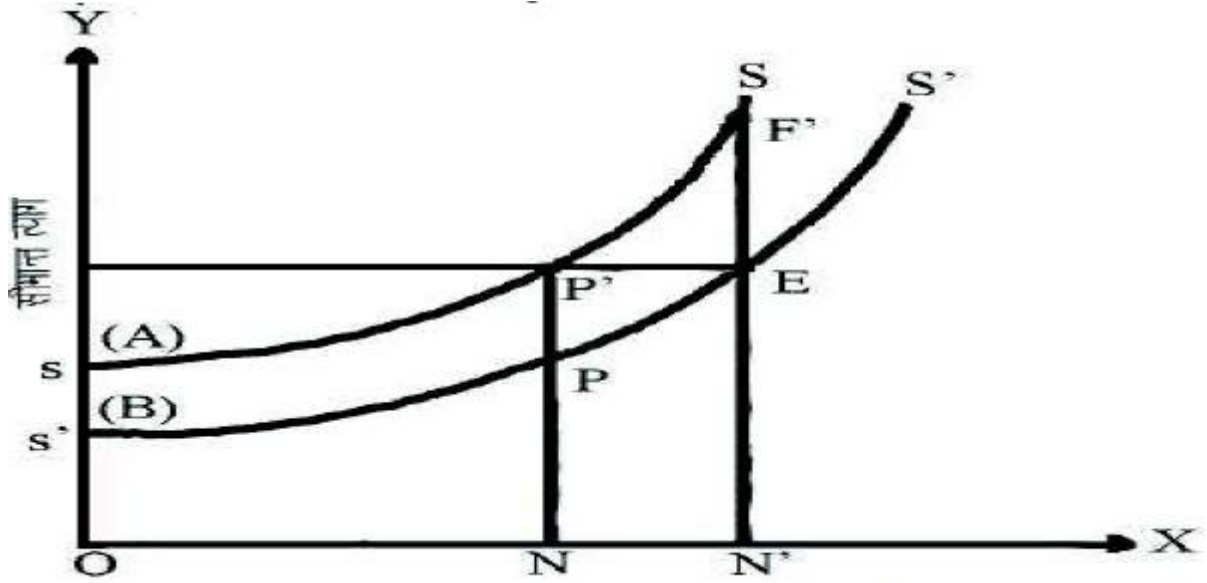
व्यय में वृद्धि की जाती है त्यों-त्यों UU रेखा बायें से दायीं ओर गिरते हुए क्रम में होती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि व्यय में पहले की अपेक्षा अधिक वृद्धि भी सामाजिक सन्तोष को बढ़ाने की अपेक्षा घटाती है। यहाँ सीमान्त उपयोगिता मस नियम क्रियाशील हो जाता है। SS वक्र UU वक्र को बिन्दु पर काटता है। स्पष्ट है कि बिन्दु M पर अधिकतम सामाजिक सन्तुष्टि प्राप्त हो रही है। बिन्दु M पर सार्वजनिक आय व सार्वजनिक व्यय का सन्तुलन हो चुका है। रेखाचित्र के अनुसार किसी भी सरकार को OP मात्रा में आय प्राप्त करनी होगी और उतना ही OP मात्रा में व्यय भी करना होगा। सरकार को आय प्राप्त करने व व्यय करने की क्रिया बिन्दु 0 से बिन्दु P तक करनी चाहिए। यदि सरकार बिन्दु P से ओ आय व व्यय की क्रिया लागू करती है तो यह असन्तुलित व्यवस्था होगी, क्योंकि बिन्दु P से ओ मिलने वाली उपयोगिता त्याग की अपेक्षा कम है। चित्र के अनुसार यदि सरकार K बिन्दु तक कर लगाये और उतनी ही राशि को व्यय करे तो समाज का सीमान्त त्याग K_1, K_2 है, जबकि इस व्यय से प्राप्त होने वाली सामाजिक उपयोगिता K_1, K_2 है, और यहाँ पर K_1, K_2 के बराबर समाज को त्याग अधिक करना पड़ेगा। अतः यह सिद्ध हो गया कि सरकार को OP से आगे अपना क्षेत्र नहीं बढ़ाना चाहिए। इसके विपरीत यदि सरकार OJ बिन्दु तक ही अपने आय-व्यय को सीमित रखे तो यह स्थिति भी उपयुक्त नहीं है क्योंकि सरकार OJ मात्रा में कर लगाकर जो राशि सार्वजनिक हित में खर्च कर रही है उससे सामाजिक सीमान्त त्याग $1, 1$ है, जबकि इस खर्च से सामाजिक सन्तुष्टि J_1, J_2 है। स्पष्ट है कि सामाजिक सन्तुष्टि सामाजिक त्याग से अधिक है। यहाँ समाज की सकल सन्तुष्टि $1, 2$ के बराबर है। इससे स्पष्ट होता है कि लोगो में अभी भी त्याग करने की क्षमता है। इसलिए सरकार धीरे-धीरे यह क्रम बढ़ा कर बिन्दु P तक लाना चाहिए, तभी अधिकतम सामाजिक सन्तुष्टि प्राप्त हो सकेगी। अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त केवल इस बात की ही व्याख्या नहीं करता है कि सरकार को किस सीमा तक आय व व्यय का संचालन करना चाहिए, अपितु वह इस बात को भी स्पष्ट करता है कि (6) राजकीय व्यय को विभाजन विभिन्न मदों पर किस प्रकार हो- अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त के अनुसार सार्वजनिक व्यय को विभिन्न मदों में इस प्रकार विभाजित करना चाहिए कि प्रत्येक मद पर जो राशि व्यय की जा रही है, उससे मिलने वाला सीमान्त सामाजिक सन्तोष लगभग बराबर हो; अतः यहाँ पर समसीमान्त उपयोगिता नियम के अनुसार आचरण करना है। ऐसा करने से समाज को अधिकतम लाभ मिलेगा। माना कोई राष्ट्र विकसित हो अथवा विकासशील, उसकी अपनी-अपनी समस्याएँ हो है और प्रत्येक समस्या से उसे समान उपयोगिता भी नहीं मिल सकती है। माना किसी राष्ट्र के सम्मुख तीन समस्याएँ होती है और प्रत्येक समस्या से उसे समान उपयोगिता भी नहीं मिल सकती है। माना किसी राष्ट्र के सम्मुख तीन समस्याएँ युद्ध, शिक्षा व स्वास्थ्य की है। अब यदि वहाँ की सरकार अकेले युद्ध के संचालन पर अधिक खर्च करे तो इससे समाज का अधिकतम कल्याण नहीं होगा। अतः सरकार तभी अधिकतम सन्तोष प्रदान कर सकती है, जबकि वह सब समस्याओं पर लगभग बराबर व्यय करे। इस बात को हम रेखाचित्र 2.2 से स्पष्ट कर सकते हैं।



चित्र में AB तथा A'B' उस समय की उपयोगिता वक्र-रेखाएँ हैं जब राज्य AA' मदों पर परव्यय करता है। यदि राज्य O/ राशि A1 मद पर तथा OK राशि A मद पर व्यय करता है। तो इस स्थिति में उपयोगिता A1 मद से OIPA तथा A मद से OKPA प्राप्त होगी। दोनों ही मदों से सम्पूर्ण उपयोगिता अधिकतम होगी; क्योंकि दोनों मदों की सीमान्त उपयोगिता (JP=KP) आपस में बराबर है। यदि मदों पर खर्च करने का तरीका उपर्युक्त से भिन्न अपनाया गया तो यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है। (ii) राजकीय आय के स्रोतों का निर्माण:- अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त इस बात की भी व्याख्या करता है कि आय के विभिन्न स्रोतों में करों का निर्धारण किस प्रकार किया जाय कि सामाजिक त्याग न्यूनतम हो। माना, किसी मद में करों के लगने से सीमान्त त्याग दूसरे मद की अपेक्षा अधिक होता है, तो सरकार का यह कर्तव्य है कि वह पहली मद से कर-भार हटा कर दूसरी मद में समायोजित कर दें। इस प्रकार से सामाजिक त्याग में अवश्य कमी आयेगी। यहाँ यह भी धिया जा सकता है कि धनिकों की अपेक्षा निर्धनों पर कर-भार कम कर देने से सामाजिक त्याग में बहुत कमी आयेगी। उदाहरण के लिए A, B, C, तथा D व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति अलग-अलग है। यदि इन व्यक्तियों पर एक रूपया कर लगाया गया तो विभिन्न व्यक्तियों का त्याग अलग-अलग होगा। त्याग की तुलनात्मक स्थिति का तालिका 2.2 में स्पष्ट किया गया है।

द्रव्य की इकाइयाँ कर की मात्रा(रु0में)	व्यक्तियों का सीमान्त त्याग			
	A	B	C	D
1 रु0 कर देने पर	5	6	8	[10]
2 रु0 कर देने पर	6	7	[10]	11
3 रु0 कर देने पर	7	[10]	12	13
4 रु0 कर देने पर	[10]	15	13	14
5 रु0 कर देने पर	12	16	17	20

मान लीजिए सरकार को 10 रूपये कर से वसूल करने है, तो उसे A व्यक्ति से 4 रू B से 3 रू, C से 2 रू तथा D से 150 वसूल करना चाहिए, क्योंकि ऐसी दशा में सब का सीमान्त त्याग 10 इकाई के बराबर है। संक्षेप में, करारोपण लोगों की देय-क्षमता के अनुसार किया जाना चाहिए।

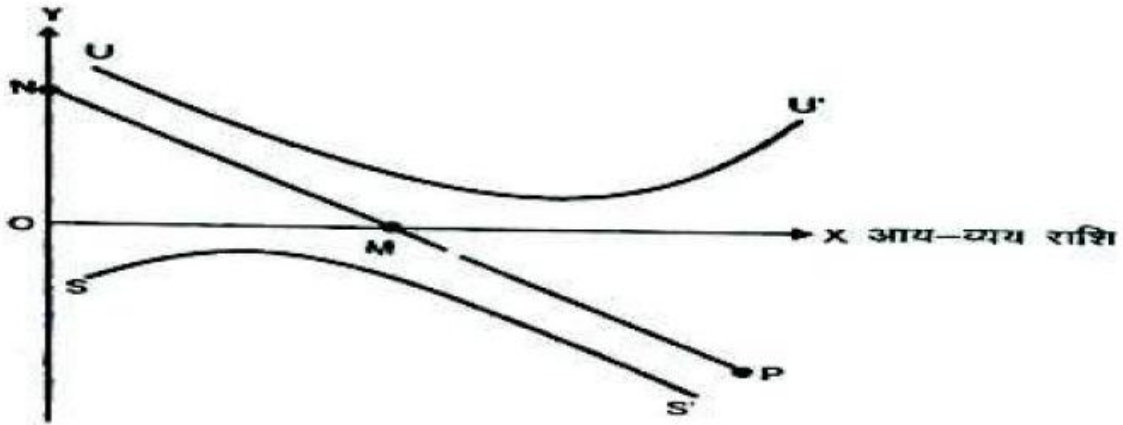


रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Diagrammatic Representation):- उपर्युक्त व्याख्या को रेखाचित्र 2.3 से स्पष्ट किया जा सकता है। माना सरकार द्वारा A तथा B वस्तुओं पर कर लगाया जाता है। कर लगने से A वस्तु के सीमान्त त्याग की रेखा को SS से तथा B वस्तु के सीमान्त त्याग की रेखा को s's' से दर्शाया गया है। जब A वस्तु से ON और B वस्तु ON मात्रा में कर वसूल किया जाता है, तो दोनों दशाओं में सीमान्त त्याग $NP = N'E'$ है। यह स्थिति अधिकतम सामाजिक लाभ की है। यदि A वस्तु से ON की अपेक्षा ON मात्रा में कर वसूल किया गया तो A वस्तु का सीमान्त त्याग B वस्तु के सीमान्त त्याग N'E' से बढ़कर NE' हो जायेगा, अतः ऐसी स्थिति में अधिकतम सामाजिक लाभ नहीं हो सकता है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त करने के लिए तीन बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

- (i) सार्वजनिक व्यय से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता कर-भत्तार के त्याग के बराबर होनी चाहिए।
- (ii) विभिन्न साधनों पर लगाये गये करों के भार से उत्पन्न सीमान्त त्याग बराबर होना चाहिए।
- (iii) विभिन्न उपयोगों पर सार्वजनिक व्यय से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता बराबर नहीं होनी चाहिए।

प्रो० मसग्रोव ने भी डाल्टन व पीगू के अधिकतम सामाजिक कल्याण के विचार के ही आधार पर अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त पर अपने विचार प्रकट किये हैं, जैसा कि हम जानते हैं डॉ० डाल्टन (Dalton) ने कहा है, सरकारी आय तथा व्यय से सामूहिक फल के रूप में समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त होना चाहिए इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार को अर्थ-प्रबन्ध इस प्रकार करना चाहिए जिससे समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। प्रो० पीगू (Pigou) ने इस नियम को अधिकतम सामूहिक कल्याण का नियम (Law of Maximum Aggregatte welfare) कहा है। उनके अनुसार - **जहाँ तक राजनीतिक सिद्धान्त का सम्बन्ध है, अधिकतम सामूहिक कल्याण प्रत्येक स्थान पर हो यही राज्य का सही उद्देश्य होना चाहिए।**

प्रो० मसग्रेव के अनुसार- (i) राज्य द्वारा साधनों के विभिन्न जन-उपयोग में वितरित किया जाना चाहिए। (ii) राजकीय व्यय को उसी बिन्दु तक किया जाना चाहिए, जिस पर कि अन्तिम इकाई से प्राप्त होने वाला सीमान्त सामाजिक लाभ उस सामाजिक सीमान्त त्याग के बराबर हो, जो कर के रूप में द्रव्य की अन्तिम इकाई देने में किया जाता है, इस विचार को रेखाचित्र 2.4 से स्पष्ट किया गया है।



चित्र में सार्वजनिक व्यय को UU से तथा करों से होने वाले त्याग को SS रेखा से दिखाया गया है। दोनों ही दशाओं में उपयोगिता को घटती दर से दिखाया गया है। NP रेखा SS में से UU को हटाने से प्राप्त होती है जो शुद्ध बचत को बताती है, प्रो० मसग्रेव के अनुसार बजट का अनुकूलतम आकार OM पर तय होता है। यहाँ सीमान्त शुद्ध लाभ शून्य हो जाता है। अतः करारोपण के रूप में न्यूनतम त्याग का विचार सार्वजनिक व्यय के रूप में अधिकतम लाभ के विचार से मेल खाता है, व्यवहार में त्याग व उपयोगिता को मापनपा कठिन है, परन्तु इसे अनुभव किया जा सकता है।

अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त की सीमाएँ अथवा व्यावहारिक कठिनाइयाँ (Limitations and Difficulties of Principal of Maximum Social Advantage)

इस सिद्धान्त की प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं:

(i) **सामाजिक सीमान्त त्याग व उपयोगिता को मापना कठिन-** यह कहा जाता है कि सरकार द्वारा लगाये जाने वाले करों से त्याग बढ़ता है। परन्तु त्याग को मापना कठिन है। साथ ही, सभी आय-वर्गों के व्यक्ति रहते हैं, जिनमें से प्रत्येक की त्याग की क्षमता अलग-अलग होती है। धनी व्यक्ति की अपेक्षा निर्धन व्यक्ति अधिक त्याग करता है। ऐसी स्थिति में समाज के कुल त्याग का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। यही समस्या सार्वजनिक व्यय से प्राप्त होने वाली उपयोगिता के सम्बन्ध में भी है। हमें इस बात की सही जानकारी नहीं मिल पाती है कि सार्वजनिक व्यय से कौन-सा वर्ग लाभान्वित हो रहा है और कौन-सा नहीं। दूसरी समस्या यह है कि हम इस बात का सही अनुमान नहीं लगा सकते हैं कि किस मद में कितना व्यय किया जाय, ताकि उस व्यय से प्राप्त होने वाला सामाजिक लाभ दूसरी मद की अपेक्षा अधिक हो जाय।

(ii) **अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन दृष्टिकोण में अन्तर-** राज्य आय का सृजन केवल अल्पकालीन योजनाओं के लिए नहीं करती है, बल्कि दीर्घकालीन योजनाओं के लिए भी करती है। ऐसी स्थिति में करों का भारवर्तमान

पीढ़ी को वहन बरना होगा, जबकि इसका लाभ भावी पीढ़ी को होगा। इस प्रकार वर्तमान त्याग व भविष्य के लाभ के आधार पर अधिकतम सामाजिक लाभ की कल्पना करना सम्भव नहीं है।

(iii) अनुपयोगिता को ज्ञात करना कठिन- लोक वित्त आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों से तो प्रभावित होता है, इसको सही दिशा देने के लिए अनेक प्रकार के उपाय करने होते हैं। जब तक लोक-वित्त की कार्य प्रणाली द्वारा इस बात की जानकारी नहीं कर ली जाती है कि लोकवित्त के कार्यों से कहाँ और किससीमा तक अनुपयोगिता बढ़ती है तब तक अधिकतम सामाजिक लाभ की कल्पना करना निरर्थक है।

(iv) करारोपण के मिश्रित लाभों की जानाकारी न होना- एक व्यक्ति के लिए यह बताना कठिन है कि करों से उसे कितनी अनुपयोगिता प्राप्त हो रही है, और आय से कितनी उपयोगिता, तब सरकार के लिए तो यह कार्य और भी कठिन हो जाता है उसे कितनी उपयोगिता तथा अनुपयोगिता प्राप्त हो रही है। अतः यह निश्चित करने के लिए कि राज्य की वित्तीय क्रियाओं से सामाजिक कल्याण हुआ या नहीं, डाल्टन ने निम्नलिखित आधार बताये हैं। अधिकतम सामाजिक लाभ की आर्थिक कसौटी (Economic Test of Social Advantage) डाल्टन ने अधिकतम सामाजिक लाभ के निम्नलिखित आधार बताये हैं:

(1) आर्थिक कल्याण में वृद्धि- अधिकतम सामाजिक कल्याण तभी हो सकता है जब देश के आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। आर्थिक कल्याण में वृद्धि दो बातों पर निर्भर करती है:

(i) देश की उत्पादन-शक्ति में वृद्धि, तथा (ii) उत्पादन में सुधार। डाल्टन के अनुसार निम्न बातें इसे तय करेंगी।

1. उत्पादन में सुधार तभी कहा जायेगा जबकि कम से कम प्रयास के बाद श्रमिकों के द्वारा पहले से अधिक उत्पादन किया जा रहा हो।

2. उत्पादन के संगठन में सुधार हो रहा हो, जिसके कारण उत्पादन के साधनों का अव्यय न हो; तथा

3. उत्पादन के स्वरूप व आकार में सुधार हो, जिसके कारण सब की आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से की जा सके।

संक्षेप में, उत्पादन-शक्ति में वृद्धि करने के लिए सरकार को आवश्यक वस्तुओं पर कम कर लगाने चाहिए ताकि लोगो को आसानी से सस्ती वस्तुएँ उपलब्ध हो सके; ऐसी व्यवस्था अपनायी जानी चाहिए कि आयात होने वाली वस्तुओं के आयात पर रोक लग जाय; और घरेलू उद्योगो-धन्धो को अनेक प्रकार का संरक्षण प्रदान कर रोजगार के स्तर को बढ़ाया जाना चाहिए। इन उपायों से उत्पादन की शक्तियों का विकास होगा और सामाजिक कल्याण में भी वृद्धि होगी। उत्पादित धन के वितरण में समानता लाने के लिए डाल्टन ने निम्नलिखित बातों को लागू करने की सिफारिश की है।

(i) धन के वितरण की असमानताओं में कमी करना; तथा

(ii) गरीब वर्ग के आय-स्तर में समय-समय पर हाने वाले उतार-चढ़ावों को रोकना।

डाल्टन का कहना है कि "धन की विषमता को कम करना इसलिए वांछनीय है कि इससे व्यक्तियों और परिवारों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार आय मिलेगी और उनकी आय उपभोग करने की शक्ति के अनुसार ही होगी।

(2) सुरक्षा एवं शान्ति- जब तक देश में आन्तरिक एवं बाह्य शान्ति स्थापित नहीं की जाती है तब तक किसी भी प्रकार का किया गया आर्थिक विकास देश के लिए लाभप्रद नहीं हो सकेगा, विदेशी आक्रमणों से देश की सुरक्षा

के लिए सेना व युद्ध-सामग्री पर किया जाने वाला व्यय देश के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करेगा। इसी प्रकार, आन्तरिक शान्तिव्यवस्था को बनाये रखने के लिए पुलिस एवं प्रशासन-व्यवस्था पर किया जाने वाला व्यय भी लाभप्रद होना। इसलिए एक बार स्थायी शान्ति प्राप्त कर लेने के बाद बार-बार की परेशानियों से बचा जा सकता है।

(3) आर्थिक जीवन में स्थायित्व- अधिकतम सामाजिक कल्याण तभी होगा, जबकि सरकारी प्रयासों के द्वारा आर्थिक स्थायित्व प्राप्त किया जा। आर्थिक उच्चावन के कारण मुद्रा प्रयास बेरोजगारी या अवसाद जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस के कारण उपभोक्ताओं और उत्पादकों में निराशा पैदा होती है और आर्थिक विकास में भी वृद्धि नहीं होती है। अतः सरकार द्वारा आर्थिक स्थायित्व के लिए किया जा रहा प्रत्येक प्रयास आर्थिक कल्याण में वृद्धि करेगा।

(4) भावी पीढ़ी पर प्रभाव- केवल अल्पकालीन समस्याओं के समाधान से ही आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं हो सकती है, बल्कि भावी पीढ़ी को समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कियाजाने वाला कार्य आर्थिक कल्याण में वृद्धि करता है। अतः सरकार को भावी योजनाओं के विकास पर भी उतना ही ध्यान देना होगा जितना कि अल्पकालीन योजनाओं पर।

राजकोषीय नीति के अन्तर्गत इस बात का भी विशेष ध्यान रखना होता है कि जिस नीति को लागू किया जा रहा है उसका भविष्य में क्या प्रभाव होगा। डाल्टन के अनुसार "किसी भी वित्तीय प्रस्ताव की विवेचना करते समय इस प्रस्ताव से उत्पन्न हाने वाले प्रभावों को ध्यान में रखना चाहिए। समाज को होने वाले लाभ-हानि के बीचपता लगाया जाय कि कौन अधिक है। इसकी तुलना अन्य प्रस्तावों के लाभ तथा हानियों से करके जो निष्कर्ष प्राप्त हो उन्हीं के अनुसार कार्य करना चाहिए।" इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि सरकार को ऐसी नीति अपनानी चाहिए जिससे अधिकतम सामाजिक कल्याण में वृद्धि हो सके। इस सन्दर्भ में डाल्टन के विचार उल्लेखनीय हैं-"हम बार-बार अधिकतम सामाजिक लाभ के सरल किन्तु व्यापक सिद्धान्त पर लौट आते हैं। किसी भी विचाराधीन वित्तीय प्रस्ताव के समस्त सम्भव परिणामों का, जिनका अनुमान किया जा सके, पूरा लेखा-जोखा करें तथा समाज से हाने वाले सम्भावित लाभों और हानियों से तुलना करें। इस सन्तुलन की तुलना दूसरे वैकल्पिक प्रस्तावों के सन्तुलनों से करें और इन तुलनाओं के परिणाम पर अमल करें। जो लोग इन लेखा-जोखा से परेशान हो उठे हों उन्हीं प्राचीन यूनानियों की इस कहावत से सात्वना प्राम्नी करनी चाहिए कि चीजें सरल नहीं अपितु चीजे सुन्दर हुआ करती है, और इसका कोई सस्ता ढंग है भी नहीं। अधिकतम सन्तुष्टि के सन्दर्भ में श्रीमती उर्सला हिक्स के विचार (Views of Mrs, Hicks) श्रीमती उर्सला हिक्स ने डाल्टन के अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त की विवेचना दूसरे ढंग से की है। उनका मतह कि लोक वित्त की कार्यप्रणाली की कुशलता व अकुशलता को दो आदर्शों के आधार पर मापा जाना चाहिए। (i) उत्पादन आदर्श (Production Optimum), (ii) उपयोगिता आदर्श (Utility Optimum)। उत्पादन आदर्श (Production optimum)- श्रीमती हिक्स के अनुसार, आर्थिक नीति का अन्तिम उद्देश्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना है। इसलिए आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के साधनों को बढ़ाया जाय। यदि उत्पादन अधिकतम न किया गया तो सन्तुष्टि कम प्राप्त होगी, चाहे वितरण न्यायोचित ही क्यों नहो। वस्तु के अभाव में उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होपायेगी। उत्पादन को अधिकतम

करने का तरीका साधनों का उचित बँटवारा है। श्रीमती हिक्स के शब्दों में, "उत्पादन को अधिकतम करने की शर्त यह है कि उत्पन्न वस्तुओं के स्थिर रहने की दशा में, साधनों के वितरण में परिवर्तन करके दूसरी वस्तुओं का उत्पादन कम किये बिना एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धि करना असम्भव हो।

उपयोगिता आदर्श (Utility optimum)- श्रीमती हिक्स के अनुसार, उत्पादन आदर्श के बाद लोक-वित्त का दूसरा आधार उपयोगिता आदर्श है। उत्पादन आदर्श को विभिन्न व्यवस्थाओं से प्राप्त किया जा सकता है। हम इन व्यवस्थाओं में से उन व्यवस्थाओं को चुनना होता है। जो अधिकतम सन्तुष्टि दे सकें। इस उपयोगिता आदर्श को 'उत्पादन आदर्श' की तहत परिभाषित किया जा सकता है। "उपयोगिता उस समय सबसे अधिक होती है, जबकि एक व्यक्ति की सन्तुष्टि को बिना दूसरे की सन्तुष्टि को कम करते हुए बढ़ाना सम्भव हो। इस विचारधारा के अनुसार लोक-वित्त की वह क्रिया ठीक समझी जानी चाहिए जिससे एक व्यक्ति की सन्तुष्टि में वृद्धि हो तो व्यक्ति की सन्तुष्टि में कमी हो, परन्तु पहले व्यक्ति की सन्तुष्टि में वृद्धि दूसरे व्यक्ति सन्तुष्टि में कमी से अधिक होनी चाहिए। श्रीमती उर्सला हिक्स तथा डालटन के विचारों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि श्रीमती हिक्स के विचार भी डालटन के समान ही सैद्धान्तिक है। इन विचारों से यह ज्ञात नहीं होता है कि व्यवहार में इसे कैसे लागू किया जाय। वैसे इसे व्यवहार में लागू किया जा सकता है; परन्तु इसके लिए बड़ी सतर्कता व निपुणता की आवश्यकता पड़ती है। व्यक्ति को बड़ा ही चतुर व हिसाब-किताब में निपुण होना चाहिए। इसलिए अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त अनुमानों पर ही आधारित रह जाता है।

2.12 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरी प्रश्न-

1. लोकवित्त किसे कहते हैं।
2. सार्वजनिक व्यय को स्पष्ट कीजिए।
3. सार्वजनिक आय किसे कहते हैं।
4. वित्तीय प्रशासन किसे कहते हैं ?

वस्तु निष्ठ प्रश्न(Multiple Choice Questions)

1. निम्न में से लोक वित्त किसका अध्ययन नहीं करता

- (क) मूल्य नीति
- (ख) सार्वजनिक ऋण
- (ग) रिकार्डों
- (ग) बजट
- (घ) सार्वजनिक आय

उत्तर- (क) मूल्य नीति।

2. "वेल्थ ऑफ नेशन" किसकी पुस्तक है ?

- क) कीन्स
- (ख) एडम स्मिथ

(घ) जे.बी. से

उत्तर- (ख) एडम स्मिथ

3. निम्न में से कौन राजकोषीय नीति का उद्देश्य नहीं है?

क) विनियम नियन्त्रण

(ख) आर्थिक विकास

(ग) रोजगार में वृद्धि

(घ) कीमत स्थिरता

उत्तर- (क) विनियम नियन्त्रण।

सत्य/असत्य(True/False)

1. वित्तीय प्रशासन का उद्देश्य सरकार के आय तथा व्यय को नियन्त्रित करना है।

2. लोक वित्त का अर्थ सरकार के आय तथा व्यय का विश्लेषण करना है।

उत्तर- 1. सत्य एवं 2. सत्य

लघु उत्तरीय प्रश्न(Short Answer Type Question)

1. प्रो0 डाल्टन द्वारा राजस्व की दी गयी परिभाषा को संक्षेप में समझाइए।

2. किन्ही तीन बिन्दुओं के आधार पर राजस्व की प्रकृति और क्षेत्र को समझाइए।

3. सार्वजनिक वित्त और निजी वित्त में अन्तर के किन्ही दो कारणों को लिखिए।

4. राजस्व के महत्व पर संक्षेप में अपने विचार प्रकट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न(Multiple Choice Question)

1. अधिकतम सामाजिक कल्याण किस बिन्दु पर होता है?

(अ) सामाजिक त्याग और सामाजिक उपयोगिता के बराबर होने पर।

(ब) सामाजिक उपयोगिता के सामाजिक त्याग से अधिक होने पर।

(स) सामाजिक त्याग के सामाजिक उपयोगिता से अधिक होने पर।

(द) उपर्युक्त में से किसी पर भी नहीं।

2. वह कौन सी प्रमुख बात है जिसके आधार पर सार्वजनिक वित्त को निजी वित्त से अलग किया जाता

(अ) गोपनीयता

(ब) कीमती नीति

(स) आर्थिक स्थायित्वीकरण

(द) माँग-प्रेरित।

2.13 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके हैं कि लोक वित्त मूल रूप से सरकारों के आय-व्यय से सम्बन्धित है तथा सरकारों का अर्थ केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सत्ताओं से है। वर्तमान समय में लोक वित्त का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है, लोक वित्त के अध्ययन क्रम को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक आय, सार्वजनिक ऋण वित्तीय प्रशासन और राजकोषीय या वित्तीय-नीति। राज्य आज आर्थिक विकास को बढ़ावा देने, बाह्य-आक्रमण से सुरक्षा तथा आंतरिक शान्ति बनाए रखने, सामाजिक सुरक्षा तथा जनकल्याणकारी कार्यों के कार्यान्वयन करने, सामाजिक बराइयों को दूर करने शिशु उद्योगों को संरक्षण प्रदान कर विदेशी प्रतियोगिता से बचाने के लिए आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए, दुर्लभ साधनों के सर्वोत्तम ढंग से आवंटन के लिए, राष्ट्रीय उपक्रमों का विकास करने तथा बेरोजगारी दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये महत्वपूर्ण कार्य सरकार राजकोषीय नीति के द्वारा सुगमतापूर्वक कर सकती है। कोई भी राज्य कुशलतापूर्वक अपने उक्त कार्यों का सम्पादन तब तक नहीं कर सकती जब तक कि उसके पास सुसंगठित लोकवित्त नहीं होगा। इस तरह, राज्य के कार्यों एवं महत्व में वृद्धि होने से लोकवित्त के महत्व में अधिक वृद्धि हो चुकी है। लोक वित्त तथा निजी वित्त में सामान्यतया ऊपरी तौर पर कोई विशेष भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती क्योंकि दोनों का उद्देश्य आय तथा व्यय के बीज सामंजस्य अथवा संतुलन स्थापित करना होता है। दोनों की समस्याएँ एक सी हैं तथा दोनों का उद्देश्य अपनी आय तथा व्यय से अधिकतम सतोष प्राप्त करना होता है। निजी व्यय इसलिए होता है ताकि 'अधिकतम संतुष्टि' की प्राप्ति हो सके और सार्वजनिक व्यय इसलिए किया जाता है ताकि उससे 'अधिकतम सामाजिक लाभ' उपलब्ध हो सके। फिर भी लोक वित्त तथा निजी वित्त की प्रकृति, उद्देश्य, सिद्धान्त व्यवस्था तथा प्रशासन आदि में आधारभूत एवं मौलिक भेद हैं। राजस्व का न्यायोचित सिद्धान्त वह होगा जिनकी अनुसार राजकीय आय व व्यय से अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त हो सके। डाल्टन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए इसको अधिकतम सामाजिक लाभ का नियम कहा है। इसके विभिन्न दृष्टिकोण का आप ने अध्ययन किया।

2.14 शब्दावली(Glossary)

- **बजट** -सरकार का वार्षिक वित्तीय विवरण।
- **आर्थिक सर्वेक्षण** -एक वित्तीय वर्ष में भारतीय अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों की स्थिति एवं मूल्यांकन का सरकारी प्रकाशन।
- **वित्त आयोग** -राज्यों को संसाधनों के बंटवारे हेतु संविधान की धारा 280 के अन्तर्गत स्थापित आयोग अन्तरण -हस्तान्तरण।
- **कर प्रयास** -किसी भी राज्य के प्रति व्यक्ति कर राजस्व से प्रति व्यक्ति आय का अनुपात

2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

2.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- आर0एमसग्रेव, पब्लिक फिनान्स इन ए डेमोक्रेटिक सोसाइटी वाल्यूम-।
- आर0 ए0 मसग्रेव, द थियरी ऑफ पब्लिक फिनान्स, मैग्राहिल 1984।
- जे0 सी0 पन्त राजस्व, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन 1979।
- अमरेश बागेची रीडिंग इन पब्लिक फिनान्स, आक्सफोर्ड 1980।

- ए0 प्रेमचन्द्र गवर्नमेन्ट बजटिंग एण्ड एक्सपेन्डीचर कन्ट्रोल, IMF 1983 |
- एस0 के0 सिंह लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2008
- H. Parnell, "On Financial Reform"; quoted by G. Findaly shirrras in the science of Public Finance, p. 31

2.17 सहायक पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- भाटिया एच०एल(2006) 0, लोकवित्त) Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा 0 लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे0सी(2005) 0, राजस्व) Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वाष्णीय, जे0सी(1997) 0, राजस्व) Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, हास्पीटल रोड, आगरा।
- डॉ .जे.पी .मिश्र : लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स, वाराणसी।

2.18 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. राजस्व की सर्वोत्तम प्रणाली वह है जिसके अन्तर्गत राज्य अपने कार्यों द्वारा अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त कर सकता। इस कथन की पूर्ण व्याख्या कीजिए। (डाल्टन) "
2. "सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक आय का आधारभूत सिद्धान्त अधिकतम सामाजिक लाभ है ' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
3. "अधिकतम सामाजिक लाभ' के सिद्धान्त पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
4. राजस्व की परिभाषा दीजिए तथा उसके क्षेत्र का वर्णन कीजिए।
5. राजस्व की परिभाषा दीजिए तथा अन्य विज्ञानों के इसका सम्बन्ध बताइये।
6. व्यक्तिगत व सार्वजनिक वित्त में मुख्य अन्तर क्या है?

इकाई 3 लोक वित्त की अवधारणायें और बाजार असफलता (Concepts of Public Finance and Market Failure)

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 लोक वित्त की अवधारणा से तात्पर्य
- 3.4 लोक वित्त की अवधारणा का महत्व
- 3.5 लोक वित्त की विचारधारायें एवं अवधारणायें
- 3.6 लोक वित्त के सिद्धान्त
- 3.7 बाजार असफलता का तात्पर्य
- 3.8 बाजार असफलता के कारण
- 3.9 लोक वित्त की अवधारणा एवं बाजार असफलता
- 3.10 अभ्यास प्रश्न
- 3.11 सारांश
- 3.12 शब्दावली
- 3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.14 सन्दर्भित ग्रन्थ सूची
- 3.15 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 3.16 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

लोक वित्त का सामान्यतया तात्पर्य लोक सत्ताओं के आय तथा व्यय से संबंधित होता है। आधुनिक काल में विशेषकर कल्याणकारी राज्य की स्थापना के कारण लोकवित्त के क्षेत्र में अत्याधिक विस्तार हुआ है। लोकवित्त की प्रकृति भी अर्थशास्त्र की भाँति विज्ञान तथा कला दोनों प्रकार की होती है। लोकवित्त की प्रकृति तथा क्षेत्र के सन्दर्भ में अध्ययन पूर्व की इकाईयों में किया जा चुका है।

लोक वित्त की अवधारणायें समय एवं परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही हैं। वर्तमान में राज्य का कार्यक्षेत्र सुरक्षा एवं कानून व्यवस्था तक सीमित न रहकर शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, सामाजिक सुरक्षा, बैंकिंग, वित्त आदि सभी क्षेत्रों तक फैल चुका है। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण से उपजी परिस्थितियों ने राज्य की भूमिकाओं को नये सिरे से परिभाषित किया है जिसके फलस्वरूप लोक वित्त अवधारणायें भी प्रभावित हुई हैं।

सार्वजनिक वस्तुओं एवं लोक सेवाओं की कीमत का निर्धारण एवं उनका आवंटन के तौर तरीके भी लोक वित्त की अवधारणाओं के अन्तर्गत आते हैं। सामान्यतया सार्वजनिक वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमत निर्धारण से लेकर उनके कुशल आवंटन में बाजार तंत्र असफल रहता है। लोक वित्त की अवधारणाओं एवं बाजार असफलता के संदर्भ में व्यापक अध्ययन वर्तमान इकाई में किया जायेगा।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं

- ✓ लोक वित्त की अवधारणाओं से क्या तात्पर्य है ?
- ✓ लोक वित्त की प्रमुख अवधारणायें कौन-कौन सी हैं ?
- ✓ लोक वित्त की अवधारणाओं को विकसित करने वाले अर्थशास्त्री कौन रहे हैं ?
- ✓ लोक वित्त की परिभाषाओं व सिद्धान्तों के निर्माण तथा विकास में लोक वित्त की अवधारणाओं की क्या भूमिका रही है ?
- ✓ लोक वित्त की विषय वस्तु एवं अवधारणायें किस प्रकार से संबंधित हैं ?
- ✓ बाजार असफलता का तात्पर्य क्या है ?
- ✓ बाजार असफलता के कारण तथा परिणाम कौन से हैं ?
- ✓ बाजार असफलता की समस्या का निवारण हेतु प्रयास किस प्रकार से किये जाते हैं ?

3.3 लोक वित्त की अवधारणा से तात्पर्य

किसी वस्तु, घटना अथवा प्रक्रिया के वैज्ञानिक प्रेक्षण एवं बोध के आधार पर निर्मित सामान्य विचारों को अभिव्यक्त एवं बोध के आधार पर निर्मित सामान्य विचारों को अभिव्यक्त करने हेतु जिन विशिष्ट शब्द संकेतों, परिभाषाओं तथा सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है उसे वैज्ञानिक शब्दावली में अवधारणा कहते हैं। अतः अवधारणायें स्थिर न होकर गतिशील रहती हैं तथा इनके अर्थ में निरन्तर संशोधन एवं परिष्करण होता रहता है।

अवधारणा से किसी विषय के सिद्धान्तों, विचारधाराओं एवं विषय वस्तु का विकास होता है तथा विषय के प्रति समझ का विकास होता है।

अतः लोक वित्त की अवधारणा के अन्तर्गत लोक वित्त की परिभाषा, विचारधारा एवं सिद्धान्त आदि आते हैं। लोक वित्त की अवधारणा को और स्पष्ट करने हेतु सर्वप्रथम हमें इसके अर्थ के बारे में जानना होगा। परम्परागत तौर पर लोक वित्त को राजस्व भी कहते हैं जिसका अर्थ है राजा का धन अर्थात् इसका तात्पर्य यह है कि राजा अपने कार्यों की पूर्ति हेतु किस प्रकार से धन की व्यवस्था करता है। लोक या सार्वजनिक शब्द से आशय जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था से है। लोक वित्त के अन्तर्गत केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों के वित्त से संबंधित क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

लोक वित्त की अवधारणाओं में समय के साथ-साथ परिवर्तन होता आया है। इसका कारण यह है कि लोक वित्त के विषय क्षेत्र में समय के अनुसार व्यापक परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन समय में लोक वित्त का क्षेत्र अत्यधिक सीमित था परन्तु वर्तमान समय में विशेषकर कल्याणकारी राज्य की स्थापना के पश्चात् राज्य को मात्र सुरक्षा, कानून एवं व्यवस्था तक सीमित न रहते हुए स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, नागरिक सुविधायें जैसे जल, विद्युत आपूर्ति आदि कल्याणकारी कार्य करने होते हैं।

भारत जैसे देशों में जहाँ कि आर्थिक नियोजन फलस्वरूप जन्य नियोजित विकास की प्रक्रिया में राज्य द्वारा प्रमुख रूप से विकास कार्यों में सक्रिय तथा प्रभावी भूमिका निभायी हैं एवं विभिन्न सरकारों द्वारा लोकवित्त के सार्वजनिक निवेश, सार्वजनिक ऋण तथा राजकोषीय नीतियों से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं का प्रयोग नियोजन एवं विकास प्रक्रियाओं में किया गया है।

लोक वित्त की अवधारणाओं को शासन व्यवस्था के विभिन्न स्वरूपों जैसे एकीकृत शासन प्रणालियों ने भी प्रभावित किया है। भारत में विशेषकर विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था हेतु एवं स्थानीय संस्थाओं को अधिक स्वायत्त बनाने के लिए संविधान में 73वाँ तथा 74वाँ संशोधन करने से लोक वित्त की अवधारणाओं में नया परिवर्तन आया है।

वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के दौर में राज्य की भूमिका पुनर्परिभाषित हुई है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में जहाँ बाजार प्रभावी भूमिका निभा रहा है वहीं राज्य की भूमिका में भी परिवर्तन आया है। राज्य अब नियन्त्रक की नहीं अपितु नियामक की भूमिका में आ गया है। उपरोक्त के कारण लोक वित्त की अवधारणाओं को एक नवीन दिशा मिली है।

3.3.1 लोक वित्त की परिभाषायें - लोक वित्त को विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से परिभाषित किया है इन परिभाषाओं की सहायता से लोक वित्त की अवधारणा को निम्नवत् रूप से समझा जा सकता है -

डॉल्टन के अनुसार **"लोक वित्त का सम्बन्ध लोक सत्ताओं के आय और व्यय से तथा एक दूसरे के साथ समायोजन से है।"**

फिण्डले शिराज के अनुसार **"लोक वित्त लोक सत्ताओं द्वारा कोषों के व्यय करने एवं प्राप्त करने में निहित सिद्धान्त का अध्ययन है।"**

बेस्टेबल के अनुसार **"लोक वित्त लोक सत्ताओं के आय और व्यय तथा उनके पारस्परिक संबंध और वित्तीय प्रशासन तथा नियन्त्रण से संबंधित है"**

आर० मसप्रेव के अनुसार "लोक वित्त सार्वजनिक अर्थव्यवस्थाओं के सिद्धान्तों का अनुसंधान है या अधिक स्पष्ट रूप में आर्थिक नीति के उन पहलुओं का अध्ययन है जो सार्वजनिक बजट की क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

जे० के० मेहता के अनुसार "लोक वित्त राज्य के मौद्रिक तथा सम्बन्धी साधनों का अध्ययन है।"

विभिन्न विद्वानों द्वारा लोक वित्त की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि लोक वित्त का तात्पर्य सार्वजनिक सत्ताओं के आय व्यय सम्बन्धी विषयों से है। यद्यपि वर्तमान समय में लोक वित्त की अवधारणायें अधिक व्यापक हो गयी हैं तथा इसके अन्तर्गत अध्ययन सार्वजनिक सत्ताओं जैसे केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय शासन सत्ताओं के आय व्यय से संबंधित ही नहीं किया जाता अपितु वित्तीय प्रशासन, राजकोषीय नीतियों एवं वित्तीय नियन्त्रण के सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है। कुल मिलाकर लोकवित्त सरकारों की वित्त व्यवस्था से संबंधित सिद्धान्तों, समस्याओं, नीतियों प्रक्रियाओं एवं समायोजन व्यवस्था का अध्ययन करती है।

3.4 लोकवित्त की अवधारणा का महत्व

वर्तमान समय में लोकवित्त की अवधारणा का तीव्र तथा व्यापक विकास हुआ है जिसके फलस्वरूप विकसित तथा विकासशील देश समेत सभी देशों हेतु लोकवित्त की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी हैं। यद्यपि परम्परागत अर्थशास्त्रियों द्वारा लोकवित्त की महत्वपूर्ण अवधारणाओं की उपेक्षा की थी परन्तु विशेषकर 1930 की महामंदी तथा उसके पश्चात् समय-समय पर घटित होने वाले आर्थिक उतार चढ़ावों ने लोकवित्त की भूमिका को आर्थिक समस्याओं ने स्थापित कर दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विशेषकर नवोदित एवं अल्पविकसित राष्ट्रों के विकास हेतु लोकवित्त के नियमों एवं नीतियों का प्रभावी उपयोग किया गया है। वर्तमान में भारत जैसे विकासशील देशों में लोकवित्त के बढ़ते हुए महत्व को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है -

- **राज्य की बढ़ती क्रियायें** – प्राचीन समय सुरक्षा तथा कानून व्यवस्था ही राज्य के दायित्व माने जाते थे। परम्परागत अर्थशास्त्री द्वारा आर्थिक क्रियाओं में राज्य का हस्तक्षेप को अनुचित माना है। परन्तु आर्थिक विकास तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की स्थापना ने राज्य की क्रियाओं में व्यापक वृद्धि की है। सरकार द्वारा रेल, सड़क, परिवहन, ऊर्जा आदि महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश किया गया है इसके अतिरिक्त समाज कल्याण हेतु शिक्षा, स्वास्थ्य एवं साफ सफाई पर भी व्यापक सार्वजनिक व्यय किया जाता है। वर्तमान समय में राज्य की क्रियाओं में वृद्धि से संबंधित वैगनर का नियम यह है कि "राज्य के कार्यों में व्यापक एवं गहन वृद्धि की एक स्थायी प्रवृत्ति पायी जाती है।"
- **आर्थिक नियोजन में महत्व** – देश के संतुलित तथा सर्वांगीण विकास हेतु आर्थिक नियोजन का महत्व आज स्थापित हो गया है। आर्थिक नियोजन की सफलता लोक वित्त की उचित व्यवस्था एवं अवधारणा पर निर्भर करती है। आर्थिक नियोजन हेतु सरकार को व्यापक तथा महत्वकांक्षी परियोजनाओं का क्रियान्वयन करना पड़ता है जिसके लिए बड़े पैमाने पर वित्त की आवश्यकता होती है। अतः लोक वित्त की विभिन्न रणनीतियों जैसे घाटे की वित्त व्यवस्था, सार्वजनिक ऋण आदि को कुशलता से क्रियान्वित करना पड़ता है

- **पूँजी निर्माण एवं आर्थिक विकास हेतु** - आर्थिक विकास की कुंजी पूँजी निर्माण है। पूँजी निर्माण हेतु संसाधनों को गतिशील कर उन्हें बचत तथा निवेश हेतु सक्रिय करने में लोकवित्त की प्रक्रियाओं का मुख्य योगदान होता है। विकासशील एवं अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास को गति देने हेतु पूँजी निर्माण के साथ-साथ उद्योग धन्धों तथा कृषि क्षेत्र का विकास करना होता है जिसके सरकार कर राहत, कर्ज, सब्सिडी एवं उपदान आदि तरीकों का प्रयोग कर उद्योगपति तथा कृषकों को प्रोत्साहित करती है।
- **महत्वपूर्ण उद्योगों एवं सेवाओं का राष्ट्रीयकरण** – देश की सुरक्षा, सामाजिक एवं आर्थिक विकास के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सरकार द्वारा समय-समय पर बैंकिंग, वित्त, बीमा एवं महत्वपूर्ण उद्योग धन्धों का राष्ट्रीयकरण किया जाता रहा है।
- **आर्थिक स्थिरता** – 1929-30 में आयी विश्वव्यापी मंदी के पश्चात् यह अवधारणा आज स्थापित हो गयी है कि अर्थव्यवस्था में आर्थिक उतार चढ़ावों पर नियन्त्रण करने तथा आर्थिक स्थिरता को कायम रखने हेतु सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है। यह सरकारी हस्तक्षेप प्रभावी लोकवित्त नीति के माध्यम से ही पूर्ण हो सकता है।
- इसके लिए करारोपण, लोकवित्त और लोकऋण की नीतियों के मध्य उचित समायोजन करके आर्थिक स्थिरता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।
- **संसाधनों का इष्टतम प्रयोग** - लोकवित्त की विभिन्न रणनीतियों तथा प्रक्रियाओं के माध्यम से राष्ट्र के निष्क्रिय तथा बेकार पड़े संसाधनों का प्रभावी तथा इष्टतम प्रयोग किया जा सकता है। सरकार बजट तथा राजकोषीय नीतियों के माध्यम से उपयोग, उत्पादन, निवेश, बचत तथा वितरण को वांछित दिशा में सक्रिय कर सकती है।
- **आर्थिक असमानता कम करने में सहायक** - आर्थिक विकास का एक मुख्य लक्ष्य न्यायपूर्ण एवं समानता पूर्ण आर्थिक विकास है जोकि आय तथा सम्पत्ति के समानता पूर्ण वितरण से ही पूर्ण हो सकता है। लोकवित्त की रणनीतियों के माध्यम से धनीवर्ग से कर तथा अन्य माध्यम से संसाधनों को एकत्र कर उन्हें निर्धन वर्ग के पक्ष में सार्वजनिक व्यय के माध्यम से हस्तांतरित किया जा सकता है।
- **सामाजिक कल्याण तथा विकास हेतु** - लोकवित्त के माध्यम से सामाजिक सुरक्षा एवं सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों को संचालित करने जैसे निर्धन वर्गों हेतु आर्थिक सहायता, महिलाओं, दलितों तथा पिछड़े वर्गों के विकास हेतु विशेष कार्यक्रम को चलाने रोजगार संवर्धन कार्यक्रमों को लागू किया जाता है।
- **राजनैतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महत्व** - सरकारें अपनी राजनैतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों को तभी कारगर रूप से लागू कर सकती है जबकि उनके पास पर्याप्त वित्तीय संसाधन तथा प्रभावी लोकवित्त की रणनीति हो। देश में आंतरिक शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने, विदेशी आक्रमण से रक्षा हेतु, सामाजिक रणनीति के लिए, क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में महत्ता स्थापित करने हेतु लोकवित्त की रणनीतियों की आवश्यकता पड़ती है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में लोकवित्त की प्रक्रियाएँ राजनैतिक

क्रियाकलापों से भारी अन्तर्सम्बन्धित होती हैं। पीकॉक-बाइजमैन द्वारा सार्वजनिक व्यय के निर्धारण में राजनैतिक सिद्धान्त तथा आधारों की महत्व को स्थापित किया गया उनके अनुसार लोक व्यय के निर्धारण में राजनैतिक आधारों पर निर्णय लिये जाते हैं।

3.5 लोक वित्त की विचारधारायें एवं अवधारणायें

अर्थशास्त्रियों द्वारा लोक वित्त की विभिन्न विचार धाराओं का प्रतिपादन किया गया जिसके फलस्वरूप लोक वित्त की विभिन्न अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों का विकास हुआ लोक वित्त की प्राचीन विचारधारा परम्परागत आर्थिक अवधारणा पर ही आधारित थी, परन्तु समय के साथ-साथ इस अवधारणा में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं एवं अंततः लोक वित्त की आधुनिक अवधारणा का विकास हुआ। लोक वित्त की सभी महत्वपूर्ण अवधारणायें निम्नवत् हैं -

3.5.1 प्राचीन या संस्थापक अवधारणा – प्राचीन या संस्थापक अवधारणा मूलतया परम्परागत आर्थिक विचारधारा एवं सिद्धान्तों पर आधारित है। संस्थापक अवधारणा आर्थिक क्रियाकलापों में किसी भी प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप को अनुचित मानते हैं। इन विचारकों के अनुसार सरकार को न्यूनतम व्यय तथा न्यूनतम कर लगाने चाहिए। यह सरकारी व्यय को अनुत्पादक मानते हैं एवं इस बात पर जोर देते हैं कि कर बचत एवं निवेश पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री जे0 बी0 से0 के अनुसार, “वित्त की सारी योजनाओं में सर्वोत्तम वह है, जिसमें कम व्यय किया जाये और सभी करों में सर्वोत्तम कर वह है जिसकी धनराशि सबसे कम हो।” “एडम् स्थिम तथा रिकार्डों का विचार यह था कि गैर सरकारी व्यय उत्पादक होता है और सरकारी व्यय अनुत्पादक होता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार, “प्रत्येक कर एक बुराई है और प्रत्येक सरकारी व्यय अनुत्पादक है।” संस्थापक अवधारणा के मुख्य विचार बिन्दु निम्न हैं-

- बजट सदैव संतुलित होना चाहिए एवं बजट का आकार भी छोटा होना चाहिए तथा बजट घाटा प्रगति पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।
- सरकारी निवेश अनुत्पादक होता है अतः सरकार को निवेश कम से कम करना चाहिए एवं निजी निवेश पूर्ण रोजगार स्थापित करने में सक्षम होता है।
- बचतों पर पड़ने वाले कर समाज हेतु हानिकारक होते हैं जैसे आयकर, मृत्यु कर आदि, उपभोग पर पड़ने वाले कर कम हानिकारक होते हैं।

3.5.2 आधुनिक वैचारिक अवधारणा एवं आधुनिक सिद्धान्त - कीन्स द्वारा न सिर्फ प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की स्वचालित पूर्ण रोजगार की मान्यता पर जमकर कुठाराघात किया अपितु पूर्णरोजगार, निवेश में वृद्धि एवं संवृद्धि दर को तीव्र करने के लिए की लोक वित्त महत्ता को प्रमुखता से स्थापित किया। कीन्स के सिद्धान्त में निम्न अवधारणात्मक विचार बिन्दु उजागर होते हैं -

- पूर्ण रोजगार की स्थापना एवं निवेश, बचत प्रक्रिया में संवृद्धि हेतु सार्वजनिक निवेश का बढ़ा महत्वपूर्ण योगदान होता है।

- सार्वजनिक निवेश गुणक प्रक्रिया के माध्यम से आय उत्पादन में वृद्धि करता है।
- सरकार सड़कों, रेलों, विद्युत, जनोपयोगी उद्यमों तथा उद्योगों में सरकारी धन के व्यय करके समर्थ माँग को प्रोत्साहित कर सकती है।
- घाटे की वित्त व्यवस्था तथा जनता से उधार लेकर सार्वजनिक निवेश आर्थिक मंदी को दूर करने का कारगर उपाय है।
- कुल मिलाकर कीन्स ने लोक वित्त का महत्व को पूर्ण रोजगार, आर्थिक प्रगति, आर्थिक स्थिरता तथा संसाधनों के श्रेष्ठतर आवंटन हेतु स्थापित कर दिया। लर्नर द्वारा लोक वित्त की कीन्सियन विचारधारा को क्रियाशील वित्त की अवधारणा के रूप में प्रतिपादित किया है। क्रियाशील वित्त) क्रियात्मक वित्त (में लोक वित्त की पद्धति का मूल्यांकन उसके क्रियाशील कार्यों के आधार पर किया जाता है।

3.5.3 सक्रियकारी वित्त की अवधारणा – सक्रियकारी वित्त की वैचारिक अवधारणा का प्रतिपादन प्रो० बलजीत सिंह द्वारा किया गया है। सक्रियकारी वित्त के अन्तर्गत लोक वित्त साधनों एवं उपकरणों का उनकी कार्य संरचना पर परीक्षण करते हैं तथा इसका मूल्यांकन करते हैं कि इन उपकरणों की अर्थव्यवस्था हेतु क्या उपयोगिता है एवं किस प्रकार वित्त प्रबन्ध की रीतियाँ अर्थव्यवस्था में स्फूर्ति उत्पन्न करती हैं। सक्रियकारी वित्त की अवधारणा विशेषकर विकासशील तथा अर्द्धविकसित देशों के परिपेक्ष में विकसित की गयी है जबकि लर्नर तथा कीन्स का कार्यशील वित्त की अवधारणा विकसित देशों की समस्या के सन्दर्भ में स्थापित की गयी है।

3.5.4 समाजिक राजनैतिक अवधारणा - इस अवधारणा के समर्थकों में वैगनर तथा एजवर्थ प्रमुख हैं। इस अवधारणा के विकास में लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी राज्य की राजनैतिक विचारधारा के माध्यम से हुआ है। इस अवधारणा के अनुसार लोक वित्त का प्रमुख उद्देश्य यह होना चाहिए जिससे धन का हस्तांतरण निर्धनों के पक्ष में हो जाये जिससे समाज में अधिकतम सामाजिक कल्याण की स्थापना हो सके।

3.5.5 लोक वित्त की विशुद्ध अवधारणा - इस वैचारिक अवधारणा का प्रतिपादन सेलिंगमैन द्वारा किया गया। इसके अनुसार लोक वित्त की विभिन्न समस्याओं जैसे आय, व्यय, ऋण आदि पर तटस्थ रूप से विचार किया जाना चाहिए। इस विचारधारा में ऐसा कोई आग्रह नहीं किया जाता कि लोक वित्त नीति का उद्देश्य धन की असमानताओं को दूर करना होना ही चाहिए।

3.5.6 लोक वित्त के नवीनतम अवधारणा – मसग्रेव द्वारा लोक वित्त की परिधि में नवीनतम विचारों का समावेश किया। मसग्रेव के अनुसार लोक वित्त के सिद्धान्तों का मुख्य कार्य सार्वजनिक अर्थव्यवस्था को कुशलतम बनाने हेतु नियमों के निर्माण से सम्बन्धित होता है। मसग्रेव के अनुसार लोक वित्त के उद्देश्यों को तीन निम्न भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

- आर्थिक स्थिरीकरण
- आय का वितरण
- साधनों का आवंटन

अतः मसग्रेव के अनुसार लोक वित्त के अन्तर्गत ऐसी प्रक्रियाओं को अपनाया जाता है जिससे उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हो सके एवं इन उद्देश्यों की पूर्ति करने में बजट की विभिन्न क्रियाकलापों का अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन किया जा सके।

3.6 लोक वित्त के सिद्धान्त

लोक वित्त के सिद्धान्तों का विकास लोक वित्त की विचारधाराओं एवं लोक वित्त की अवधारणाओं के माध्यम से हुआ है। लोक वित्त के सिद्धान्तों से तात्पर्य लोक वित्त के मूलभूत नियमों से है जिसके द्वारा लोक वित्त की महत्वपूर्ण नीतियों का निर्धारण होता है। लोक वित्त परम्परागत विचारधारा ने इस अवधारणा को स्थापित किया सरकार को न्यूनतम सरकारी व्यय करना चाहिए क्योंकि यह अनुत्पादक होता है। परन्तु कीन्स एवं डॉल्टन द्वारा प्राचीन विचारधारा का विरोध किया तथा सरकारी व्यय को महत्वपूर्ण एवं उत्पादक बताया।

आधुनिक समय में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की स्थापना के कारण लोक वित्त का महत्व अत्याधिक बढ़ गया है। लोक वित्त के इसी बढ़ते हुए महत्व के कारण ही अर्थशास्त्रियों द्वारा अधिकतम सामाजिक कल्याण या अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है लोक वित्त के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो० पीगू तथा प्रो० डॉल्टन द्वारा किया गया। डॉल्टन का मत है कि **"कोई व्यय उत्पादक है या नहीं इसका मूल्यांकन उस व्यय की आर्थिक सामाजिक कल्याण की उत्पादकता से ज्ञात होती है।"** जैसे शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर किया गया व्यय प्रायः व्यक्तिगत भोग विलासों पर किये जाने वाले व्यय की अपेक्षा अधिक उत्पादक तथा कल्याणकारी होते हैं तथा इन कार्यों को पूर्ण करने के लिये जो कर लगाये जाते हैं, वह सार्वजनिक हित की भावना से लगाये जाते हैं तथा इस प्रकार से समस्त कर बुरे नहीं होते हैं।

3.6.1 अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त - आधुनिक समसामयिक विश्व में प्रायः सभी राष्ट्र कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में विश्वास रखते हैं तथा राज्य की नीति का मुख्य उद्देश्य समाज को अधिकतम सुख सुविधाओं को प्रदान करना है। लोक वित्त के दो प्रमुख क्षेत्र सार्वजनिक आय तथा सार्वजनिक व्यय होते हैं। अतः लोक वित्त के दोनों क्षेत्रों पर लागू हो तथा इन दोनों वित्तीय कार्यवाहियों का निर्देशन तथा नियमन ऐसे मूलभूत सिद्धान्त के द्वारा किया जाये ताकि अधिकतम सामाजिक लाभ को प्राप्त किया जा सके। प्रो० पीगू तथा प्रो० डॉल्टन इस सिद्धान्त के प्रतिपादक एवं प्रसिद्धि हेतु उत्तरदायी थे।

डॉल्टन का मत यह है कि **"लोक वित्त की सर्वोत्तम प्रणाली वह है जिससे राज्य अपने कार्यों द्वारा अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति करता है।"** प्रो० पीगू ने इस सिद्धान्त को अधिकतम कुल कल्याण का सिद्धान्त कहा है। प्रो० पीगू के मतानुसार, **"लोक वित्त की सबसे बेहतर प्रणाली वह है जिससे राज्य कुल सामाजिक कल्याण को अधिकतम करता है।"**

3.6.2 अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त की व्याख्या - अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त मूलतया उपयोगिता क्षय नियम पर आधारित है। इसके अनुसार धन की मात्रा में वृद्धि होने के साथ-साथ उपयोगिता में कमी आती है तथा धन की मात्रा में कमी आने से उसकी उपयोगिता में वृद्धि होती है। इस सिद्धान्त में आधारभूत मान्यतायें निम्न प्रकार से हैं -

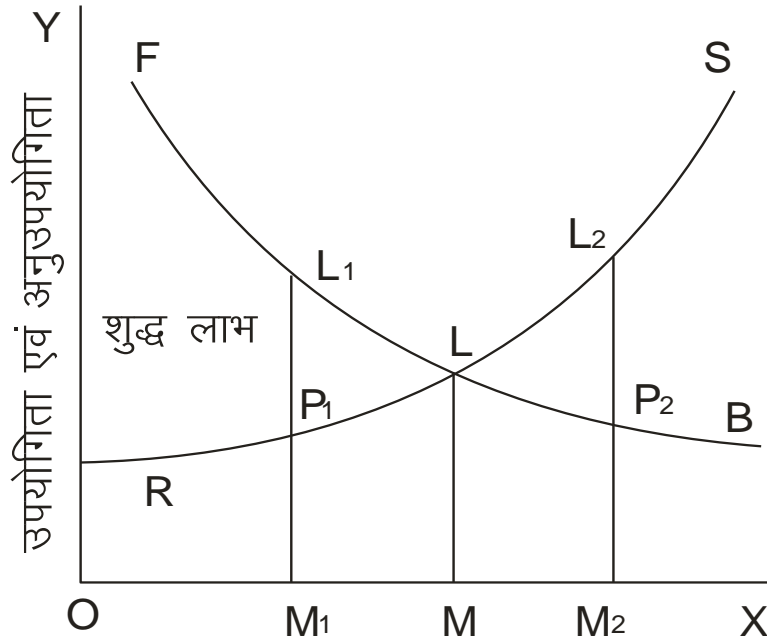
- लोक वित्त की समस्त क्रियायें क्रय शक्ति के हस्तांतरण या परिवर्तन से सम्बन्धित होते हैं।

- सरकार के द्वारा धन के व्यय उपयोगिता या तुष्टिगुण में वृद्धि होती है एवं कर के आरोपण समाज में अनुपयोगिता या तुष्टिहीनता उत्पन्न होती है यानि सार्वजनिक व्यय से समाज को लाभ प्राप्त होता है तथा कर के कारण समाज को त्याग करना पड़ता है ।
- डाल्टन के अनुसार प्रत्येक इकाई कर में वृद्धि के कारण से समाज को जो अतिरिक्त त्याग करना पड़ता है उसे सीमांत सामाजिक त्याग कहते हैं तथा प्रति इकाई व्यय में वृद्धि से जो अतिरिक्त संतुष्टि प्राप्त होती है उसे सीमान्त सामाजिक संतुष्टि कहते हैं ।
- सरकार अपने आय व्यय का निर्धारण करते समय सम सीमान्त उपयोगिता के नियमानुसार आय तथा व्यय की सीमांत उपयोगिता में संतुलन का प्रयास करना चाहिए जिससे अधिकतम् संतुष्टि की प्राप्ति हो सके ।
- इस सिद्धान्त के अनुसार संतुलन की स्थिति में सरकारी व्यय की इकाई के फलस्वरूप सीमांत लाभ सरकार द्वारा लगाये जाने वाले कर की किसी इकाई के कारण जनता के सीमांत त्याग के बराबर हो जायेगा । जिस बिन्दु पर सीमांत लाभ व सीमांत त्याग बराबर हो जाते हैं वह सरकार के वित्तीय कार्य की अनुकूलतम् सीमा का निर्धारण करता है एवं अधिकतम् सामाजिक लाभ इसी संतुलन पर प्राप्त होता है ।
- सिद्धान्त के अनुसार राजकीय व्यय को उस सीमा तक बढ़ाते रहना चाहिए जब तक कि उस व्यय से प्राप्त संतुष्टि करदाता द्वारा दिये गये करों से प्राप्त असंतुष्टि के बराबर न हो जाये । अतः प्रो० पीगू के अनुसार, "सभी दिशाओं में व्यय को इस प्रकार से करना चाहिए कि अन्तिम शिलिंग से प्राप्त उपयोगिता सरकारी सेवा के रूप में खोयी गयी अन्तिम शिलिंग की संतुष्टि के बराबर हो जाये ।
अधिकतम् सामाजिक लाभ के सिद्धान्त को निम्न तालिका की सहायता से भली-भाँति समझा जा सकता है

मुद्रा की इकाई	कर की प्रत्येक इकाई से त्याग	व्यय की प्रत्येक इकाई से संतुष्टि
1	3	25
2	5	20
3	8	16
4	12	12
5	16	9
6	21	7

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि समाज पर प्रत्येक इकाई कर के भार में वृद्धि होने पर सीमांत त्याग बढ़ता जाता है इसके विपरीत सार्वजनिक व्यय की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के परिणाम स्वरूप सीमांत उपयोगिता घटती जाती है मुद्रा की चौथी इकाई हेतु सीमांत सामाजिक त्याग तथा सीमांत सामाजिक लाभ की मात्रा बराबर हो जायेगी । इसी इकाई पर सार्वजनिक व्यय की मात्रा की सीमा निश्चित हो जायेगी तथा यह इकाई अधिकतम् सामाजिक लाभ या

अधिकतम् कुल सामाजिक कल्याण की सीमा को निर्धारित करेगी। उपरोक्त उदाहरण तथा अधिकतम् सामाजिक लाभ के सिद्धान्त को रेखाचित्र के माध्यम से भी समझाया जा सकता है। प्रस्तुत निम्न चित्र संख्या 3 अ में X अक्ष कर तथा व्यय की इकाई को निरूपित करती है। जबकि Y अक्ष लाभ एवं त्याग अर्थात् उपयोगिता तथा अनुपयोगिता को निरूपित करती है चित्र में RS रेखा अनुपयोगिता या तुष्टिहीनता की रेखा जबकि FB रेखा उपयोगिता की रेखा है। RS रेखा की प्रवृत्ति ऊपर उठने की है क्योंकि कर भार बढ़ने के कारण कर दाता को अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। FB रेखा की प्रवृत्ति नीचे झुकने की है क्योंकि सार्वजनिक व्यय की प्रति अतिरिक्त इकाई में वृद्धि के साथ-साथ उसकी उपयोगिता भी गिरती जाती है।



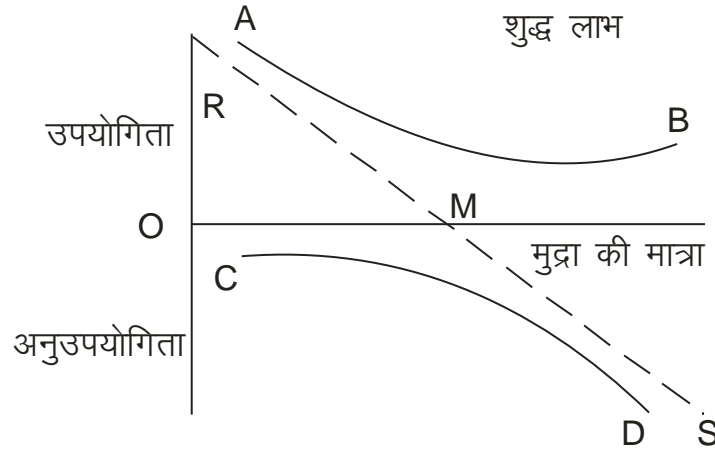
चित्र संख्या 3 अ

संलग्न चित्र में वक्ररेखा FB सीमांत उपयोगिता तथा RS सीमांत अनुपयोगिता को प्रदर्शित करते हैं। यह दोनों वक्र रेखायें एक दूसरे को बिन्दु L पर काटते हैं। यही बिन्दु राज्य की वित्तीय क्रिया की अनुकूलतम् सीमा को प्रदर्शित करता है तथा इसी बिन्दु पर सीमांत सामाजिक त्याग एवं सीमांत सामाजिक लाभ बराबर हो जाते हैं। अतः यही बिन्दु अधिकतम् सामाजिक कल्याण को निरूपित करता है क्योंकि इस बिन्दु से कम या अधिक की स्थिति होने पर अधिकतम् सामाजिक लाभ को प्राप्त करना सम्भव नहीं हो सकेगा। यदि सरकार OM कर वसूल करती है तो सामाजिक उपयोगिता MLA होगी तथा सामाजिक त्याग MP, से LIPA अधिक होगी। ऐसी स्थिति में कर की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है वहीं दूसरी ओर यदि सरकार व्यय की मात्रा में वृद्धि करती है तथा OM2 तक कर लगाती है तो ऐसी दशा में सीमांत अनुपयोगिता MLA सीमांत उपयोगिता MP2 से LP2 अधिक होगी। अतः ऐसी दशा में कर की मात्रा को कम करना होगा जिससे सीमांत अनुपयोगिता कम तथा सीमांत उपयोगिता बढ़ जायेगी तथा L पर साम्य स्थापित हो जायेगा। साम्य बिन्दु पर सामाजिक उपयोगिता तथा सामाजिक त्याग की दृष्टि से निम्न तीन विशेषतायें पायी जाती हैं -

- साम्य बिन्दु पर सीमांत त्याग एवं सीमांत उपयोगिता बराबर रहते हैं।
- सामाज को प्राप्त कुल उपयोगिता समाज द्वारा किये गये कुल त्याग से अधिक रहती है।

- समाज को लोकवित्त की क्रियाओं से प्राप्त होने वाले लाभ सार्वजनिक रहते हैं।

3.6.3 मसग्रेव के विचार - मसग्रेव द्वारा अधिकतम् सामाजिक लाभ के सिद्धान्त के सम्बन्ध अपने विचार प्रस्तुत किये एवं इस सिद्धान्त की व्याख्या नये रूप में की है। मसग्रेव के अनुसार ऐसी तकनीक को विकसित किया जाना चाहिए जिससे व्यक्ति सामाजिक वस्तुओं के प्रति अपने अधिमानों को प्रकट कर सके। मसग्रेव द्वारा इस सिद्धान्त को चित्र संख्या 3ब के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। चित्र संख्या 3ब में X अक्ष पर मुद्रा की मात्रा निरूपित की गयी है। अक्ष में ऊपर के भाग में उपयोगिता या सामाजिक कल्याण को तथा नीचे के भाग में अनुपयोगिता या सामाजिक त्याग को प्रदर्शित किया गया है।



चित्र संख्या 3 ब

उपरोक्त चित्र में **AB** वक्र सीमान्त सामाजिक कल्याण तथा **CD** वक्र सीमांत सामाजिक त्याग को प्रदर्शित करता है। वक्र का गिरता हुआ ढाल यह निरूपित करता है कि व्यय की अतिरिक्त राशियों से प्राप्त होने वाला कल्याण गिर रहा है। वक्र से यह स्पष्ट होता है कि कर भार में वृद्धि से करदाता के सीमांत त्याग में वृद्धि हो रही है। **RS** वक्र को **AB** व **CD** से घटाकर ज्ञात किया गया है अर्थात् सीमांत सामाजिक लाभ से सीमांत सामाजिक त्याग को घटा दिया गया है। **RS** वक्र शुद्ध सामाजिक कल्याण को प्रदर्शित करता है तथा यह **M** बिन्दु पर अक्ष को काटती है। अतः **M** वह बिन्दु है जहाँ पर वास्तविक सामाजिक कल्याण अधिकतम् है तथा सरकार के बजट की इष्टतम् सीमा **OM** है। इस सीमा पर शुद्ध सीमांत सामाजिक कल्याण शून्य हो जाता है। **OM** की वह मात्रा है जिसे सरकार को समाज से कर के रूप में वसूल करनी चाहिए एवं सार्वजनिक व्यय के रूप में खर्च करनी चाहिए।

3.6.4 अधिकतम् सामाजिक लाभ सिद्धान्त के निष्कर्ष - अधिकतम् सामाजिक लाभ का सिद्धान्त राज्य की वित्तीय तथा बजट नीति के दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं एवं सरकार की लोक वित्त नीतियों का मार्गदर्शन करते हैं। इस सिद्धान्त से निम्न महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आते हैं -

- **व्यय की सीमा** - सरकारी व्यय को उस सीमा तक किया जाना चाहिए जहाँ पर राज्य द्वारा व्यय किये जाने वाले सार्वजनिक धन की अन्तिम् इकाई से जनता को प्राप्त होने वाला लाभ सरकारी आय की उसी इकाई के प्राप्त करने में जनता पर पड़ने वाले त्याग के ठीक बराबर हो जाये अर्थात् व्यय से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता एवं करों से प्राप्त होने वाली सीमांत अनुपयोगिता सदैव बराबर होनी चाहिए।

- **राज्य के साधनों का आबंटन** - सार्वजनिक व्यय की विभिन्न मदों के बीच राज्य के साधनों का आबंटन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि प्रत्येक साधन से प्राप्त होने वाली संतुष्टि का सीमांत प्रतिफल एक समान हो अर्थात् व्यय की सीमांत उपयोगिता प्रत्येक स्तर पर समान होनी चाहिए।
- **कर विभाजन** - राज्य द्वारा करों का विभाजन इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि प्रत्येक करारोपण की सीमांत उपयोगिता विभिन्न स्तरों पर समान होनी चाहिए अर्थात् समाज द्वारा करों के भुगतान के फलस्वरूप जो त्याग वहन किया जाता है उसकी सीमांत अनुपयोगिता सभी करदाताओं हेतु एक समान हो।

3.6.5 अधिकतम् सामाजिक लाभ सिद्धान्त का परीक्षण - अधिकतम् सामाजिक कल्याण सिद्धान्त को क्रियान्वित करने में अनेक व्यवहारिक कठिनाइयाँ आती हैं अतः इस सिद्धान्त के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने तथा क्रियान्वयन का परीक्षण एवं मूल्यांकन करने हेतु डाल्टन द्वारा निम्न महत्वपूर्ण कसौटियों का उल्लेख किया है-

(अ) आर्थिक कल्याण में वृद्धि – यदि सार्वजनिक व्यय से समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है तो उससे सामाजिक कल्याण अधिकतम् हो जाता है। समाज का आर्थिक कल्याण उत्पादन की शक्ति में वृद्धि तथा धन के वितरण में सुधार के माध्यम से निम्न प्रकार से बढ़ाया जा सकता है

➤ **उत्पादन शक्ति में वृद्धि** - लोकवित्त की नीतियों तथा प्रक्रियाओं को माध्यम से समाज की उत्पादन शक्ति बढ़ाकर कल्याण को अधिकतम् किया जा सकता है। उत्पादन में सुधार निम्न का प्रयोग किया जा सकता है

- उत्पादन के आकार में वृद्धि कर देश की आर्थिक प्रगति तथा कल्याण में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।
- उद्योगों की उत्पादन शक्ति तथा उद्योगों की कार्यक्षमता बढ़ाकर भी उत्पादन की मात्रा बढ़ायी जा सकती है।
- देश में उत्पादन संगठन की समुचित व्यवस्था करके आर्थिक संसाधनों के अपव्यय को रोका जा सकता है।
- उत्पादन का स्वरूप ऐसा हो जिससे समाज की आवश्यकताओं को अधिक मात्रा में तथा बेहतर तरह से पूरा किया जा सके।
- कर व्यवस्था छूट देकर उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है इसके लिये अनिवार्य वस्तुओं के उत्पादन तथा निर्यात के समानों पर कर छूट देकर तथा आयातों पर भारी कर लगाकर देश में उत्पादन को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

➤ **धन के वितरण में सुधार** - आय तथा सम्पत्ति के उचित वितरण द्वारा भी समाज के कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। इसके उद्देश्य की पूर्ति हेतु करों को इस प्रकार से नियोजित किया जाना चाहिए जिससे

धनी वर्ग से क्रयशक्ति को एकत्रित करके उसे निर्धन वर्ग के पक्ष में सार्वजनिक व्यय के माध्यम से हस्तांतरित किया जा सके।

(ब) भावी विकास - सामान्यतया व्यक्ति वर्तमान हितों पर ही अधिक ध्यान देता है अतः राज्य को जनता के भावी कल्याण में वृद्धि, करने हेतु सुविचार करके सार्वजनिक व्यय हेतु नीतियाँ बनानी होंगी। राज्य को नीतियाँ बनाते हुए भावी पीढ़ियों के हितों को भी ध्यान में रखना होगा।

(स) आर्थिक स्थायित्व - आर्थिक उतार चढ़ावों जैसे मंदी एवं तेजी से जनता के सामाजिक कल्याण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः सरकार को आर्थिक स्थायित्व को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए जिससे जनता के कल्याण को अधिकतम किया जा सके।

(द) शान्ति एवं सुरक्षा - शांति तथा सुरक्षा राज्य के विकास हेतु अनिवार्य एवं आवश्यक है। अतः राज्य का यह कर्तव्य होगा कि जनता के कल्याण हेतु सार्वजनिक व्यय के माध्यम से शांति तथा सुरक्षा को स्थापित किया जाये। कुल मिलाकर डाल्टन ने सामाजिक कल्याण के परीक्षण तथा मूल्यांकन हेतु आर्थिक सामाजिक तथा भविष्य के आधारों को स्थापित किया है जो कि इस सिद्धान्त के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

3.6.5 अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन - यह लोकवित्त का सबसे मूलभूत तथा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के माध्यम से लोकवित्त की न सिर्फ बुनियादी अवधारणा की स्थापना में सहायता मिली है परन्तु इस सिद्धान्त के क्रियान्वयन में निम्नवत् व्यवहारिक समस्याएँ सामने आती हैं -

माप सम्बन्धित समस्याएँ - व्यवहार में उपयोगिता तथा त्याग को मापना

एक कठिन कार्य है। यह कठिनाई राज्य व्यक्ति दोनों को उठानी पड़ती है। सरकार द्वारा इस तथ्य को ज्ञात करना बहुत कठिन है कि सार्वजनिक व्यय करने से जनता को कितनी मात्रा में सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। इसी प्रकार करों के आरोपण से जनता को जो अनुपयोगिता वहन करनी पड़ती है उसको मापना तथा ज्ञात करना सम्भव नहीं होता है।

- **उपयोगिता तथा अनुपयोगिता के मध्य संतुलन** - राज्य हेतु यह आकलन लगाना बहुत कठिन होगा कि करों के आरोपण से उत्पन्न होने वाली अनुपयोगिता तथा सरकारी व्यय से प्राप्त होने वाली उपयोगिता के मध्य कैसे संतुलन स्थापित कर सकें। ऐसे में अधिकतम सामाजिक लाभ की सीमा को ज्ञात करने में व्यवहारिक समस्या का सामना राज्य को करना पड़ेगा।
- **भविष्य का अनुमान** - सामाजिक लाभ को अधिकतम करने में राज्य की सफलता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि वह अपनी वित्तीय नीतियों के परिणामों का कितना सटीक पूर्वानुमान लगाने की क्षमता अपने पास रखता है। राज्य की वित्तीय क्रियाओं के भावी प्रतिफल के आकलन हेतु राज्य के पास कुशल प्रशासन, विशेषज्ञ नीतिकारों एवं योग्य अधिकारियों की निरंतर आवश्यकता होती है इसके अतिरिक्त नीतियों के भावी परिणामों के आकलन हेतु ठोस परिकल्पनाएँ एवं प्रभावी मापदण्ड होने चाहिए। अतः उपरोक्त सभी को देखते हुए राज्य के लिए इस सिद्धान्त के भावी पहलुओं का आँकलन असंभव तो नहीं परन्तु कठिन जरूर जान पड़ता है।

- **उपयोगिता तथा अनुपयोगिता का विवरण** - उपयोगिता तथा अनुपयोगिता की न सिर्फ माप कठिन है परन्तु इसका निरन्तर विवरण प्राप्त करना और भी अधिक कठिन है वर्तमान समय में लोकवित्त की क्रियाओं की व्यापकता तथा जटिलता को देखते हुए यह दुःख सा प्रतीत होता है।
- **वर्तमान त्याग एवं भावी उपयोगिता की समस्या** – सार्वजनिक व्यय सामान्यतया दीर्घकालीन दृष्टिकोण से भविष्य हेतु किये जाते हैं। विशेषकर विकास परियोजनाओं का क्रियान्वयन भावी दृष्टिकोण से किया जाता है सार्वजनिक व्यय का लाभ भविष्य में मिलता है तथा दूसरी ओर कर का भार जनता पर तुरन्त पड़ता है। अतः भविष्यकालीन लाभ तथा वर्तमान त्याग के आधार पर अधिकतम् सामाजिक लाभ का आकलन करना कठिन तथा अव्यावहारिक है।

लोकवित्त के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त के क्रियान्वयन में उपर्युक्त व्यवहारिक कठिनाइयों के कारण ही डाल्टन ने कहा है कि, **“यह सिद्धान्त सरल, स्पष्ट तथा शोधपूर्ण है परन्तु इसका व्यवहारिक दृष्टिकोण उतना ही कठिन है।”** लेकिन तमाम व्यवहारिक खामियों के बावजूद भी सामान्यतया अधिकतम् सामाजिक लाभ का सिद्धान्त लोकवित्त का सबसे मूलभूत सिद्धान्त है तथा राज्य की लोकवित्त क्रियाओं तथा बजट के प्रयोजनार्थ एक मार्गदर्शक की तरह कार्य करता है।

3.7 बाजार असफलता का तात्पर्य

बाजार असफलता एक रुचिपूर्ण तथा जटिल अवधारणा है। यह एक ऐसी परिस्थितियों का संचयी परिणाम है जहाँ पर बाजार व्यवस्था पूरी क्षमता के साथ कार्य नहीं कर पाती है। आर्थिक सिद्धान्तों के अनुसार बाजार असफलता एक ऐसी अवधारणा है जहाँ पर मुक्त बाजार के माध्यम वस्तु तथा सेवाओं का उत्पादन एवं आबंटन पूर्ण क्षमता के साथ नहीं हो पाता है। इस प्रक्रिया में संसाधनों का आबंटन तथा दोहन अनुकूलतम् नहीं होता है। अन्य अर्थों में यदि कहा जाये तो उत्पादन की सामाजिक लागत न्यूनतम् नहीं होती है कुल मिलाकर बाजार असफलता एक ऐसी स्थिति होती है जहाँ पर मुक्त बाजार में उपभोक्ताओं द्वारा किसी उत्पाद की माँगी गयी मात्रा आपूर्तिकर्ताओं द्वारा उस वस्तु की के समान नहीं हो पाती है तथा आवश्यक आर्थिक तत्वों के अभाव में स्थायी साम्यवस्था स्थापित नहीं हो पाती है तथा उत्पादन पैरेटो अनुकूलतम् की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होता है यानि बाजार में समाज कल्याण के दृष्टिकोण से बेहतर परिणाम प्राप्त हो सकता है। बाजार असफलता के कारण जहाँ एक ओर कीमत तंत्र समुचित रूप में कार्य नहीं कर पाता है। बाजार असफलता का प्रभाव उत्पादन वितरण एवं उपभोग तक के चरण में पड़ता है जिसका विश्लेषण निम्न प्रकार से किया जा सकता है -

- बाजार पूर्ण क्षमता तथा कुशलता के साथ दुर्लभ संसाधनों का आबंटन नहीं कर पाता है।
- बाजार में कीमत तंत्र प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर पाता है।
- बाजार पर्याप्त मात्रा में मेरिट) गुण (वस्तुओं व सेवाओं जैसे शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं का उत्पादन नहीं कर पाता है साथ ही सामाजिक रूप से गैर गुण एवं हानिकारक वस्तुओं जैसे शराब, तम्बाकू आदि को नियन्त्रित नहीं कर पाता है।

- बाजार असफलता के कारण से सामान्य संसाधन त्रासदी जैसी समस्याओं से गुजरना पड़ता है। जहाँ स्वहित को अधिकतम करने की होड़ में सामान्य तथा सार्वजनिक संसाधनों का एक ओर अतिशोषण होता है वहीं दूसरी ओर संसाधनों के क्षरण का नुकसान समस्त समाज को भुगतना पड़ता है।
- बाजार असफलता के कारण पर्यावरण मूल्यों का समावेश आर्थिक एवं बाजार मूल्य में नहीं हो पाता है जिससे औद्योगिक उत्पादन की लाभ उद्योगपति को प्राप्त होता है परन्तु प्रदूषण की लागत समस्त समाज को भुगतनी पड़ती है। बाजार असफलता के कारण साम्य अस्थिर एवं असंतुलित होता है तथा साम्य सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण की दृष्टि इष्टतम नहीं होता है बाजार असफलता के कारण साम्य स्थिति कल्याणकारी दृष्टि से महत्वपूर्ण पेरेंटो अनुकूलतम की शर्तों को पूर्ण नहीं कर पाता है।
- बाजार असफलता के कारण उत्पादन के सीमांत सामाजिक लाभ तथा सीमांत सामाजिक लागत में अंतर आ जाता है। जिसके कारण से अधिकतम सामाजिक कल्याण संतुलन की आवश्यक शर्त पूरी नहीं हो पाती है तथा सरकार के इष्टतम बजट के आकलन में समस्या आती है।
- बाजार असफलता के कारण संसाधनों का अक्षमतापूर्ण एवं कुआबंटन भी होता है। बाजार असफलता की दशाएँ अक्सर वित्तीय नीतियों एवं निर्णयों में अविवेकपूर्णता, अक्षमता, प्रतिकूल तथा गलत चयन, नैतिक खतरा व संकट की परिस्थितियों को उत्पन्न कर देते हैं। इन सब कारकों का संचयी परिणाम व्यापक रूप से समस्त अर्थव्यवस्था के ऊपर ही पड़ता है।
- बाजार असफलता के कारण समष्टि आर्थिक चरों का आकलन एवं परिकलन दोषपूर्ण तथा जटिल हो जाता है। इसके कारण से महत्वपूर्ण आर्थिक नीतियों जैसे राजकोषीय एवं वित्तीय नीतियों के क्रियान्वयन में व्यापक बाधाओं का भी सामना करना पड़ता है।
- बाजार असफलता के कारण से सार्वजनिक संसाधनों के दोहन संबंधी सरकारी नीतियों के क्रियान्वयन में अक्सर समस्याएँ सामने आती हैं सार्वजनिक संसाधनों के दोहन हेतु निलामी एवं निजीकरण की प्रक्रिया में अक्षमता, अपारदर्शिता तथा भ्रष्टाचार की समस्या उत्पन्न हो जाती है।
- बाजार की असफलता के कारण से अक्सर सार्वजनिक वस्तुओं तथा सेवाओं की निरन्तर आपूर्ति उत्पादन तथा विनिमेय व्यवस्था में खामियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिससे समूचित मात्रा में सार्वजनिक वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन नहीं हो पाता है तथा उपभोक्ता को असंतुष्ट रहना पड़ता है यानि उपभोक्ता की संतुष्टि एवं कल्याण की पूर्ति नहीं हो पाती है। यह तथ्य विशेषकर विकासशील देशों में सड़क, विद्युत, रेल परिवहन आदि सार्वजनिक सेवाओं के क्षेत्र में देखा जा सकता है।
- बाजार असफलता का सबसे व्यापक प्रभाव सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन प्रबन्धन, वितरण आदि में सामने आता है। बाजार तथा कीमत तंत्र के अकुशल एवं अक्षम होने के कारण सरकार को इन वस्तुओं तथा सेवाओं के क्षेत्र में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करना पड़ता है।
- बाजार की असफलता के कारण अक्सर वित्तीय, बीमा बैंकिंग, पूँजी बाजार आदि क्षेत्रों में संकट की समस्या का सामना करना पड़ता है।

- बाजार असफलता का प्रभाव आर्थिक नियमों, अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों के क्रियान्वयन पर भी पड़ता है। व्यष्टि, समष्टि, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र से लेकर मौद्रिक अर्थशास्त्र के सामान्यतया नियम इसी अवधारणा पर कार्य करते हैं कि बाजार मुक्त एवं पूर्ण क्षमता के साथ सक्रिय हैं।
- निःशुल्क सवार समस्या एक ऐसी समस्या है जो बाजार असफलता के कारण उत्पन्न होती है एवं इस समस्या के कारण सार्वजनिक वस्तु एवं सम्पदा जैसे पर्यावरण आदि के संरक्षण लाभ में सभी भागीदारी करना चाहते हैं परन्तु सार्वजनिक वस्तु एवं सम्पदा के संरक्षण तथा प्रबन्धन के लिये त्याग में भागीदारी नहीं करना चाहते हैं।

3.8 बाजार असफलता के कारण

बाजार असफलता हेतु अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं जोकि बाजार तथा वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करते हैं। यह बाजार असफलता की अवधारणा का प्रतिपादन हेनरी सिजविक द्वारा किया गया है एवं समय के साथ अर्थशास्त्रियों ने इस अवधारणा का व्यापक विकास किया है। बाजार असफलता के कारणों का विश्लेषण निम्न है-

3.8.1 बाजार की प्रकृति - एकाधिकारी अधिक लाभ की लालसा में अक्सर एकाधिकार की शक्ति का प्रयोग करते हुए उत्पादन को सीमांत सामाजिक लाभ तथा सीमांत सामाजिक लागत के साम्यावस्था द्वारा निर्धारित बिन्दु से कम स्तर पर नियन्त्रित कर देता है यह स्थिति तब भी उत्पन्न हो सकती है जबकि एकाधिकारी अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए नयी फर्म के बाजार में प्रवेश पर रोक लगा दें। इस एकाधिकार बाजार व्यवस्था में उत्पादन पेटेओ अनुकूलतम् के अनुसार नहीं संभव हो जायेगा। एकाधिकार के अतिरिक्त निम्न बाजार दशाओं में भी बाजार असफलता की स्थिति सामने आती है।

- एकाधिकारिकी व द्वैध एकाधिकार की बाजार दशाओं में भी बाजार असफलता की स्थिति सामने आ सकती है।
- अपूर्ण एवं अधूरे बाजार की स्थिति में बाजार पर्याप्त मात्रा में वस्तु तथा सेवाओं का उत्पादन नहीं कर पाता है।
- अस्थिर बाजार की दशाओं जैसे विदेशी विनिमेय बाजार आदि में भी संतुलित साम्यवस्था सुव्यवस्थित नहीं हो पाती है जिससे बाजार असफलता की संभावना बनी रहती है।

3.8.2 वस्तु की प्रकृति - बाजार की असफलता होने का एक मुख्य कारण वस्तुओं तथा सेवाओं की प्रकृति पर भी निर्भर करता है यदि उत्पादित वस्तु तथा सेवाओं की प्रकृति सार्वजनिक या सामान्य वस्तुओं की है तो ऐसी दशा बाजार के नियम इन वस्तुओं की कीमत निर्धारण तथा आबंटन में असफल एवं अक्षम रहते हैं। सार्वजनिक वस्तुओं से तात्पर्य ऐसी विशिष्ट वस्तुओं से होता है जो उपभोग में गैर प्रतियोगी होती हैं, सार्वजनिक वस्तुओं तथा सेवाओं के उपयोग द्वारा समाज के सभी सदस्यों को समान लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं तथा किसी व्यक्ति को इन वस्तुओं द्वारा उत्पन्न लाभों के उपयोग से वंचित नहीं किया जा सकता है। सामान्यतया बाजार में क्रय विक्रय की क्रियाओं से उपभोक्ता को पृथक किया जा सकता है परन्तु सार्वजनिक वस्तुओं के उपभोग से उपभोक्ता को पृथक

नहीं किया जा सकता है। अतः सार्वजनिक वस्तुओं की निम्न विशेषताओं के कारण से सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में बाजार असफल रहता है।

- लाभ की अविभाज्य होना – सार्वजनिक वस्तुओं से उत्पन्न लाभ को विभाजित नहीं किया जा सकता है।
- उपभोक्ता की पृथकता - सार्वजनिक वस्तुओं के लाभों से उपभोक्ता को पृथक नहीं किया जा सकता है।
- गैर प्रतियोगी उपभोग - सार्वजनिक वस्तु के उपभोग को एक उपभोक्ता द्वारा किये जाने पर दूसरे व्यक्ति के उपभोग के ऊपर इसका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है।

उपरोक्त सभी विशेषताओं को इस उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है जैसे सुरक्षा पर होने वाले व्यय से सभी व्यक्तियों को लाभ होता है परन्तु इस प्रकार के लाभ को न तो विभाजित किया जा सकता है एवं ना ही वंचित किया जा सकता है। साथ ही किसी के सुरक्षा लाभ उठाने की प्रक्रिया का दूसरे के लाभ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः इन सभी विशेषताओं के कारण से सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में बाजार असफल रहता है।

3.8.3 विनिमेय की प्रकृति एवं बाह्यता – बाजार असफलता में बाजार में होने वाली विनिमेय व्यवस्था की खामियाँ भी उत्तरदायी होती हैं। सूचनाओं का अभाव तथा असमितता के कारण से विनिमेय संबंधी खामियाँ उत्पन्न होती हैं। इन विनिमेय व्यवस्था में होने वाली खामियों तथा विखराव से कीमत तंत्र में सामाजिक लाभ एवं लागत का समावेश समुचित प्रकार से नहीं हो पाता है। इस बहिर्भाविता या बाह्यता कहते हैं। वस्तु तथा सेवाओं के उत्पादन से वितरण की प्रक्रिया में बाह्यता उत्पन्न होती है जिससे तीसरे पक्ष को लाभ या हानि प्राप्त होती है। जिसके लिए वह उत्तरदायी नहीं होता है। उदाहरण हेतु इकाई सीमेंट के उत्पादन में कीमत तंत्र पर्यावरण तथा समाज को होने वाले नुकसान का समावेश करने में असफल रहता है। बाह्यता धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों प्रकार की होती है। धनात्मक बाह्यता से समाज के लिए लाभ उत्पन्न होता है जबकि ऋणात्मक बाह्यता से समाज को हानि भुगतनी पड़ती है।

अतः बाह्यता के प्रभाव के कारण साम्यावस्था इष्टतम नहीं प्राप्त हो पायेगी जिसके कारण आर्थिक अक्षमता उत्पन्न हो जायेगी। सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन की प्रक्रिया में भी बाह्यताओं का प्रभाव उत्पन्न होता है जिसके कारण बाजार व्यवस्था तथा कीमत तंत्र समुचित तौर पर कार्य नहीं कर पाता है।

3.9 लोकवित्त की अवधारणा एवं बाजार असफलता

यद्यपि प्रारम्भिक एवं प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मुक्त बाजार को प्रत्येक समस्या का निदान मानते आये हैं तथा सरकार के आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप को अनुत्पादक मानते हैं परन्तु कीन्सवादी एवं मुख्यधारा के आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा जो लोकवित्त की नवीन अवधारणा का विकास किया गया है उसके अनुसार सरकार लोकवित्त की नीतियों के माध्यम बाजार असफलता की व्यवस्था के दुरुस्त कर वांछनीय परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। बाजार असफलता की समस्या के कारण सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं का समुचित उत्पादन एवं आबंटन नहीं हो पाता है तथा जिससे परिणाम सामाजिक दृष्टि से इष्टतम नहीं होते हैं। अतः लोकवित्त की नवीनतम अवधारणा के अनुसार सरकार बाजार क्रियाओं में सक्रिय हस्तक्षेप कर बाजार व्यवस्था के परिणामों की इष्टतम कर सकती है बाजार व्यवस्था को समुचित करने हेतु सरकार निम्न प्रक्रियाओं को अपना सकती है।

3.9.1 प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप - प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप से तात्पर्य यह है कि सरकार का उत्पादन, विनिमय वितरण एवं उपभोग आदि गतिविधियों पर सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण रहता है। इसका एक उदाहरण भारत में सार्वजनिक उपभोग की आवश्यक वस्तुओं हेतु विशेषकर निर्धन वर्गों के लिए सार्वजनिक वितरण व्यवस्था है जिसमें सरकारी संस्थायें कीमत तथा उपभोग की मात्रा आदि को नियन्त्रित रखते हैं प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप की प्रक्रियायें एवं तरीके निम्न हैं -

बल का प्रयोग - बाजार असफलता की दशा में सरकारें विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था हेतु कानून के प्रयोग द्वारा अनिवार्य अंशदान हेतु लाभार्थियों को बाध्य कर सकती है।

उत्पादन में भागीदारी - सरकार सार्वजनिक संस्थाओं के माध्यम से परिवहन रक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य सार्वजनिक वस्तु एवं सेवाओं का उत्पादन सुनिश्चित कर सकती है। भारत में नियोजित विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया गया है।

कीमत नियन्त्रण एवं प्रशासित कीमतें - सरकार उत्पादन एवं बाजार की प्रक्रियाओं में प्रत्यक्ष भागीदारी कर कीमत का निर्धारण कर सकती है। जैसे भारत में रेल यातायात, विद्युत, खाद्यान्न, मिट्टी तेल, रसोई गैस आदि की कीमतें जन उपयोग हेतु नियन्त्रित एवं प्रशासित की गयी हैं।

राशनिंग एवं कोटा - सरकार उत्पादन तथा उपभोग का कोटा निर्धारित कर बाजार असफलता के लिए उत्तरदायी कारकों को नियन्त्रित किया जा सकता है। पर्यावरण मूल्यों की उपेक्षा बाजार असफलता के कारण होने से पर्यावरण प्रदूषण तथा हरित गैस उत्सर्जन हो रहा है। सरकार प्रदूषण में रोकथाम हेतु तथा सार्वजनिक सम्पदा जैसे भूमि जल आदि के उपयोग हेतु कोटा निर्धारित कर सकती है। कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन रोकने हेतु उत्सर्जन कोटा निर्धारित किया गया है। भारत में आवश्यक खाद्यान्न की वस्तुओं का सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अनुरूप कोटा निर्धारित किया गया है इसी संदर्भ में घरेलु उपयोग हेतु गैस सिलेण्डर का कोटा निर्धारित किया गया है।

लाईसेंस एवं फीस - लाईसेंस तथा फीस व्यवस्था के माध्यम सरकार आर्थिक क्रियाओं एवं बाजार व्यवस्था में प्रत्यक्ष तथा प्रभावी हस्तक्षेप कर सकती है। उत्पादन तथा उपभोग की क्रियाओं को नियन्त्रित करने हेतु सरकार फीस व्यवस्था का प्रयोग कर लाईसेंस जारी कर सकती है। भारत में सरकार शराब जैसी हानिकारक वस्तुओं के उत्पादन को नियन्त्रित करने हेतु लाईसेंस तथा फीस व्यवस्था का प्रयोग करती है।

3.9.2 अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप एवं नियमन - प्रत्यक्ष हस्तक्षेप की तुलना में अप्रत्यक्ष एवं प्रोत्साहन आधारित प्रयास बाजार व्यवस्था को प्रभावी बनाने हेतु अधिक कारगर होते हैं। कर आधारित प्रेरक नीतियों के प्रयोग के माध्यम से बाजार असफलता के लिये उत्तरदायी कारकों को दूर कर वांछित परिणाम को प्राप्त किया जा सकता है। कर आधारित प्रेरक नीतियों में निम्न तरीकों को अपनाया जा सकता है

- कर रियायत - करों में रियायत के माध्यम से यह प्रेरणा प्रदान की जा सकती है कि आर्थिक इकाईयाँ अपनी क्रियाओं में वांछित सुधार को अपनाकर बाजार व्यवस्था को कारगर बनाने के लिए प्रयास करें, इसके लिए निम्न तरह से कर रियायत प्रदान की जा सकती है

- सामाजिक, मेरिट तथा सार्वजनिक वस्तुओं तथा सेवाओं शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की व्यवस्था करने वाली संस्थाओं को कर रियायत प्रदान की जाये।
 - धनात्मक बाह्यता उत्पन्न कर सामाजिक लाभ को बढ़ाने वाली क्रियार्यें हेतु उत्तरदायी इकाईयों को कर रियायत प्रदान की जाये।
 - प्रदूषण नियन्त्रित करने वाली इकाईयों को कर रियायत प्रदान की जाये जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन में कटौती करने वाली संस्थाओं को कार्बन क्रेडिट प्रदान किया जाता है।
- करारोपण – बाजार असफलता हेतु जिम्मेदार निजी व्यक्तियों तथा संस्थाओं की आर्थिक क्रियाओं को हतोत्साहित करने हेतु करारोपण की नीतियों का सहारा निम्न प्रकार से लिया जा सकता है-
- ऋणात्मक बाह्यता उत्पन्न कर सामाजिक हानि को बढ़ाने वाली क्रियाओं को हतोत्साहित करने हेतु कठोर कर लगाया जा सकता है। जैसे प्रदूषण करने वाली इकाईयों पर प्रदूषण के अनुपात में कर आरोपित किया जा सकता है।
 - सार्वजनिक सम्पदा अत्यधिक दोहन एवं निशुल्क सवार समस्या को नियन्त्रित करने हेतु करारोपण किया जा सकता है। जैसे जल के निर्धारित न्यूनतम सीमा से अधिक उपयोग कर करारोपण करना।
 - सार्वजनिक वस्तुओं जैसे रक्षा आदि की व्यवस्था हेतु सरकार अक्सर सामान्य करोपण का प्रयोग करती है जबकि जैसे विशिष्ट उद्देश्यों की व्यवस्था हेतु सरकार उपकरणों एवं विशिष्ट करों का सहारा लेती है।
- निजीकरण - इनके अन्तर्गत साझा प्राकृतिक संसाधन जैसे कोयला, तेल, वन, मछलियाँ आदि आती हैं। इन संसाधनों की व्यवस्था हेतु सरकारें प्रतियोगी आधार पर निलामी के माध्यम से लाईसेंस उपलब्ध करा सकती है। सरकार बुनियादी आवश्यक सेवाओं जैसे हाईवे, दूरसंचार आदि के विकास, रखरखाव एवं नियमन हेतु निजी संस्थाओं को प्रोत्साहित कर सकती है। जैसे – निजी संस्थायें टोल टैक्स के माध्यम से हाईवे आदि का प्रबन्धन करती हैं।
- गारण्टी - बाजार असफलता की दशा में विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था हेतु योगदान करने वालों धन की सुरक्षा एवं उसकी पुर्नवापसी की गारण्टी प्रदान करती है।
- राज सहायता एवं सरकार समर्थन - सरकार सार्वजनिक तथा सेवाओं के उत्पादन तथा वितरण में एवं बाजार असफलता के अन्य कारकों को दूर करने हेतु सब्सिडी प्रदान कर सकती है जैसे शिक्षण एवं जन स्वास्थ्य संस्थाओं की स्थापना हेतु सब्सिडी या राज सहायता प्रदान की जाती है।

बाजार असफलता के कारण से अक्सर अर्थव्यवस्था में वित्तीय संकट की समस्या भी आ जाती है। जिसका प्रभाव बैंकिंग, औद्योगिक, बीमा, पूँजी बाजार समेत सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर पड़ता है। अतः इन सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विश्वास की बहाली करने हेतु सरकार इन क्षेत्रों हेतु विशिष्ट सहायता एवं संकट निवारण कार्यक्रम (बेल आउट

प्रोग्राम) भी क्रियान्वित करती है। अमेरिका में 2008 में आये वित्तीय संकट तथा बाजार असफलता को दूर करने के उद्देश्य से वहाँ की संघीय सरकार द्वारा व्यापक बेल आउट पैकेज एण्ड प्रोग्राम लागू किये गये हैं।

कुल मिलाकर सरकार अपनी राजकोषीय एवं बजट नीति के प्रयोग के माध्यम से कर नीति, व्यय नीति, आदि का उपयोग बाजार व्यवस्था को समुचित बनाकर सामाजिक रूप से वांछनीय परिणाम प्राप्त करने का प्रयास कर सकती है। चूंकि बाजार असफलता के कारण से सीमांत सामाजिक लाभ एवं सीमांत सामाजिक त्याग में असंतुलन आ जाता है जिसे लोकवित्त की नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन से संतुलित किया जा सकता है।

3.10 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न

- (1) अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया है ?
- (2) अधिकतम कुल कल्याण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया है?
- (3) लोकवित्त की प्रतिष्ठित विचारधारा के अनुसार राज्य का प्रत्यक्ष क्रियाओं में हस्तक्षेप किस प्रकार का सिद्ध होता है?
- (4) अधिकतम सामाजिक कल्याण हेतु सरकारी बजट के इष्टतम आकार हेतु सीमांत सामाजिक लाभ तथा सीमांत सामाजिक त्याग में क्या सम्बन्ध होना चाहिए।
- (5) क्रियाशील वित्त की अवधारणा का विकास किसने किया है?
- (6) कर की प्रति अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होने वाली सामाजिक अनुपयोगिता पर क्या प्रभाव पड़ता है?
- (7) आधुनिक लोकवित्त की अवधारणा के अनुसार आर्थिक गतिविधियों में सरकार का हस्तक्षेप आर्थिक तथा सामाजिक आपूर्ति हेतु किस प्रकार का है?
- (8) राज्य की क्रियाओं में वृद्धि की अवधारणा के प्रतिपादक कौन हैं?
- (9) बाजार असफलता की दशा में कीमत तंत्र किस प्रकार से कार्य करता है?
- (10) परेटो इष्टतम की दृष्टि से बाजार असफलता के परिणाम किस प्रकार के होते हैं?
- (11) मसग्रेव के अनुसार बजट के अनुकूलतम होने के लिए, सीमांत उपयोगिता तथा सीमांत अनुपयोगिता के मध्य क्या सम्बन्ध होता है?
- (12) सार्वजनिक वस्तु तथा सेवाओं के उत्पादन तथा वितरण में बाजार सामान्यतया किस प्रकार से कार्य करने की स्थिति में रहता है?
- (13) "लोकवित्त का सम्बन्ध लोक सत्ताओं के आय तथा व्यय से एवं एक दूसरे के समायोजन से होता है।" यह परिभाषा किस अर्थशास्त्री द्वारा दी गयी है?
- (14) प्रेरक कर नीतियों का प्रयोग बाजार में किस अव्यवस्था को दूर करने हेतु किया जाता है?
- (15) राज्य न्यूनतम व्यय तथा न्यूनतम कर की अवधारणा के समर्थक कौन से वर्ग के अर्थशास्त्री हैं?

3.11 सारांश(Summary)

लोकवित्त की अवधारणा विकास एक दीर्घकालिक प्रक्रिया रही है इसके विकास में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय कारकों का योगदान रहा है। यद्यपि आरम्भिक चरणों में लोकवित्त की अवधारणा का

महत्व एवं क्षेत्र पराम्परागत अर्थशास्त्रियों द्वारा सीमित ही रखा गया था परन्तु कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की स्थापना हेतु तथा आधुनिक विकासात्मक आवश्यकताओं को देखते हुए लोकवित्त का महत्व अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में मुखर हो चला है।

लोकवित्त की अवधारणाओं का सैद्धान्तिक महत्व होने के साथ-साथ व्यावहारिक रूप से भी महत्वपूर्ण है। इन अवधारणाओं के माध्यम से जिन सिद्धान्तों, नियमों एवं परिकल्पनाओं का विकास हुआ है वह राज्य की बजट तथा राजकोषीय नीतियों के निर्माण तथा क्रियान्वयन हेतु महत्वपूर्ण दिशा निर्देश का कार्य करता है।

बाजार असफलता के कारण महत्वपूर्ण आर्थिक क्रियाओं तथा उनके वांछित सामाजिक परिणामों की प्राप्ति में बाधा आती है। सार्वजनिक सम्पदा का अतिदोहन पर्यावरण प्रदूषण एवं वित्तीय संकट आदि बाजार असफलता का ही परिणाम है बाजार असफलता के कारकों को दूर कर सामाजिक कल्याण हेतु आर्थिक संतुलन स्थापित करने में लोकवित्त की नीतियाँ एवं अवधारणायें कारगर हो सकती हैं।

3.12 शब्दावली (Glossary)

- **बेल आउट प्रोग्राम** – अर्थव्यवस्था के किसी क्षेत्र को आर्थिक तथा वित्तीय संकट से उबारने हेतु एक विशिष्ट कार्यक्रम लागू किया जाता है इसके कर राहत, राजकीय सहायता आदि को शामिल किया जाता है।
- **नैतिक खतरा** – यह एक ऐसी समस्या है जो कि अक्सर के कारण वित्तीय क्षेत्रों में अधिक देखी जाती है इसके अंतर्गत कोई व्यक्ति या संस्था विभिन्न जोखिमों के प्रति बीमा तथा सरकार से गारंटीकृत होने के कारण अविवेकपूर्ण एवं गैर जिम्मेदार व्यवहार तथा नीतियों को क्रियान्वित करता है।
- **पेरेटो इष्टतम्** – यह सामाजिक कल्याण की वह इष्टतम् दशा है जिसमें किसी एक व्यक्ति का कल्याण में वृद्धि दूसरे व्यक्ति के कल्याण में कमी करने के पश्चात् ही की जा सकती है।
- **बाह्यतायें या बहिर्भावितायें** – बाह्यतायें या बहिर्भावितायें किसी व्यक्ति या संस्था के कार्यों से तीसरे पक्ष पर पड़ने वाला प्रभाव है जिसका उस गतिविधि से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है।
- **समष्टि आर्थिक चर** - यह किसी अर्थव्यवस्था की परिपक्वता ज्ञात करने के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण तथा समग्र अर्थव्यवस्था हेतु चर होते हैं। इसके अंतर्गत सकल घरेलु उत्पाद, राष्ट्रीय बचत एवं निवेश दर, राजकोषीय एवं चालू खाते का घाटा आदि प्रमुख है।
- **निःशुल्क सवार समस्या** – निजी व्यक्ति तथा संस्था का वह व्यवहार है जोकि सार्वजनिक वस्तु तथा सेवाओं के लाभ में हिस्सेदारी चाहता है परन्तु लागत में भागीदारी नहीं करता है।
- **द्वैध एकाधिकार** – यह बाजार की ऐसी स्थिति होती है जहाँ एक ही क्रेता एवं एक ही विक्रेता होता है।
- **घाटे का बजट** – ऐसा बजट जिसमें आय से अधिक व्यय होता है तो ऐसा सरकार हेतु घाटे का बजट कहलाता है जिसकी पूर्ति सरकारें बाजार से उधार लेकर एवं नयी मुद्रा को जारी करके पूरा करती हैं।
- **उपकर** - सामान्य करों के विपरित उपकर किसी विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आरोपित किया जाता है।

3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of the Practice Questions)

(1) डाल्टन (2) पीगू (3) अनुत्पादक (4) बराबर होने का (5) लर्नर (6) धनात्मक (7) आवश्यक (8) वेगनर (9) असफलतापूर्वक (10) अवांछनीय (11) न्यूनतम् दूरी (12) असफलतापूर्वक (13) डाल्टन (14) असफलता (15) संस्थापक अर्थशास्त्री ।

3.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- सिंघई, जी० सी०, मिश्रा, जे० पी०, "अर्थशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्स) 2012), आगरा ।
 - त्यागी, बी० पी०, "लोकवित्त" जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी) 2004), मेरठ ।
 - Basu Kaushik. The Oxford companion to Economics in India, Oxford University press (2007), New Delhi.
 - Ahuja, H. L., Advanced Economics Theory Microeconomic Analysis, S. Chand & Company Ltd. (2004), New Delhi.
-

3.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

3.16 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

- (1) लोकवित्त की अवधारणा से अभिप्राय को समझाते हुए आधुनिक तथा संस्थापक अवधारणा में अन्तर स्पष्ट कीजिए ?
- (2) अधिकतम् सामाजिक कल्याण सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए इसके महत्व पर चर्चा कीजिए ?
- (3) अधिकतम् सामाजिक लाभ सिद्धान्त पर मसग्रेव के विचारों की व्याख्या करते हुए इस सिद्धान्त का मूल्यांकन कीजिए ?
- (4) बाजार असफलता को परिभाषित करते हुए इसके कारणों एवं परिणामों पर टिप्पणी कीजिए ।
- (5) बाजार असफलता के कारणों पर चर्चा करते हुए इसके निवारण हेतु नीतियों का वर्णन कीजिए ।

इकाई 4 निजी वस्तु, लोक वस्तु और मेरिट वस्तु एवं सिद्धान्त
(Private Goods, Public Goods and Merit Goods and theories)

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 वस्तुओं की प्रकृति एवं निर्धारण सिद्धान्त
- 4.4 निजी वस्तुओं से अर्थ एवं तात्पर्य
- 4.5 सार्वजनिक वस्तुओं का अर्थ तथा तात्पर्य एवं सिद्धान्त
- 4.5 सार्वजनिक एवं निजी वस्तुओं का तुलात्मक अध्ययन
- 4.6 मेरिट वस्तुओं की अवधारणा
- 4.7 निजी, सार्वजनिक वस्तुओं तथा मेरिट वस्तुओं में तुलनात्मक अध्ययन
- 4.8 डिमेरिट या हानिकारक वस्तुओं की अवधारणा
- 4.9 अभ्यास प्रश्न
- 4.10 सारांश
- 4.11 शब्दावली
- 4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.15 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

लोक वित्त की अवधारणायें समय एवं परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही हैं। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण से उपजी परिस्थितियों ने राज्य की भूमिकाओं को नये सिरे से परिभाषित किया है जिसके फलस्वरूप लोक वित्त अवधारणायें भी प्रभावित हुई हैं। निजी वस्तुओं के विपरीत लोक वस्तु तथा मेरिट वस्तुओं के कीमत निर्धारण तथा आबंटन में बाजार असफल रह जाता है तथा इनका प्रावधान करने हेतु लोक वित्त की नीतियों एवं अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में लोक वित्त की अवधारणाओं का महत्व अत्याधिक व्यापक एवं प्रभावशाली हो गया है। पूर्व की इकाई में हम लोक वित्त की अवधारणा तथा बाजार असफलता के सन्दर्भ में व्यापक अध्ययन कर चुके हैं। लोक वित्त की नीतियों का मुख्य उद्देश्य समाज कल्याण में निरन्तर वृद्धि करना है। इसके समाज में बुनियादी आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता एवं जनसाधारण तक उनकी पहुँच बढ़ाना आवश्यक है। इसके लिये सड़क, विद्युत, पेयजल, साफ-सफाई, शिक्षा, जनस्वास्थ्य आदि सार्वजनिक महत्व के क्षेत्रों का विकास करना आवश्यक है।

सार्वजनिक महत्व के क्षेत्रों का प्रावधान करने में अक्सर बाजार व्यवस्था एवं निजी क्षेत्र असफल रह जाता है। अतः सार्वजनिक एवं लोक महत्व की वस्तुओं एवं सेवाओं के लिये अलग सिद्धान्त तथा नीतियों के प्रावधान करने की आवश्यकता होती है जोकि निजी वस्तुओं हेतु लागू होने वाले सिद्धान्तों से भिन्न होते हैं। निजी, सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं के संदर्भ में व्यापक अध्ययन वर्तमान इकाई में किया जायेगा।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं -

- ✓ सार्वजनिक मेरिट एवं निजी वस्तुओं के अर्थ तथा तात्पर्य क्या हैं ?
- ✓ निजी वस्तुओं तथा सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं की अवधारणा में क्या अन्तर है ?
- ✓ सार्वजनिक, मेरिट एवं निजी वस्तुओं के सन्दर्भ में कौन से सिद्धान्त कार्य करते हैं तथा इनकी क्या विशेषतायें हैं ?
- ✓ बाजार तंत्र किस प्रकार से सार्वजनिक, निजी एवं मेरिट वस्तुओं के सन्दर्भ में कार्य करते हैं ?
- ✓ निजी, सार्वजनिक एवं उत्कृष्ट वस्तुओं के प्रावधान करने में सरकार किस प्रकार की भूमिका एवं नीतियों बनाती है?
- ✓ सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं का सामाजिक कल्याण तथा राष्ट्र के विकास में किस प्रकार से भूमिका निभाते हैं ?

4.3 वस्तुओं की प्रकृति एवं निर्धारण सिद्धान्त

सामान्यतया पूर्णतया निजी तथा पूर्णतया सार्वजनिक वस्तुयें कम ही होती हैं। अधिकांश तथा वस्तुओं तथा सेवाओं में सार्वजनिक तथा निजी तत्वों दोनों का मिश्रण होता है। जिन वस्तुओं में सार्वजनिकता के गुण अधिक होते हैं उन्हें निजी वस्तु कहा जाता है। वास्तव में वस्तुओं की प्रकृति निर्धारित करने में उत्पादन, उपभोग एवं बाजार विनिमेय व्यवस्था के सिद्धान्तों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जिनका विश्लेषण निम्नवत् हैं -

प्रतियोगी तथा गैर प्रतियोगी उपभोग – यदि किसी वस्तु का प्रयोग एक व्यक्ति द्वारा किये जाने पर अन्य व्यक्तियों के लिये उस वस्तु की उपलब्धता या उपयोगिता में कमी हो जाती है तो उपभोग प्रतियोगी कहलाया जाता है। इसके विपरीत होने पर उपभोग की प्रवृत्ति गैर प्रतियोगी होती है।

- वर्जन सिद्धान्त एवं उपभोक्ता की पृथकता - इस सिद्धान्त से तात्पर्य यह है कि सामान्यतया बाजार
- में क्रय-विक्रय की प्रक्रिया से उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त निहित रहता है जो व्यक्ति वस्तु मूल्य का भुगतान सक्षम एवं तैयार रहता है वहीं वस्तु का उपभोग करता है अन्यथा व्यक्ति उपभोग से वंचित रहता है।
- प्रकट अधिमान – बाजार व्यवस्था सामान्यतया निलामी अर्थ व्यवस्था पर निर्भर है। प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा वस्तु हेतु बोली लगायी जाती है एवं अधिक अधिमान वाले उपभोक्ता अधिक कीमत देने को तत्पर रहते हैं तथा माँग का ऑकलन कर उत्पादन वस्तु का उत्पादन करता है। माँग तथा आपूर्ति की शक्तियों से कीमत तंत्र निपुणता पूर्वक कार्य करती है।

उपरोक्त सिद्धान्तों के लागू होने से निजी वस्तुओं के लिये बाजार तंत्र पूरी क्षमता के साथ कार्य करता है तथा कीमत तंत्र प्रभावी रहता है। निजी वस्तुओं का उपभोग प्रतियोगी होता है तथा वर्जन एवं उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त लागू होता है वहीं वस्तुयें सार्वजनिक उपभोग में गैर प्रतियोगी होती हैं तथा इन वस्तुओं के सन्दर्भ में उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। यद्यपि निजी तथा सार्वजनिक वस्तुओं की प्रकृति में तकनीकी प्रगति तथा बाजार तंत्र के विकास के साथ परिवर्तन भी आता जाता है। तकनीकी प्रगति ने जहाँ नयी वस्तु तथा सेवायें समाज को प्रदान की हैं वहीं उनका स्वरूप भी परिवर्तित किया है। इसका एक उदाहरण टेलीविजन के चैनलों का प्रसारण है जहाँ सेटटाप बाक्स पर कार्ड लगाकर लाभ का ऑकलन तथा भुगतान को सुनिश्चित किया जा सकता है। तकनीक के माध्यम से रेडियो प्रसारण एवं सूचना प्रसारण सेवाओं का स्वरूप कुछ हद तक बदला जा सकता है।

सार्वजनिक वस्तुओं के सम्बन्ध में यह भ्रांति है कि यह वस्तुयें सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा ही उत्पादित की जाती हैं। सार्वजनिक वस्तुयें यद्यपि अधिकांशतया सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा ही उत्पादित की जाती हैं परन्तु यह अनिवार्य नहीं हैं। सार्वजनिक वस्तुयें प्राकृतिक रूप से उपलब्ध हो सकती हैं तथा निजी इकाईयों एवं गैर राज्यकीय तत्वों द्वारा निर्मित की जा सकती हैं। सार्वजनिक वस्तुयें को भौगोलिक तथा राजनैतिक सीमाओं के अन्तर्गत नहीं परिभाषित किया जा सकता है। ज्ञान अविष्कार, सचना, पर्यावरण एवं जलवायु आदि वैश्विक सार्वजनिक वस्तु के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। अधिकांश सूचना प्रसारण तथा ज्ञान से सम्बन्धित वस्तुओं में अधिकांश विशेषतायें सार्वजनिक वस्तुओं की होती हैं। जैसे इंटरनेट सेवा एक गैर प्रतियोगी सेवा है इसी प्रकार सृजनात्मक वस्तु जैसे कविता, कहानी या अन्य अविष्कार भी गैर प्रतियोगी स्वरूप के हैं। सरकार कापी राईट व पेटेंट के माध्यम से गैर प्रतियोगी वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करती है तथा विधिक तौर पर कुछ समय हेतु एकाधिकार प्रदान कर वर्जन के सिद्धान्त को सुनिश्चित करती है। अधिकांश वस्तुओं में सार्वजनिक तथा निजी वस्तुओं के गुण समाहित रहते हैं निम्न सारणी के माध्यम से विभिन्न वस्तुओं की प्रकृति को समझा जा सकता है

सारणी 4 अ

उपभोग	वर्जनसंभव	वर्जन सम्भव नहीं
प्रतियोगी	निजी वस्तु – कार, कपड़े, रोटी	साझा संसाधन - लकड़ी, कोयला, मत्स्य भंडार
गैर प्रतियोगी	क्लब वस्तु - सिनेमा, पार्क, खेल मैदान, सैटेलाइट टी० वी०	सार्वजनिक वस्तु – रक्षा, प्रकाश स्तम्भ, निशुल्क टी० वी० प्रसारण

उपरोक्त सारणी से वस्तुओं की प्रकृति एवं प्रकारों को भली भाँति समझा जा सकता है। जहाँ पर सार्वजनिक तथा निजी वस्तुयें वर्जन तथा प्रतियोगी सिद्धान्त के अनुसार विपरीत छोरों पर हैं।

साझा संसाधनों जैसे लकड़ी, कोयला, मत्स्य भंडार, तेल, गैस जैसे प्राकृतिक संसाधनों सार्वजनिक वस्तु की तरह सामान्य उपयोग के हैं तथा इनमें वर्जन सिद्धान्त भी लागू नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर समुद्र से मछलियों के उत्पादन से किसी को वंचित नहीं किया जा सकता है परन्तु इनका उपयोग प्रतियोगी होता है।

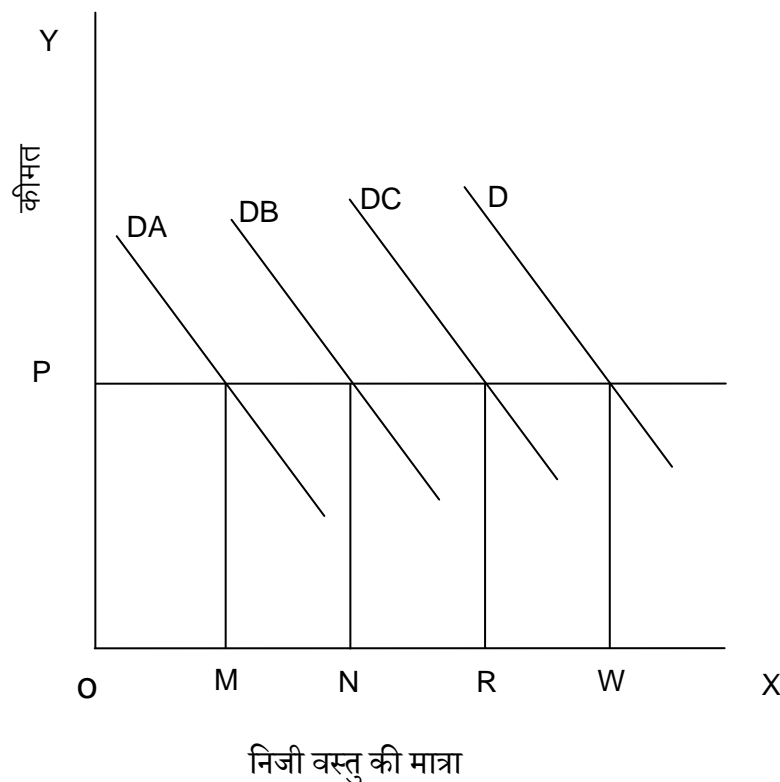
क्लब वस्तुयें भी सार्वजनिक वस्तुओं की भाँति सामान्य हितों की पूर्ति करता है तथा यह गैर प्रतियोगी होती है। परन्तु इनमें वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर सैटेलाइट टी० वी० पर प्रसारण का उपभोग भुगतान के बाद ही उठाया जा सकता है। कानून व्यवस्था, शिक्षा, पुस्तकालय आदि को सामान्यतया सार्वजनिक वस्तु समझा जाता है परन्तु तकनीकी रूप से यह अर्द्ध सार्वजनिक वस्तुयें हैं जिनमें सार्वजनिक वस्तुओं की काफी गुण हैं।

4.4 निजी वस्तुओं से अर्थ एवं तात्पर्य

निजी वस्तुओं का तात्पर्य ऐसी वस्तुओं से होता है जिसका उत्पादन तथा उपभोग निजी तौर पर किया जा सके। निजी वस्तुओं की व्यवस्था में बाजार तंत्र निपुणता के साथ कार्य करता है। निजी वस्तुओं के उपभोग हेतु मूल्य का भुगतान करना पड़ता है। निजी वस्तुओं की विशेषतायें निम्न हैं –

- निजी वस्तुओं का उपभोग प्रतियोगी होता है तथा एक व्यक्ति द्वारा निजी वस्तु के उपभोग
- का प्रभाव अन्य व्यक्तियों के लिये उस वस्तु की उपयोगिता तथा उपलब्धता पर इस प्रकार से पड़ता है कि उस वस्तु द्वारा प्रदत्त होने वाले लाभ की मात्रा में कमी आ जाती है। उदाहरण हेतु किसी कालोनी में किसी फ्लैट को किसी व्यक्ति द्वारा क्रय कर लेने से अन्य व्यक्तियों के लिये फ्लैट की उपलब्धता में कमी आ जाती है।
- निजी वस्तुओं के लिये वर्जन एवं उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त लागू होता है। इसके सिद्धान्त के अनुसार वही व्यक्ति निजी वस्तु का उपभोग कर पाते हैं जिन्होंने उस वस्तु के बाजार मूल्य का भुगतान किया हो। भुगतान न कर पाने वाले व्यक्ति निजी वस्तु के उपभोग से वंचित रह जाते हैं।

- निजी वस्तुओं के उपभोक्ता का अधिमान स्वतः एवं स्वायत्त रूप से अभिव्यक्त होता है। निजी वस्तुयें विभाज्य होती हैं तथा उनके द्वारा उत्पन्न लाभ निजी व्यक्तियों तक ही सीमित रहते हैं। निजी वस्तुयें केवल उसे क्रय करने वाले उपभोक्ता तक ही सीमित रहती हैं। कुल मिलाकर निजी वस्तु का उद्देश्य व्यक्तिगत हितों की आपूर्ति तक ही सीमित रहता है।
- निजी वस्तु द्वारा लाभ सामान्यतया आंतरिक होते हैं एवं उसी व्यक्ति तक सीमित रहते हैं जोकि निजी वस्तु हेतु भुगतान करता है।
- अधिकांश निजी वस्तुओं की व्यवस्था बाजार तंत्र के माध्यम से होती है यानि निजी वस्तुओं का आबंटन बाजार व्यवस्था के माध्यम से होता है। बाजार तंत्र तथा कीमत तंत्र निजी वस्तुओं के सन्दर्भ में सामान्यतया निपुणता से कार्य करते हैं। निजी वस्तुओं का सामान्यतया उत्पादन निजी क्षेत्र में होता है परन्तु भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ कि अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाता आया है निजी वस्तुओं का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र में भी होता है। यद्यपि उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया के तीव्र होने से भारत में भी अधिकांश वस्तुओं के उत्पादन में बाजार तथा निजी क्षेत्र मुख्य भूमिका निभाने लगे हैं।
- निजी वस्तुओं की माँग एक दिये गये मूल्य पर माँग वक्रों के क्षैतिज योग द्वारा प्राप्त होती है यानि कुल बाजार माँग विभिन्न उपभोक्ताओं की माँगों का योग होती है। चित्र संख्या '4अ' में तीन उपभोक्ताओं A, B तथा C के माँग वक्र क्रमशः DA, DB तथा DC एवं OP कीमत पर उनके उपभोग क्रमशः OM, MN एवं NR हैं।



चित्र संख्या- 4 अ

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि कुल माँग वक्र तीनों माँग वक्रों के क्षैतिज योग से प्राप्त हुआ है। कुल वस्तु की मात्रा = A का उपभोग + B का उपभोग + C का उपभोग

$$OW = OM + MN + NR$$

अतः चित्र '4अ' से स्पष्ट है कि यदि A का उपभोग में वृद्धि होती है तो OW को स्थिर बनाने हेतु दूसरे उपभोक्ताओं के उपभोग में कमी आयेगी। इससे यह प्रमाणित होता है कि निजी वस्तुओं का उपभोग प्रतियोगी होता है।

कुल मिलाकर मुख्यतया निजी वस्तुयें वह होती हैं जिनका उपभोग प्रतियोगी होता है एवं जिनमें वर्जन का सिद्धान्त लागू हो सकता है।

4.5 सार्वजनिक वस्तुओं का अर्थ तथा तात्पर्य एवं सिद्धान्त

सार्वजनिक वस्तुयें वह होती हैं जिनका उत्पादन करने से वाह्य लाभ तथा बचतों का सृजन होता है तथा इनका उपयोग सामूहिक रूप से किया जाता है। यह वस्तुयें उपभोग में गैर प्रतियोगी होती हैं तथा इन वस्तुओं के सन्दर्भ में उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। सार्वजनिक वस्तुओं का आबंटन सामान्यतया राजकोषीय एवं बजट नीतियों के माध्यम से किया जाता है।

सैमुल्शन द्वारा सार्वजनिक वस्तुओं की अवधारणा का प्रतिपादन किया है। उनके द्वारा 1959 में प्रकाशित "लोक व्यय की अवधारणा के शुद्ध सिद्धान्त" लेख में सार्वजनिक वस्तुओं की दो प्रमुख विशेषतायें उजागर की गयीं, यह विशेषतायें उपयोग में गैर प्रतियोगी एवं गैर वर्जनीय होता है। जहाँ पर यह दोनों विशेषतायें पूर्ण होती हैं ऐसे वस्तु को शुद्ध सार्वजनिक वस्तु कहते हैं। सैमुल्शन द्वारा पुनः सार्वजनिक वस्तुओं को परिभाषित करते हुये इनको "सामूहिक उपभोग की वस्तु" के रूप में निर्धारित किया।

सार्वजनिक वस्तुओं के सामान्य उदाहरणों में रक्षा, प्रकाश स्तम्भ, स्ट्रीट लाईटिंग, पुल, पार्क, स्वच्छ वायु, पर्यावरणीय वस्तु एवं सूचना वस्तु आती है। सूचना वस्तु के अन्तर्गत अविष्कार एवं नवप्रवर्तन, तकनीकी विकास, लेखन आदि आते हैं। सूचना वस्तु से लाभ प्राप्ति हेतु कोई भी भुगतान नहीं देना चाहता है क्योंकि इस पर वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है तथा इसकी पुनरोत्पादन की लागत लगभग शून्य होती है।

4.5.1 सार्वजनिक वस्तुओं पर आरोपित सिद्धान्त - सार्वजनिक वस्तुओं की परिभाषा निर्धारित करने में मुख्यतया जो सिद्धान्त आरोपित होते हैं उनका विश्लेषण निम्नवत् है -

- **गैर प्रतियोगी उपभोग** - सार्वजनिक वस्तुओं के निर्धारण में उपभोग का गैर प्रतियोगी होना मुख्य लक्षण है। इसके अनुसार यदि सार्वजनिक वस्तु का उपभोग किसी एक व्यक्ति द्वारा किया जाता है तो इसका प्रभाव अन्य व्यक्ति के लाभों पर नहीं पड़ता है। उदाहरण के तौर पर सार्वजनिक पुल या पार्क किसी व्यक्ति के जाने न जाने से अन्य व्यक्तियों हेतु पुल या पार्क की सुविधा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
- **उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्जन सिद्धान्त** - बाजार में क्रय विक्रय की प्रक्रिया द्वारा उपभोक्ता को पृथक किया जा सकता है। सार्वजनिक वस्तुओं हेतु उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्जन का सिद्धान्त लागू

नहीं होता है। एक व्यक्ति को सार्वजनिक वस्तु की आपूर्ति होते ही इसके लाभ तुरन्त एवं एक साथ समाज के सभी व्यक्तियों पर पहुंच जाते हैं। सार्वजनिक वस्तु के लाभों से किसी को वंचित नहीं किया जा सकता है चाहे उसने उस वस्तु का भुगतान किया या नहीं किया हो। जैसे पर्यावरण एवं प्रदूषण सुधार कार्यक्रमों का लाभ समाज के सभी व्यक्तियों तक अपने आप पहुंच जाते हैं तथा किसी को भी इसके लाभों से वंचित नहीं किया जा सकता है।

- **बाह्य बचतों का निर्माण** – सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन से समाज हेतु बाह्य बचतों का निर्माण होता है। बाह्य बचतें समाज हेतु लाभों को उत्पन्न करती हैं। बाह्य बचतों के प्रभाव से सामाजिक लागतों एवं निजी लागतों में अन्तर आ जाता है। इस दशा में सीमांत सामाजिक लागत सीमांत निजी लागत से कम हो जाती है। बाह्य बचतें उत्पादन की प्रक्रिया में धनात्मक बहिर्भाविता के कारण से उत्पन्न होती सामाजिक लागतों को निम्न सूत्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

सामाजिक लागत = निजी लागत – बाह्य बचत

बाह्य बचतों का निर्माण जितना अधिक होगा सामाजिक लागत उतनी कम तथा सामाजिक लाभ उतना ही अधिक हो जायेगा। बहिर्भाविता के कारण से बाह्य बचतों के प्रभावों के कारण से लागत तथा लाभ का ऑकलन कीमत तंत्र के माध्यम से नहीं हो पाता है जिससे बाजार तंत्र सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में हो जाता है।

- प्रकट अधिमान – उपभोक्ता की स्वतः अधिमान की अभिव्यक्ति पर बाजार में वस्तु की माँग
- एवं कीमत निर्धारित होती है। सार्वजनिक वस्तुओं के सन्दर्भ में यह अधिमान की अभिव्यक्ति स्वतः नहीं होती है यह अभिव्यक्ति समाज द्वारा निर्धारित की जाती है।
- अविभाज्य लाभ - सार्वजनिक वस्तुओं द्वारा उत्पन्न लाभ सार्वजनिक एवं सामूहिक होते हैं इन लाभों का विभाजन तथा प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में ऑकलन नहीं किया जा सकता है। उदाहरण हेतु समाज में प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा में व्यय का लाभ मिलता है परन्तु यह निर्धारित करना असंभव है कि किसी व्यक्ति को सुरक्षा व्यवस्था का आधा लाभ मिले और किसी को तिहाई लाभ मिले। अतः लाभ के अविभाजित होने पर कीमत निर्धारण कर पाना संभव नहीं हो पाता है।
- निशुल्क सवार समस्या – सार्वजनिक वस्तुओं के लाभों से किसी भी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जा सकता है चाहे वह उसके लाभों के लिये भुगतान करें या न करें। अतः ऐसी दशा में सार्वजनिक वस्तुओं का यह गुण उपभोक्ताओं हेतु सार्वजनिक वस्तुओं के उनमुक्त विदोहन हेतु प्रेरित करता है। यानि प्रत्येक व्यक्ति लाभ में हिस्सेदारी तो उठने हेतु प्रेरित होता है परन्तु इसके लिये वह त्याग में भागीदारी नहीं करता है। उदाहरण के तौर पर पर्यावरण प्रदूषण पर नियन्त्रण से सभी को स्वतः लाभ प्राप्त हो जाते हैं।

अतः निशुल्क सवार प्रवृत्ति व्यक्ति को प्रेरित करती है कि वह सार्वजनिक वस्तु के लिये भुगतान में हिस्सेदारी न करें। इसी समस्या का परिणाम सार्वजनिक एवं प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन तथा प्रदूषण के रूप में सामने आ रहा है। जैसे भूमिगत जल का लाभ हर व्यक्ति को बगैर इसके संरक्षण में प्रयास किये बिना उपलब्ध है जिसके कारण इसका अति एवं कुदोहन हो रहा है।

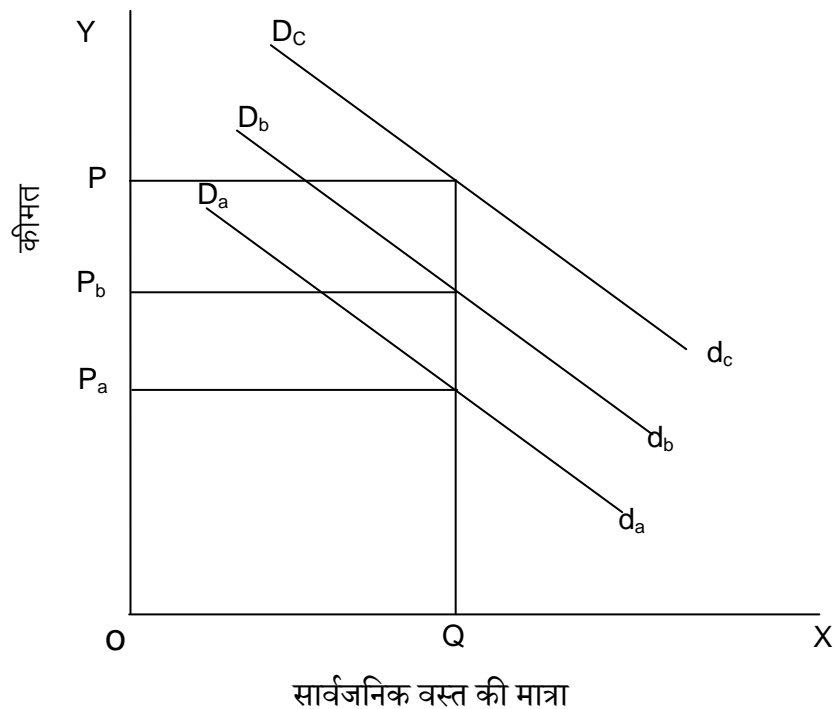
बाजार असफलता – सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में कीमत तंत्र निपुणता से कार्य नहीं कर पाता है जिसके कारण बाजार सार्वजनिक वस्तुओं का समुचित तौर पर आंबटन नहीं कर पाता है। बाजार असफलता हेतु सार्वजनिक वस्तुओं की निम्न विशेषतायें उत्तरदायी होती है -

- सार्वजनिक वस्तुओं का गैर प्रतियोगी तथा इसके लाभों का अविभाज्य होना।
- बहिर्भाविता या बाह्य बचतों के कारण सीमांत सामाजिक लागत एवं सीमांत निजी लागत में अंतर होना।
- बाजार में उपभोक्ता के अधिमान की स्वतः अभिव्यक्ति न होना।
- उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्णन के सिद्धान्त के लागू न हो पाने की दशा में यह होता है कि जो व्यक्ति सार्वजनिक वस्तु हेतु भुगतान नहीं करता है उसे उस वस्तु के लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है।

- लम्बीय योग द्वारा सामूहिक माँग वक्र का निर्धारण – सार्वजनिक वस्तु उपभोग एवं लाभ

हेतु प्रत्येक व्यक्ति के लिये समान रूप से उपलब्ध रहती है। अतः यदि दो उपभोक्ता A तथा B किसी सार्वजनिक वस्तु का उपभोग करते हैं तो

सार्वजनिक वस्तु की मात्रा = A का उपभोग = B का उपभोग चित्र संख्या 4ब में A तथा B उपभोक्ता हेतु सार्वजनिक वस्तुओं के माँग वक्र क्रमशः D_a एवं D_b हैं। दोनों उपभोक्ता के माँग वक्र उनके सीमांत लाभ वक्र के माध्यम से निर्धारित किये गये हैं। दोनों उपभोक्ता सार्वजनिक वस्तु से प्राप्त सीमांत लाभ के अनुरूप भुगतान करना चाहते हैं।



चित्र संख्या- 4 ब

उपरोक्त चित्र में जहाँ OQ मात्रा हेतु A द्वारा OPa का भुगतान किया जाता है व B द्वारा OP: का भुगतान किया जाता है। यानि कुल OQ मात्रा हेतु दोनों के द्वारा $OP = OPa + OPb$, का भुगतान किया जाता है जिसे दोनों के लम्बीय अथवा उर्ध्वाधर योग द्वारा ज्ञात किया गया है।

4.5.2 सार्वजनिक वस्तुओं की विशेषतायें - सार्वजनिक वस्तुओं हेतु उपरोक्त वर्णित नियम तथा सिद्धान्तों से सार्वजनिक वस्तुओं की निम्न विशेषतायें उभरकर सामने आती है

- सार्वजनिक वस्तुओं का प्रयोग गैर प्रतियोगी होता है।
- सार्वजनिक वस्तुओं पर वर्णन एवं उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
- सार्वजनिक वस्तुओं के अधिमानों की अभिव्यक्ति स्वतः न होकर समाज द्वारा निर्धारित की जाती है।
- सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग एवं लाभ हेतु समाज में सभी के लिये समान मात्रा में उपलब्ध रहती है।
- सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग सामूहिक तौर पर किया जाता है तथा वस्तुओं की आपूर्ति से
- सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति होती है।
- सार्वजनिक वस्तुओं द्वारा वाह्य बचतों के माध्यम से समाज हेतु लाभ निर्मित होते हैं। सार्वजनिक वस्तुओं द्वारा उत्पन्न लाभ अविभाज्य होते हैं।
- सार्वजनिक वस्तुओं के सम्बन्ध में बाजार व्यवस्था तथा कीमत तंत्र असफल रहते हैं।
- सार्वजनिक वस्तुओं की माँग विभिन्न व्यक्तिगत उपभोक्ताओं की मांगों के लम्बीय या उर्ध्वाधर योगसे प्राप्त होती है।
- सार्वजनिक वस्तुओं के लिये सीमांत सामाजिक लागत तथा सीमांत निजी लागत के मध्य अंतर आ जाता है।
- सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में निशुल्क सवार समस्या के आत्मसात् होने के कारण बाजार एवं किसी तंत्र के माध्यम से सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन परेटो इष्टतम् के अनुकूल नहीं होगा।
- सार्वजनिक वस्तुओं का आबंटन एवं व्यवस्था में सामान्यतया बाजार व्यवस्था असफल रहती है अतः
- इनकी व्यवस्था राजकोषीय एवं बजटीय नीतियों के माध्यम से की जाती है।

4.5.3 सार्वजनिक या सामाजिक वस्तुओं की व्यवस्था - सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था से तात्पर्य सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन या सेवायें प्रदान करने से नहीं है अपितु इन वस्तुओं की चयन प्रक्रिया एवं भुगतान व्यवस्था से है। जहाँ तक चयन प्रक्रिया का प्रश्न है इससे तात्पर्य यह है कि किन-किन सार्वजनिक वस्तुओं को और कितनी मात्रा में समाज को उपलब्ध करायी जायें। उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति में सार्वजनिक वस्तुओं के सम्बन्ध में बाजार तंत्र असफल रहता है। अतः सार्वजनिक वस्तुओं के सन्दर्भ में आबंटनात्मक कार्य राजकोषीय एवं बजट नीतियों के माध्यम से किया जाता है। कुल मिलाकर सार्वजनिक वस्तुओं के आबंटन के सम्बन्ध में

राजकोषीय नीति का यह उद्देश्य होता है कि सार्वजनिक संसाधनों को विभिन्न सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में किस प्रकार से आबंटित किया जाये जिससे समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके एवं समाज की कार्य कुशलता में वृद्धि हो सके। सरकार इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न मदों जैसे सुरक्षा, प्रशासन, कानून-व्यवस्था, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन आदि मदों पर बजट के माध्यम से धन का आबंटन करती है।

सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था तथा आबंटनात्मक पहल ना सिर्फ जटिल है अपित अत्याधिक महत्व का है। भारत जैसे विकासशील एवं आय की असमानता वाले देश में इसकी जटिलता तथा चुनौती दोनों ही बढ़ जाते हैं। सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था तथा आबंटन हेतु प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप भी करती है अर्थात् सरकार का उत्पादन, विनिमय वितरण एवं उपभोग आदि गतिविधियों पर सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण रहता है। इसका एक उदाहरण भारत में सार्वजनिक उपभोग की आवश्यक वस्तुओं हेतु विशेषकर निर्धन वर्गों के लिए सार्वजनिक वितरण व्यवस्था है जिसमें सरकारी संस्थायें कीमत तथा उपभोग की मात्रा आदि को नियन्त्रित रखते हैं। सरकार राजकोषीय नीति में सार्वजनिक वस्तुओं के आबंटन एवं व्यवस्था के लिये अप्रत्यक्ष तौर-तरीकों जैसे सब्सिडी, विशिष्ट कर, उपकर, फीस, लाईसेन्स आदि पर आधारित रणनीति को अपनाती है। यह समस्त रणनीति सार्वजनिक वस्तुओं की प्रकृति एवं महत्व पर निर्भर करता है। अतः सार्वजनिक वस्तुओं के आबंटन एवं व्यवस्था के लिये निम्न रणनीतियों को अपनाया जा सकता है

- बल का प्रयोग - बाजार असफलता की दशा में सरकारें विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था हेतु
- कानून के प्रयोग द्वारा अनिवार्य अंशदान हेतु लाभार्थियों को बाध्य कर सकती है।
- उत्पादन में भागीदारी – सरकार सार्वजनिक संस्थाओं के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य
- सार्वजनिक वस्तु एवं सेवाओं का उत्पादन सुनिश्चित कर सकती है। भारत में नियोजित विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया गया है।
- करारोपण – जिन वस्तुओं का प्रयोग पूर्णतया गैर प्रतियोगी है तथा जिन वस्तुओं के लिये
- उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। ऐसी दशा में सरकार सामान्य करों द्वारा इन वस्तुओं पर होने वाले व्यय की पूर्ति कर सकती हैं। इन करों में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों कर आते हैं यहाँ पर उल्लेखनीय है कि कर एक प्रकार के अनिवार्य भुगतान है जिसके एवज में करदाता को कोई भी प्रत्यक्ष लाभ नहीं प्राप्त होता है। लेकिन इन करों से प्राप्त धन को राज्य समाज कल्याण हेतु प्रयोग करता है। इस प्रकार की सार्वजनिक वस्तुओं के अन्तर्गत रक्षा व्यवस्था आती है।
- लाईसेन्स फीस एवं विशिष्ट कर - जिन वस्तुओं का प्रयोग गैर प्रतियोगी है परन्तु जहाँ पर उपभोक्ताओं को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जा सकता है वहाँ पर सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था एवं उन पर होने वाले व्यय के एवज सरकार लाईसेन्स फीस एवं विशिष्ट करों का प्रावधान कर सकती है। जैसे – वाहनो पर पथकर, पार्क में प्रवेश शुल्क, वाहनों पर सड़क कर, जलकर, भवन कर आदि।
- कोटा, प्रशासित कीमतें एवं सब्सिडी - जिन वस्तुओं का प्रयोग गैर प्रतियोगी होता है परन्तु उनमें उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त लागू होता है ऐसी वस्तुओं की व्यवस्था सार्वजनिक कल्याण को

देखते हुये सरकार आंशिक कीमत या आंशिक शुल्क वसूल करती है। भारत जैसे विकाशील देश में निर्धन वर्ग के कल्याण हेतु सरकार बहुत सी बाजार में उपलब्ध निजी वस्तुओं को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अनुसार वितरित करती है जहाँ पर सरकार कोटा कीमत दोनों पर नियन्त्रण रखती है। कोटा निर्धारित कर सरकार आवश्यक वस्तु जैसे मिट्टी के तेल हेतु गैर प्रतियोगी स्वरूप निर्धारित करती है एवं सब्सिडीकृत कीमतों पर जन साधारण को वितरित करती है।

- निजीकरण – ऐसी सार्वजनिक उपयोग की वस्तुयें जोकि प्रतियोगी तो होती है परन्तु जिनके लाभ से जन सामान्य को वंचित नहीं किया जा सकता है यानि जो सार्वजनिक वस्तुओं की भाँति समाज हेतु समान रूप से उपयोगी होती है इनके अन्तर्गत साझा प्राकृतिक संसाधन जैसे कोयला, तेल, वन, मछलियाँ आदि आती हैं। इन संसाधनों की व्यवस्था हेतु सरकारें प्रतियोगी आधार पर निलामी के माध्यम से लाईसेन्स उपलब्ध करा सकती है। लाईसेन्स फीस सामान्यतया सरकार को उन अवस्थाओं में प्राप्त होती है जबकि सरकारी अधिकारी स्वयं कोई कार्य या सेवा न करके अन्य व्यक्ति को उस कार्य को करने का अधिकार प्रदान करता है। लाईसेन्स प्रक्रिया के माध्यम से सरकार का जन कल्याण तथा पर्यावरणीय हितो को ध्यान में रखकर ऐसे क्षेत्रों का नियमन कर सकती है।
- शुल्क /फीस -सार्वजनिक हित की वर्जनीय सेवायें व वस्तुयें जो कि सार्वजनिक एवं सामान्य हित की होती है परन्तु जिनके लाभ से भुगतान न करने वालों को वंचित रखा जा सकता है यानि जिन वस्तु तथा सेवाओं में उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त लागु होता है। ऐसी वस्तु तथा सेवाओं की व्यवस्था हेतु सरकार फीस की वसूली कर सकती है। फीस उस भुगतान को कहते हैं जो सरकार द्वारा सार्वजनिक हित में प्रदान की जाने वाली प्रत्येक आवर्ती सेवा की लागत को अदा करने के लिये दिया जाता है।
- कीमत, किराया एवं क्रास सब्सिडी - ऐसी वस्तुयें जोकि निजी वस्तुओं के समान प्रतियोगी होती है तथा जिनमें उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त भी लागु होता है परन्तु जिनके सार्वजनिक महत्व तथा आर्थिक विकास में योगदान को देखते हुये उनका प्रावधान सरकार द्वारा किया जाता है। उदाहरण हेतु भारत में रेल परिवहन को सरकार जनहित में रेल मंत्रालय के माध्यम से नियमन करता है। आम जनता हेतु रेल परिवहन को सस्ते मूल्य पर सुनिश्चित करने के लिये रेल मंत्रालय ऊँचे माल भाड़े तथा उच्च वर्ग पर मंहगें किराये के माध्यम से रेल यातायात व्यवस्था को सुनिश्चित करता है। इसी प्रकार सरकार सार्वजनिक महत्व की जन उपयोगी वस्तुओं को निर्धन तथा कमजोर वर्गों के लिये बाजार मूल्य से कम पर उपलब्ध कराती है। इसके लिये सरकार द्वारा सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के माध्यम से सरकार प्रत्येक निर्धन व्यक्ति को आवश्यक वस्तुयें जैसे खाद्यान्न आदि सस्तेमूल्यों एवं निश्चित मात्रा में उपलब्ध कराती है।
- गारण्टी – बाजार असफलता की दशा में विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था हेतु योगदान करने वालों धन की सुरक्षा एवं उसकी पुर्नवापसी की गारण्टी प्रदान करती है। जिससे से सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था में योगदान करने वाले आश्वस्त हो जाते हैं।

- कोसानियन समाधान - रोनाल्ड कोसा ने सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था एवं भुगतान हेतु एक समाधान प्रस्तुत किया जो कि कोसानियन समाधान के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं से लाभ प्राप्त करने वाले समस्त लाभार्थी सार्वजनिक वस्तुओं व्यवस्था एवं भुगतान हेतु एक साझा संसाधनों का एक पूल तैयार करते हैं। जिससे सार्वजनिक वस्तुओं की विनिमेय लागत कम हो जाती है। जैसे हाउसिंग सोसाईटी के सदस्य सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था एवं भुगतान हेतु साझा प्रावधान करते हैं।
- प्रशुल्क एवं किराया -शुल्क फीस के माध्यम से सार्वजनिक वस्तु की व्यवस्था वहाँ सहज होती है जहाँ वह भुगतान कर्ता को मापनीय लाभ पहुंचाती है। वास्तव में फीस का भुगतान सरकार की ओर से की जाने वाली किसी व्यापारिक सेवा के लिये नहीं, वरन सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रशासनिक एवं न्यायिक सेवाओं हेतु किया जाता है। इन सेवाओं के लिये सरकार शुल्क के साथ-साथ अर्थ दंड का भी प्रावधान कर सकती है। तकनीकी प्रगति के कारण टेलीविजन प्रसारण, मोबाइल फोन सेवा इंटरनेट सेवा आदि ऐसी सार्वजनिक उपयोग की सेवायें हैं जिन पर उपयोग एवं लाभ के अनुसार प्रशुल्क एवं किराया वसूल किया जा सकता है। उदाहरण के लिये टेलीविजन पर सेट टाप बाक्स एवं डिकोडर के माध्यम से किसी चैनल भुगतान प्राप्त कर लेते हैं।

4.6 सार्वजनिक एवं निजी वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन

सैमुल्शन द्वारा सार्वजनिक वस्तुओं की अवधारणा का प्रतिपादन किया है। उनके द्वारा 1959 में प्रकाशित "लोक व्यय की अवधारणा के शुद्ध सिद्धान्त" लेख में सार्वजनिक वस्तुओं की दो प्रमुख विशेषतायें उजागर की गयी, यह विशेषतायें उपयोग में गैर प्रतियोगी एवं गैर वर्जनीय होता है। जहाँ पर यह दोनों विशेषतायें पूर्ण होती हैं ऐसे वस्तु को शुद्ध सार्वजनिक वस्तु कहते हैं। सैमुल्शन द्वारा पुनः सार्वजनिक वस्तुओं को परिभाषित करते हुये इनको "सामूहिक उपभोग की वस्तु" के रूप में निर्धारित किया। सार्वजनिक वस्तुओं के विपरीत विशेषताओं वाली वस्तु को निजी वस्तु के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। निजी वस्तुयें उपभोग में प्रतियोगी होती है तथा इनके ऊपर वर्जन का सिद्धान्त लागू होता है। वास्तव में पूर्णतया निजी या सार्वजनिक वस्तुयें कम ही होती हैं। अधिकांश वस्तुओं में दोनो के गुणों का समावेश होता है।

4.6.1 निजी एवं सार्वजनिक वस्तुओं में समानता - यद्यपि निजी वस्तुओं की प्रकृति, विशेषतायें एवं उनके ऊपर आरोपित होने वाले सिद्धान्त लगभग विपरीत होते हैं। परन्तु दोनों वस्तुओं में कुछ समानतायें होती हैं जो कि निम्नवत् है-

- **मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि** - सार्वजनिक एवं निजी वस्तु दोनों का उद्देश्य मानवीय आवश्यकताओं संतुष्टि का प्रयास करना है। यद्यपि दोनो में यह अन्तर है कि सार्वजनिक वस्तु सामूहिक तथा निजी वस्तु निजी रूप से संतुष्टि का प्रयास करती है।

- **अधिकतम संतुष्टि का प्रयास** – दोनों वस्तु के उपभोग से अधिकतम संतुष्टि का प्रयास किया जाता है। यद्यपि सार्वजनिक वस्तु से जहाँ सामाजिक संतुष्टि को अधिकतम किया जाता है। वहीं निजी वस्तु से व्यक्तिगत संतुष्टि को अधिकतम करने का प्रयास किया जाता है।
- **राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान** – निजी तथा सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन एवं उपभोग से रोजगार निवेश तथा कल्याण में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय तथा राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है।

4.6.2 निजी एवं सार्वजनिक वस्तुओं में अन्तर – सार्वजनिक तथा निजी वस्तुओं में निम्न प्रमुख अन्तर हैं -

- **गैर प्रतियोगी उपभोग** - सार्वजनिक वस्तु का उपभोग गैर प्रतियोगी तथा निजी वस्तु का प्रतियोगी उपभोग होता है। सार्वजनिक वस्तु के किसी व्यक्ति द्वारा उपभोग से अन्य व्यक्तियों के लाभ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जबकि निजी वस्तु के उपभोग से अन्य उपभोक्ताओं हेतु उपलब्ध वस्तु की मात्रा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- **उपभोक्ता की पृथक्ता एवं वर्जन सिद्धान्त** - सार्वजनिक वस्तु के लाभ से किसी को भी वंचित नहीं किया जा सकता है चाहे उपभोक्ता ने भुगतान किया या ना किया हो। उदाहरण हेतु रक्षा, प्रकाश स्तम्भ, स्ट्रीट लाईटिंग, शुद्ध वायु निवारण कार्यक्रम आदि के लाभ से वंचित किसी को भी नहीं किया जा सकता है। वहीं किसी वस्तु के सम्बन्ध में वर्जन के सिद्धान्त लागू होने के कारण भुगतान कर पाने की स्थिति में उपभोक्ता उपभोग से वंचित हो जाता है।
- **सामूहिक उपभोग** - सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग सामूहिक तौर पर किया जाता है जबकि निजी वस्तुओं का उपभोग निजी तौर पर किया जाता है।
- **अधिमान की अभिव्यक्ति** – निजी वस्तुओं के बारे में उपभोक्ताओं के अधिमान स्वतः ही बाजार में अभिव्यक्त हो जाते हैं। जबकि सार्वजनिक वस्तुओं के अधिमानों की अभिव्यक्ति स्वतः नहीं होती है। सार्वजनिक उद्देश्य - सार्वजनिक वस्तुओं के उद्देश्य सार्वजनिक एवं सामाजिक कल्याण तथा उपभोग की पूर्ति करना है। जबकि निजी वस्तुओं के उद्देश्य निजी कल्याण की पूर्ति तक सीमित है।
- **लाभों का मापन** – निजी वस्तुओं के उपभोग से प्रत्येक व्यक्ति को कितना लाभ हुआ है इसका ऑकलन तथा मापन संभव है। वहीं सार्वजनिक वस्तु के उपभोग से प्राप्त लाभों का मापन तथा ऑकलन करना है। इसका कारण यह भी है कि निजी वस्तुओं द्वारा प्राप्त लाभों को विभाजित किया जा सकता है परन्तु सार्वजनिक वस्तुओं के सम्बन्ध में यह लाभों को विभाजित नहीं किया जा सकता है। उदाहरण हेतु रक्षा व्यय से प्रत्येक व्यक्ति को कितना लाभ मिलता है इसका ऑकलन कर पाना संभव नहीं है।
- **बाह्य बचत एवं लाभों का निर्माण** - निजी वस्तुओं के उपभोग तथा उत्पादन से आन्तरिक लाभों का ही निर्माण होता है। जबकि बाह्य बचतों का निर्माण करती हैं जिनसे समाज के लिये
- सामूहिक तौर पर ऐसे लाभ पैदा होते जिनके लिये समाज को भुगतान नहीं करना पड़ता है।

- **बाजार असफलता** – सार्वजनिक वस्तुओं के मूल्य निर्धारण तथा उनकी व्यवस्था के सम्बन्ध में बाजार तंत्र असफल रहता है। क्योंकि सार्वजनिक वस्तु गैर प्रतियोगी एवं गैर वर्जनीय होती है तथा इनके लाभों से किसी को वंचित किया जा सकता है। निजी वस्तुओं के सम्बन्ध में कीमत एवं बाजार तंत्र निपुणता तथा पूरी क्षमता के साथ कार्य करता है।
- **निशुल्क सवार समस्या** - यह एक महत्वपूर्ण अवधारणा है जोकि सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था से जुड़ी हुयी है। सार्वजनिक वस्तुओं के लाभों से उनको वंचित नहीं किया जा सकता है जो कि इसके लिये भुगतान नहीं कहते हैं। अतः इससे सार्वजनिक वस्तुओं के लाभ में हर कोई हिस्सेदारी चाहता है परन्तु इसके लागत में भागीदारी नहीं करना चाहता है। वहीं दूसरी
- ओर बाजार व्यवस्था के कारगर तौर पर कार्य करने से सामान्य रूप से निशुल्क सवार समस्या निजी वस्तुओं की व्यवस्था में सामने नहीं आती है।
- **मॉग वक्र की अवधारणा** – निजी वस्तुओं की कुल मॉग दिये गये मूल्य पर क्षैतिज योग के द्वारा प्राप्त होती है जबकि सार्वजनिक वस्तुओं की मॉग विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा मॉगी गयी मात्राओं
- के लम्बीय योग द्वारा प्राप्त होती है।
- **वस्तुओं की व्यवस्था** - सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था अधिकांश रूप से राजकोषीय एवं बजट
- नीतियों के माध्यम से की जाती है। वहीं निजी वस्तुओं की व्यवस्था हेतु बाजार तंत्र कारगर तरह से कार्य करता है।

4.7 मेरिट वस्तुओं की अवधारणा

मेरिट वस्तुओं को उत्कृष्ट या गुण वस्तु भी कहा जाता है। मेरिट वस्तुओं अवधारणा का विकास मसर्गेव द्वारा किया गया है। मसर्गेव के अनुसार मेरिट वस्तु का निर्धारण भुगतान के आधार पर न करके आवश्यकता के आधार पर किया जाता है। मेरिट वस्तुओं में ऐसी वस्तुओं को शामिल किया जाता है जिनके उपभोग से समाज की क्षमता, कार्यकुशलता एवं समाज की आधार भूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। मेरिट वस्तुओं के अन्तर्गत शिक्षा व स्वास्थ्य हेतु दी जाने वाली सहायता, स्कूलों में भोजन की व्यवस्था, खाद्यन्न तथा पोषण हेतु सहायता, रोजगार आदि शामिल किये जाते हैं।

मेरिट वस्तु की व्यवस्था सरकार द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु की जाती है कि यदि इन सुविधाओं को पूर्णतः निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया जाये तो समाज में अनेक व्यक्ति अपनी क्षमता में आभाव के कारण इन आवश्यक सुविधाओं से वंचित रह जायेंगे। मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति समुचित न होने से समाज पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। मेरिट वस्तुयें प्रतियोगी हो भी सकती हैं और नहीं भी पड़ सकता है। मेरिट वस्तु प्रतियोगी हो भी सकती हैं और नहीं भी परन्तु इनमें वर्णन का सिद्धान्त लागू होता है। मेरिट वस्तुओं के अन्तर्गत उन वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रावधान सरकार करती है जिनके बारे में सरकार यह अवधारणा बनाती है कि उनका उपभोग अपेक्षित रूप से नहीं किया जा

रहा है तथा समाज के हित इन वस्तु तथा सेवाओं का उपभोग बढ़ाने हेतु इन्हें राजकीय सहायता प्रदान किये जाने की आवश्यकता है।

मसग्रेव के अनुसार मेरिट वस्तुयें ऐसी वस्तुयें हैं जिनकी व्यवस्था सार्वजनिक वस्तु के रूप में की जाती है। परन्तु इनकी व्यवस्था करते समय उपभोक्ताओं के अधिमान को ध्यान में नहीं रखा जाता है। मेरिट वस्तुओं में सार्वजनिक वस्तुओं के समान कुछ गुण तो होते हैं पर इनमें वर्जन का सिद्धान्त भी लागू होता है।

4.7.1 मेरिट वस्तुओं की आधारभूत अवधारणायें - मेरिट वस्तुओं की महत्वपूर्ण अवधारणाओं के विकास में मसग्रेव का मुख्य योगदान है। मेरिट वस्तुओं की महत्वपूर्ण अवधारणायें निम्न हैं

- **वाह्यताओं का निर्माण** – मेरिट वस्तुओं का जब उपभोग किया जाता है तो वह धनात्मक वाह्यताओं का निर्माण करती है जिनसे समाज हेतु वाह्य लाभों का निर्माण होता है जिन लाभों के एवज में उपभोक्ताओं को कोई भी भुगतान नहीं करना होता है।
- **आरोपित अधिमान** – मेरिट वस्तुओं की पूर्ति उपभोक्ताओं के अधिमान में हस्तक्षेप पर आधारित होती है। इन वस्तुओं की व्यवस्था करते समय उपभोक्ताओं के अधिमान को ध्यान में लिया नहीं जाता है एवं सरकार इनका अधिमान आरोपित करती है। जैसे वाहन के दुर्घटना बीमा हेतु सरकार द्वारा नियम उपभोक्ताओं पर लगाना।
- **लागत-लाभ में अन्तर** – वाह्यताओं के कारण मेरिट वस्तुओं के सामाजिक लाभ निजी लाभों से अधिक हो जाते हैं। यानि सीमांत सामाजिक लागत इन वस्तुओं की सीमांत निजी लागत से कम हो जाती है।
- **अपूर्ण सूचना एवं दूरदृष्टि कोण का आभाव** - व्यक्तिगत उपभोक्ता अपने तात्कालिक हितों की आपूर्ति पर अधिक जोर देता है एवं दीर्घ कालिक एवं व्यापक हितों की पूर्ति में वह दूर दृष्टिकोण एवं बेहतर तथा पूर्ण सूचना के आभाव में उपभोक्ता मेरिट वस्तुओं का समुचित उपभोग नहीं कर पाता है।
- **निजी क्षेत्र एवं बाजार व्यवस्था का सफल न होना** – मेरिट वस्तुओं को सिर्फ निजी क्षेत्र एवं बाजार व्यवस्था के ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता है। उपभोक्ताओं द्वारा इन वस्तुओं के प्रति अधिमान व्यक्त न कर पाने तथा क्रय करने की क्षमता एवं योग्यता के आभाव में इन आवश्यक वस्तुओं के उपभोग से वंचित रहने की संभावना रह जाती है। **बजट द्वारा प्रावधान** - सरकार समाज के विशिष्ट वर्गों के कल्याण में वृद्धि करने के लिये इन वस्तुओं का उपभोग बढ़ाने तथा समचित कीमतों पर प्रत्येक उपभोक्ता को उपलब्ध कराने के लिये मेरिट वस्तुओं का बजट द्वारा प्रावधान करती है। मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था के सन्दर्भ में यह हमेशा आवश्यक नहीं है कि इन वस्तुओं की आपूर्ति सार्वजनिक व्यवस्था के अनुसार ही करायी जाये परन्तु यह अवश्य है कि इन वस्तुओं की आपूर्ति को सार्वजनिक व्यवस्था पूरक या बढ़ावा दिया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में यह भी महत्वपूर्ण है कि मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति सामान्य रियायती आधार पर अथवा आर्थिक उपादन) सहायता (के आधार पर की जाती है।

- **वर्गों हेतु आपूर्ति** - मेरिट वस्तुओं में एक गुण यह पाया जाता है कि इनकी आपूर्ति सार्वजनिक वस्तुओं की भाँति समस्त समाज हेतु न करते हुये समाज के एक विशेष वर्गों हेतु की जाती है। जैसे महिलाओं के स्वास्थ्य हेतु राजकीय सहायता या निर्धन वर्गों के लिये खाद्यन्न कूपन का वितरण करना आदि प्रमुख हैं।
- **4.7.2 सरकारी हस्तक्षेप** - मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति सामान्यतया सरकार द्वारा बजटीय प्रावधानों के अनुसार की जाती है। सरकार द्वारा इनकी बजट से आपूर्ति तथा उपभोक्ताओं पर अधिमान आरोपित करने के लिये निम्न प्रमुख कारण हैं-
 - इन वस्तुओं के उपभोग में वृद्धि करना जिससे समाज हेतु धनात्मक वाह्यताओं एवं बचतों का निर्माण किया जा सके जैसे बच्चों का सार्वजनिक टीकाकरण से संक्रामक बीमारियों से समस्त बच्चों की सुरक्षा हो सके।
 - उपभोक्ताओं के दूरदृष्टि कोण एवं सूचना के आभावों तथा अपूर्णता को दूर करने के लिये।
 - समता के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु जिससे इन वस्तुओं का उपभोग मात्र भुगतान की योग्यता तथा क्षमता पर आधारित न रह जायें।
 - बाजार तंत्र तथा निजी क्षेत्र के द्वारा इन वस्तुओं की आपूर्ति हेतु संवेदनशील एवं पूर्ण रूप से

सक्षम न हो पाना। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा अनुसार सरकार के सामाजिक राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इन वस्तुओं की आपूर्ति सरकार बजट के माध्यम से करती है। मेरिट वस्तु का एक बेहतर उदाहरण शिक्षा पर व्यय है। यह एक दीर्घ कालिक प्रकृति का होता है तथा समाज के वर्तमान एवं भविष्य हेतु यह लाभों का निर्माण करता है। इसकी आपूर्ति यदि बाजार एवं निजी क्षेत्रों के माध्यम से समतापूर्वक नहीं की जा सकती है तथा बहुत बड़े वर्ग तथा निर्धन प्रतिभागी बालकों का शिक्षा से वंचित रह जाने की सम्भावना बनी रह सकती है। समाज के निर्धन तथा रह जाने की सम्भावना बनी रह सकती है। समाज के निर्धन तथा कमजोर तबका शिक्षा को प्राथमिकता ज्ञान सूचना एवं दृष्टि कोण के आभाव बजट के माध्यम से करती है। मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था हेतु सरकार आंशिक अंशदान, विशिष्ट कर, उपकर एवं राज सहायता (सब्सिडी) का प्रावधान कर सकती है। यह सरकार प्रत्यक्ष सब्सिडी या अप्रत्यक्ष सब्सिडी के माध्यम से कर सकती है।

4.8 निजी, सार्वजनिक वस्तुओं तथा मेरिट वस्तुओं में तुलनात्मक अध्ययन

इन वस्तुओं के मध्य तुलनात्मक अध्ययन इन वस्तुओं के उद्देश्यों, प्रकृति, प्रावधानों को ध्यान में रखते हुये किया जा सकता है।

4.8.1 निजी तथा मेरिट वस्तुओं में समानता – निजी तथा मेरिट वस्तुओं में निम्न समानता उभर कर सामने आती हैं -

- उद्देश्यों में समानता - मेरिट तथा निजी वस्तुओं दोनों का उद्देश्य उपभोक्ताओं की अधिकतम संतुष्टि को प्राप्त करना है।

- राष्ट्रीय आय में वृद्धि – मेरिट तथा निजी वस्तुओं के उत्पादन तथा उपभोग से समाज में आय, निवेश तथा उत्पादन में वृद्धि होती है।
- वर्जन सिद्धान्त - मेरिट तथा निजी वस्तुओं में अधिकांश रूप से वर्जन का सिद्धान्त आरोपित होता है। अतः इन वस्तुओं के लाभ प्राप्ति हेतु भुगतान की योग्यता रखना आवश्यक है।
- प्रतियोगी उपभोग - जहाँ तक निजी वस्तु का प्रश्न है इनका उपभोग हमेशा से प्रतियोगी होता है। परन्तु मेरिट वस्तुओं का उपभोग निजी वस्तुओं की तुलना में कम प्रतियोगी होता है या एक सीमा के पश्चात ही प्रतियोगी होता है।

4.8.2 निजी तथा मेरिट वस्तुओं में अन्तर - मेरिट तथा निजी वस्तुओं में के प्रावधानों, उद्देश्यों, प्रकृति में निम्न महत्वपूर्ण अंतर उभर कर सामने आते हैं

- **अधिमान की प्रकृति** - निजी वस्तुओं में जहाँ अधिमान स्वतः ही अभिव्यक्त हो जाता है। मेरिट वस्तुओं का अधिमान उपभोक्ताओं पर सरकार द्वारा आरोपित किया जाता है। इन वस्तुओं की आपूर्ति उपभोक्ताओं के अधिमान में हस्तक्षेप करके की जाती है।
- **बाह्यताओं का निर्माण** - मेरिट वस्तुओं के द्वारा समाज के लिये धनात्मक बाह्यताओं के निर्माण से बाह्य बचत एवं लाभ पैदा होते हैं। जिन्हें सभी के द्वारा समान रूप से उपभोग किया जाता है। निजी वस्तुओं के लाभ आन्तरिक एवं व्यक्ति विशेष तक सीमित रहते हैं।
- **लाभ-लागतों में अन्तर** – निजी वस्तुओं के लिये सामाजिक एवं निजी लाभ एवं लागतों में कोई भी अन्तर नहीं होता है। वहीं मेरिट वस्तुओं के लिये सीमांत सामाजिक लागतों की मात्रा सीमांत निजी लागतों से कम होने पर सामाजिक लाभों की मात्रा निजी लाभों से अधिक होती है।
- **वस्तुओं की व्यवस्था** - निजी वस्तुओं की सामान्यतया व्यवस्था बाजार तथा निजी क्षेत्र द्वारा की जाती है। वहीं मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था समाज के हितों को देखते हुये सामान्यतया सरकार द्वारा की जाती है।
- **अवसर लागत** – निजी वस्तुओं की तुलना में मेरिट वस्तुओं की अवसर लागत सामान्यतया ऊँची होती है।
- **दीर्घकालिक दृष्टिकोण** – मेरिट वस्तुओं से समाज की वर्तमान एवं भविष्य के लाभों की पूर्ति होती है। समाज तथा राष्ट्र के बेहतर भविष्य निर्माण तथा भावी आर्थिक सामाजिक विकास को गति देने के उद्देश्य से मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति की जाती है। निजी वस्तुयें दूसरी ओर तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित होती है।
- **उद्देश्य** - मेरिट वस्तुओं से समाज के सामान्य हितों की पूर्ति के साथ समता, कल्याण एवं समाज की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। निजी वस्तुयें द्वारा निजी संतुष्टि एवं व्यक्तिगत हितों की आपूर्ति होती है।

- **बाजार एवं निजी क्षेत्र** - मेरिट वस्तुओं का प्रावधान बाजार एवं निजी क्षेत्र समता तथा सामाजिक कल्याण के अनुरूप समुचित तौर पर नहीं कर पाता है। यदि मेरिट वस्तुओं को पूर्णतः निजी क्षेत्र तथा बाजार के हवाले करें तो भुगतान की योग्यता न रखने वाले इन वस्तुओं के उपभोग से वंचित रह जायेंगे या आपेक्षित मात्रा में उपभोग नहीं कर पायेंगे। मेरिट वस्तु तथा निजी वस्तु के मध्य यह तुलनात्मक अंतर चित्र संख्या 4 से स्पष्ट हो जाता है। जहाँ MPB वक्र मेरिट वस्तु उपभोग से प्राप्त निजी सीमांत लाभ है तथा MSB मेरिट वस्तु के उपभोग से प्राप्त सीमांत सामाजिक लाभ है। SS' आपूर्ति वक्र है जो कि सीमांत सामाजिक लागत (MSC) द्वारा निर्धारित हो रहा है। यदि यह वस्तु निजी वस्तु होगी तो बाजार द्वारा OP कीमत OQ सम्भव होगा।

मेरिट वस्तु हेतु सामाजिक रूप से वांछनीय समाधान उस बिन्दु पर होगा। जहाँ पर $MSC = MSB$ की शर्त सन्तुष्ट होगी। अतः सामाजिक रूप से वांछनीय उत्पादन OQ1 होगा। मेरिट वस्तु का उत्पादन बाजार तंत्र को सौपने पर उत्पादन की मात्रा सामाजिक वांछनीयता के स्तर से गिर कर OQ आ जायेगी जिसके लिये उपभोक्ता से अधिकतम सम्भावित कीमत OP2 वसूली जा सकती है। ऐसी दशा में कल्याण में अधिकतम सम्भावित हानि ABC त्रिभुज के अनुरूप होगी। अतः वस्तु के मेरिट वस्तु के उपभोग को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार बजट के माध्यम से सहायता प्रदान करती है जिससे उपभोक्ताओं के कल्याण में वृद्धि होती है।

4.8.3 मेरिट वस्तुओं तथा सार्वजनिक वस्तुओं में समानता - मेरिट तथा सार्वजनिक वस्तुओं में निम्न महत्वपूर्ण समनता हैं -

- **उद्देश्य** - सार्वजनिक तथा मेरिट वस्तुओं से सामाजिक एवं सामान्य आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। दोनों की आपूर्ति तथा उत्पादन का उद्देश्य सामाजिक कल्याण से जुड़ा हुआ है। यानि सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना दोनों वस्तुओं का उद्देश्य है।
- **बाह्यता एवं बचत** - सार्वजनिक तथा मेरिट वस्तुओं से बाह्य बचतों का निर्माण होता है। यह वस्तुयें समाज के लिये इस प्रकार से लाभों को उत्पन्न करती है कि समाज को इसके लिये भुगतान नहीं करना पड़ता है।
- **निजी क्षेत्र एवं व्यवस्था** - सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था में सामान्यतया बाजार तंत्र एवं निजी क्षेत्र समुचित तौर पर योगदान नहीं कर पाते हैं। जहाँ सार्वजनिक वस्तुओं के लिये बाजार तंत्र असफल रहता है। वहीं मेरिट वस्तुओं का बाजार तंत्र तथा निजी क्षेत्र द्वारा आधी-अधूरी आपूर्ति की जाती है जिससे उपभोक्ताओं के कल्याण में हानि होती है।
- **सरकारी हस्तक्षेप** - सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति सामान्यतया सरकार द्वारा बजटीय प्रावधानों के अनुसार की जाती है। जैसे रक्षा (सार्वजनिक वस्तु) एवं शिक्षा (मेरिट वस्तु) का प्रावधान सरकार बजट के माध्यम से ही करती है।

4.8.4 मेरिट वस्तुओं तथा सार्वजनिक वस्तुओं में असमानता - सामान्यतया मेरिट तथा सार्वजनिक वस्तुओं में अक्सर समनता की स्थिति का भ्रम होता है। ऐसा इसलिए होता है कि मेरिट वस्तुयें जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य सार्वजनिक हितों से सम्बन्धित होते हैं तथा मेरिट वस्तुओं का प्रावधान सार्वजनिक वस्तुओं की तरह बाजार पर

आधारित न होकर सरकार द्वारा किया जाता है। सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं में असमानता को निम्न मानकों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है

- **गैर प्रतियोगी उपभोग** - सार्वजनिक वस्तुओं के उपभोग एक व्यक्ति द्वारा किये जाने पर अन्य व्यक्तियों के लाभों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यानि सार्वजनिक वस्तुओं के उपभोग गैर प्रतियोगी होते हैं। वहीं मेरिट वस्तुओं का उपभोग सार्वजनिक वस्तुओं की तुलना में प्रतियोगी होता है या एक सीमा के बाद प्रतियोगी हो जाता है।
- **अधिमान** – मेरिट वस्तुओं के अधिमान समाज पर सरकार द्वारा आरोपित किये जाते हैं। जबकि सार्वजनिक वस्तुओं के सन्दर्भ में अधिमान की अभिव्यक्ति सामूहिक तौर पर होती है।
- **वस्तु व्यवस्था का उद्देश्य** - मेरिट वस्तुओं में एक विशिष्ट गुण यह होता है कि इनकी व्यवस्था समाज के एक वर्ग विशेष के लिये की जाती है। जबकि सार्वजनिक वस्तुओं की विशेषता समस्त समाज हेतु की जाती है।
- **वस्तुओं की प्रकृति** – मेरिट वस्तुओं में सार्वजनिक तथा निजी वस्तुओं दोनों की प्रकृति मिली जुली हो सकती है। जबकि शुद्ध सार्वजनिक वस्तुओं में अपनी मौलिक प्रकृति होती है।
- **व्यय व्यवस्था** - सार्वजनिक वस्तुओं पर व्यय हेतु सामान्यतया सरकार सामान्य करों का सहारा लेती है। वहीं मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था हेतु सरकार आंशिक अंशदान, विशिष्ट कर एवं राज सहायता) सब्सिडी (का प्रावधान कर सकती है। यह सरकार प्रत्यक्ष सब्सिडी या अप्रत्यक्ष सब्सिडी के माध्यम से कर सकती है।

4.9 डिमेरिट या हानिकारक वस्तुयें

मेरिट वस्तुओं की अवधारणा को और अधिक स्पष्ट करने के लिये डिमेरिट या हानिकारक वस्तुओं का विश्लेषण आवश्यक होता है। डिमेरिट वस्तुयें की प्रकृति तथा अवधारणायें मेरिट वस्तुओं के विपरीत होती हैं। डिमेरिट वस्तुओं में उन वस्तुओं को शामिल किया जाता है। जो कि सामाजिक रूप से हानिकारक एवं आवांछनीय होती हैं तथा जो बाजार तंत्र द्वारा अत्याधिक एवं अति मात्रा में उत्पादित की जाती हैं। इन वस्तुओं के अन्तर्गत सिगरेट, तम्बाकू, गुटखा, शराब, ड्रग्स, अश्लील सिनेमा आदि को शामिल किया जा सकता है। डिमेरिट वस्तुओं की मुख्य विशेषतायें निम्नवत हैं-

- **बहिर्भाविता एवं बाह्य हानि** - डिमेरिट वस्तुओं के द्वारा ऋणात्मक बहिर्भाविता एवं बाह्य हानिसमाज हेतु निर्मित होती है। यानि इन वस्तुओं से प्रत्यक्ष तौर पर सेवन करने वाले उपभोक्ता के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों को भी नुकसान उठाना पड़ता है चाहे वह इनके लिये उत्तरदायी हो या न हो। जैसे सिगरेट के धुये से पीने वाले के साथ-साथ अन्य को भी नुकसान उठाना पड़ता है।
- **हानि-लागत में अंतर** – डिमेरिट वस्तुओं के सम्बन्ध में सीमांत सामाजिक लागत की मात्रा सीमांत निजी लागत से अधिक होती है। ऋणात्मक बाह्यताओं के कारण सामाजिक हानि की मात्रा निजी लागत से अधिक होती है। ऋणात्मक बाह्यताओं के कारण से समाज को ऐसी हानि वहन करनी पड़ती है जिसके लिये समाज उत्तरदायी

नहीं होता है। वहीं निजी लागत में इस हानि का समावेश बाजार तंत्र नहीं कर पाता है। जिसके कारण से सामाजिक हानि की दशायें उत्पन्न करने वाले को अपने कृत्य सुधार करने की प्रेरणा नहीं मिल पाती है। जैसे औद्योगिक इकाईयों उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान किये गये पर्यावरण प्रदूषण की हानि समाज को भुगतनी पड़ती है एवं जिम्मेदार औद्योगिक इकाई को बाजार तंत्र इस हानि का समावेश अपनी निजी लागत में समावेशित करने हेतु बाध्य नहीं कर पाता है।

- **सामाजिक एवं निजी लाभ में अन्तर** - ऋणात्मक बाह्यताओं के कारण से सीमांत निजी लाभ की मात्रा सीमांत सामाजिक लाभ से अधिक हो जाती है। जिसके कारण सामाजिक कल्याण की हानि होती है।

- **अतिउत्पादन** – चूंकि हानिकारक वस्तुओं द्वारा निजी लाभ अधिक तथा सामाजिक लाभ कम होते हैं एवं निजी लागतों में हानियों का समावेश नहीं होता है। इसलिये बाजार ऐसी वस्तुओं का अति उत्पादन का प्रेरित होता है।

चित्र संख्या 4 द में हानिकारक वस्तु द्वारा उत्पन्न सीमांत सामाजिक लाभ को MSB वक्र तथा सीमांत निजी लाभ को MPB वक्र द्वारा निरूपित किया गया है। आपूर्ति वक्र SS' को सीमांत सामाजिक लागत द्वारा निर्धारित किया गया है। अधिकतम सामाजिक कल्याण हेतु जहाँ पर MSC = MSB के होगा यानि OQ सामाजिक रूप से वांछनीय उत्पादन है। परन्तु बाजार उत्पादन उस बिन्दु पर करेगा जहाँ पर MSC = MPB के हो जायेगा। अतः बाजार द्वारा सम्भावित उत्पादन OQ1 अति उत्पादन होगा तथा त्रिभुज ABC हानिकारक वस्तु के उपभोग से सामाजिक कल्याण को होने वाली अधिकतम संभावित हानि होगी।

- सरकार द्वारा नियमन – डिमेरिट वस्तुओं के उत्पादन को नियन्त्रित करने हेतु तथा समाज में इन वस्तुओं के उपभोग को हतोत्साहित करने हेतु सरकार निम्न रणनीति का प्रयोग करती है-

- इन वस्तुओं के उत्पादन एवं प्रयोग हेतु सीमित पैमाने पर लाईसेन्स जारी कर सकती है।
- इन वस्तुओं पर ऊँचे कर लगाकर इनका प्रयोग को हतोत्साहित कर सकती है।
- हानिकारक वस्तुओं के प्रयोग को विशिष्ट वर्ग हेतु वर्जित कर सकती है।
- हानिकारक वस्तुओं के अनावश्यक उत्पादन एवं प्रयोग पर आर्थिक दंड का प्रावधान कर सकती है।
- हानिकारक वस्तुओं के उत्पादन तथा उपभोग को कानूनन वर्जित कर सकती है।

4.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सार्वजनिक वस्तु की अवधारण किस अर्थशास्त्री द्वारा प्रतिपादित की गयी है?
2. मेरिट वस्तुओं की अवधारणा किस अर्थशास्त्री द्वारा प्रतिपादित की गयी है?
3. किसी उपभोक्ता द्वारा सार्वजनिक वस्तु के उपभोग करने पर दूसरे उपभोक्ता के लाभ पर जब कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता हो तो सार्वजनिक वस्तु की ऐसी विशेषता को क्या कहा जाता है?
4. सार्वजनिक वस्तु के लाभों से किसी भी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जा सकता है। सार्वजनिक वस्तु की यह विशेषता किस सिद्धान्त का परिणाम होती है?

5. मेरिट वस्तुओं का अधिमान किसके द्वारा उपभोक्ताओं पर आरोपित होता है?
6. रक्षा एवं गली का प्रकाश किस प्रकार की वस्तुओं का उदाहरण है?
7. शिक्षा किस प्रकार की वस्तुओं का उदाहरण है?
8. यदि मेरिट वस्तुओं को बाजार तथा निजी क्षेत्र के माध्यम से उत्पादित तथा वितरित किया जाये तो उपभोक्ताओं के उपभोग पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
9. बाजार व्यवस्था सार्वजनिक वस्तुओं के आबंटन किस प्रकार से कार्य करती है?
10. डिमेरिट वस्तुओं का बाजार द्वारा किस मात्रा में उत्पादन किया जाता है?
11. सामाजिक लागतों का स्तर सार्वजनिक वस्तुओं के सन्दर्भ निजी लागतों की तुलना में किस स्तर पर होती है?
12. निजी वस्तुओं के अधिमान की अभिव्यक्ति बाजार में किस प्रकार से होती है?
13. निजी वस्तुओं की दो प्रमुख विशेषतायें कौन सी हैं?
14. सार्वजनिक वस्तुओं का मॉग वक्र व्यक्तिगत उपभोक्ताओं के मॉग वक्रों द्वारा किस प्रकार से निर्धारित होता है?
15. सरकार किन वस्तुओं का उपभोग समाज में वृद्धि करने हेतु सहायता प्रदान करती है?

4.10 सारांश (Summary)

लोक वित्त की अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों के विकास में सदैव से ही सारी बहस राज्य तथा बाजार की भूमिकाओं के ही मध्य होती आयी है। निजी, सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं की प्रकृति, उद्देश्य तथा इनकी व्यवस्था में अंतर सरकार एवं बाजार की ही भूमिकाओं के माध्यम से निर्धारित होते हैं।

आर्थिक एवं तकनीकी विकास से जहाँ एक ओर सामाजिक एवं निजी आवश्यकताओं में परिवर्तन हुआ है वहीं दूसरी ओर इन वस्तुओं की प्रकृति तथा महत्व में भी सापेक्षिक अन्तर आया है। तकनीकी विकास, वैश्वीकरण तथा उदारीकरण की प्रक्रिया ने बाजार की भूमिका को आज प्रभावी बना दिया है। ऐसे समय में भी सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं का महत्व और बढ़ गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सार्वजनिक वस्तुओं से तात्पर्य सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तु नहीं है अपितु ऐसी वस्तु जो गैर प्रतियोगी, गैर वर्जनीय तथा सार्वजनिक एवं सामाजिक हितों की पूर्ति करने वाली है।

निजी, मेरिट तथा सार्वजनिक वस्तुओं के सन्दर्भ में अवधारणाओं, सिद्धान्तों तथा विशेषताओं के अध्ययन से निष्कर्ष तथा सामाजिक कल्याण की पूर्ति हेतु इन तीनों प्रकार की वस्तुओं की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक वस्तुओं तथा मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था तथा आबंटनात्मक पहलू ना सिर्फ जटिल है अपितु अत्याधिक महत्व का है। भारत जैसे विकासशील एवं आय की असमानता वाले देश में इसकी जटिलता तथा चुनौती दोनों ही बढ़ जाते हैं। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कारगर बजटीय नीति की आवश्यकता है। 4.11 शब्दावली लाईसेन्स प्रणाली - अर्थ व्यवस्था में विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियों के नियमन तथा नियन्त्रण हेतु इस प्रणाली को अपनाया जाता है। जैसे भारत में औद्योगिक गतिविधियों के नियमन हेतु औद्योगिक लाईसेन्स की प्रणाली को अपनाया गया है। विशेष कर निर्धारण - विशेष कर निर्धारण एक ऐसा अनिवार्य अंशदान है जो प्राप्त होने वाले विशेष लाभ के अनुपात में लगाया जाता है। क्रॉस सब्सिडी सहायता - एक ही सेवा या वस्तु को

सरकार निर्धन वर्गों के कल्याण या निजी विशिष्ट उद्देश्य के तौर पर सस्ते में उपलब्ध कराती है। यह प्रावधान सरकार अन्य उपभोक्ताओं को उसी वस्तु को अधिक कीमत पर उपलब्ध कराती है। आरोपित अधिमान – जब सरकार उपभोक्ताओं को ऊपर विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किसी वस्तु विशेष का उपभोग में वृद्धि करने हेतु अधिमान को थोपकर आरोपित करती है तो उसे आरोपित अधिमान कहा जाता है। अवसर लागत - किसी सीमित एवं अनेक वैकल्पिक प्रयोग में आने वाले साधन की अवसर लागत वह उत्पादन या लाभ का त्याग है जो किसी विशेष प्रयोजन की बजाय दूसरे श्रेष्ठतम् वैकल्पिक प्रयोग द्वारा प्राप्त हो सकता है। प्रत्यक्ष सब्सिडी - सरकार द्वारा जब उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं को सीधे बजट के माध्यम से सहायता प्रदान करती है तो उसे प्रत्यक्ष सब्सिडी के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। अप्रत्यक्ष सब्सिडी - जब सरकार उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों को सहायता बजट के माध्यम से सीधे तौर पर न करके अन्य माध्यमों से जारी करती है तो ऐसी सहायता अप्रत्यक्ष सब्सिडी के अन्तर्गत आती है। आर्थिक कल्याण - आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का वह भाग है। जिसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मुडा के मापदण्ड से सम्बन्धित किया जा सकता है। सामाजिक कल्याण – वस्तु तथा सेवाओं के उपभोग से मनुष्य को संतुष्टि प्राप्ति होती जिस पर मनुष्य का कल्याण आधारित होता है। अतः समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों की संतुष्टि के योग को सामाजिक कल्याण कहते हैं। पेरैटो के अनुसार सामाजिक कल्याण तब होता है जबकि सामाजिक कल्याण में वृद्धि इस प्रकार से होती हो कि समाज के किसी भी व्यक्ति के कल्याण में कमी न हो

4.11 शब्दावली (Glossary)

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

1. सैमुल्शन
2. मसग्रेव
3. गैर प्रतियोगी उपभोग
4. उपभोग में गैर वर्जनीय
5. सरकार
6. सार्वजनिक वस्तु
7. मेरिट वस्तु
8. नकारात्मक
9. असफलता से
10. अति मात्राओं में
11. कम स्तर पर
12. स्वतः
13. उपभोग प्रतियोगी एवं वर्जनीय होना
14. लम्बीय योग से
15. मेरिट वस्तुओं

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- सिंघई, जी 0सी0, मिश्रा, जे 0पी0, "अर्थशास्त्र' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स(2012) , आगरा ।
- त्यागी, बी 0पी0, "लोकवित्त' जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी(2004) , मेरठ ।
- Basu Kaushik. The Oxford companion to Economics in India, Oxford University press ((2007, New Delhi.
- Ahuja, H. L., Advanced Economics Theory Microeconomic Analysis, S. Chand & CompanyLtd.((2004,NewDelhi.

4.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

4.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. निजी वस्तुओं तथा सार्वजनिक वस्तुओं की मुख्य विशेषतायें समझाते हुये दोनों वस्तुओं में अंतरों को स्पष्ट कीजियें?
2. सार्वजनिक वस्तुओं के उदाहरण प्रस्तुत करते हुये इन वस्तु की व्यवस्था पर चर्चा कीजियें?
3. मेरिट वस्तुओं की अवधारणा स्पष्ट करते हुये इनके महत्व पर टिप्पणी कीजियें?
4. सार्वजनिक वस्तुओं तथा मेरिट वस्तुओं में तुलनात्मक विवेचना कीजियें?
5. मेरिट वस्तुओं के प्रावधान करने के लिये सरकारी हस्तक्षेप का औचित्य एवं सार्थकता स्पष्ट कीजियें?

इकाई 5 लोक व्यय उद्देश्य – आवंटन, वितरण और स्थिरीकरण (Public Expenditure: Objectives, Allocation, Distribution and Stabilization)

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 लोक व्यय उद्देश्य
 - 5.3.1 लोक व्यय के आवंटन सम्बन्धी उद्देश्य
 - 5.3.2 लोक व्यय के वितरण उद्देश्य
- 5.4 लोक व्यय द्वारा स्थिरीकरण का उद्देश्य
- 5.5 लोक व्यय के उद्देश्यनिर्धारण की समस्या
- 5.6 अभ्यास प्रश्न
- 5.7 सारांश
- 5.8 शब्दावली
- 5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

खण्ड दो लोक व्यय की यह पाँचवीं इकाई है जो लोक व्यय के उद्देश्यों को स्पष्ट करती है जिसमें लोक व्यय के आवंटन, वितरण तथा स्थिरीकरण सम्बन्धी उद्देश्यों को शामिल किया गया है।

लोक व्यय के आवंटन उद्देश्यों से हमारा तात्पर्य लोक व्यय की विभिन्न मदों पर व्यय की जाने वाली राशि से है जिसके द्वारा व्यक्तिगत कल्याण के स्थान पर सामाजिक कल्याण को अधिकतम किये जाने का प्रयास किया जाता है। जबकि वितरण के अन्तर्गत लोक व्यय से प्राप्त कल्याण के केन्द्रीयकरण के स्थान पर कल्याण के विकेन्द्रीकरण के द्वारा असमानताओं को कम करने का लक्ष्य तय किया जाता है। विकसित तथा विकासशील देशों के सामने आर्थिक स्थिरीकरण की समस्या समय - समय पर उपस्थित होती रही है जिसके समाधान के लिए लोक व्यय को एक उपकरण के रूप में अपनाया जाता रहा है। लोक व्यय के द्वारा अर्थव्यवस्था को एक विकासात्मक मार्ग पर चलने के लिए प्रयास किये जाते हैं। अतः लोक व्यय के द्वारा आर्थिक विकास की दोनों ही अवस्थाओं को नियंत्रित करने के कार्य का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है।

प्रस्तुत इकाई में लोक व्यय के उद्देश्यों का अध्ययन अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के सम्बन्ध में करेंगे लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि इन उद्देश्यों की पूर्ति पूर्णरूप से की जा सके। उद्देश्यों के निर्धारण एवं उद्देश्यों की प्राप्ति में अन्तर अर्थव्यवस्था की प्रकृति तथा लोक सत्ताओं के निर्णयों पर निर्भर करता है।

5.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई लोक व्यय के उद्देश्य, आवंटन, वितरण और स्थिरीकरण के अन्तर्गत आप भली भाँति समझ सकेंगे कि-

- ✓ लोक व्यय के उद्देश्यों का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है तथा ये उद्देश्यों किन तत्वों द्वारा प्रभावित होते हैं?
- ✓ लोक व्यय के द्वारा आवंटन सम्बन्धी उद्देश्यों की क्या स्थिति है?
- ✓ लोक व्यय के द्वारा अर्थव्यवस्था में सामाजिक कल्याण के विकेन्द्रीकरण के द्वारा वितरण को किस प्रकार निर्धारित किया जाता है?
- ✓ आर्थिक स्थिरीकरण को प्राप्त करने में लोक व्यय की क्या भूमिका होती है?
- ✓ आप समझ सकेंगे कि लोक व्यय के उद्देश्यों का निर्धारण करते समय कौन कौन सी समस्याएं सामने आती हैं जिससे लोक व्यय का उद्देश्य किस प्रकार परिवर्तित होता है?

5.3 लोक व्यय के उद्देश्य

किसी भी देश की सरकार जिस उद्देश्य को ध्यान में रखकर लोक व्यय करती है वह उद्देश्य उस उद्देश्य से सदैव अलग पाया जाता है जिसे लेकर निजी व्यक्तियों एवं संस्थाओं द्वारा व्यय किया जाता है। आपको शायद इस तथ्य से ज्ञात हो कि लोक सत्ताओं के व्यय तथा निजी व्यक्तियों के व्यय के उद्देश्य के मध्य एक उभयनिपर तत्व 'कल्याण' विद्यमान पाया जाता है लेकिन लोक व्यय के उद्देश्य की बात करें तो इस कल्याण का आकार एवं प्रकृति बदल जाती है। लोक व्यय के समक्ष सदैव लोक कल्याण का उद्देश्य रखा जाता है।

यदि हम स्मिथ के अनुसार राज्य के तीन कार्यों पर प्रकाश डालें तो क्रमशः बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा, आन्तरिक कानून व व्यवस्था तथा कुछ सार्वजनिक कार्यों को शामिल किया गया है। उक्त यह तीनों कार्य लोक वित्त के व्यय द्वारा ही किया जाना आवश्यक बताया गया। इन तीनों कार्यों के महिक कल्याण के उद्देश्य की भावना निहित है जो स्वतंत्र अर्थव्यवस्था एवं निजी व्यवस्थाओं के अन्तर्गत बिना लोक व्यय के प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं होता है। प्रो० जे०एस० मिल ने लोक व्यय की सीमा में आवश्यक सुरक्षा, कानून व्यवस्था, वित्तीय व्यवस्था, सिक्के की व्यवस्था, मापतौल व्यवस्था, सड़क, प्रकाश, बन्दरगाह तथा बांध आदि को शामिल किया जिसके पीछे भी सामूहिक या लोक कल्याण के उद्देश्य को रखा गया है। वर्तमान में भी व्यक्तिगत कल्याण के केन्द्रीयकरण को रोकने तथा कल्याण के वंचित वितरण को बचाये रखने के लिए लोक व्यय के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं।

लोक व्यय राजकीय वित्त का एक महत्वपूर्ण भाग है इसके साथ वर्तमान में विकसित देशों के साथ विकासशील तथा पिछड़े देशों में सार्वजनिक वित्त का अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया है। देशों की राजकोषीय नीति में लोक व्यय सबसे अधिक प्रभावशाली उपकरण के रूप में अपनाया जा रहा है अर्थशास्त्र में जो स्थान उपभोग द्वारा स्थापित किया गया है वहीं लोक व्यय सार्वजनिक वित्त में अपनी अलग भूमिका बनाये हुए है। किसी भी देश की राजकोषीय नीति के उद्देश्यों को देखा जाए तो लोक आगम, लोक व्यय, लोक ऋण तथा राजकोषीय नियन्त्रण का अपना अलग-अलग महत्वपूर्ण स्थान है। आप को यहां पर यह ध्यान देना होगा कि लोक सत्ताओं द्वारा व्यय की मदों का निर्धारण पूर्व में किया जाता है तत्पश्चात् उन मदों पर होने वाले लोक व्यय की राशि का अनुमान लगाया जाता है। इन मदों के निर्धारण एवं लोक व्यय की राशि का अनुमान लगाने का उद्देश्य अलग-अलग देशों की लोक सत्ताओं द्वारा अपने शासन नीति एवं अर्थव्यवस्था की प्रकृति के आधार पर तय किया जाता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये लोक व्यय की पूर्ति करने तथा लोक व्यय की सार्थकता को बनाये रखने के लिये राजकोषीय नीति के अन्य उपकरणों यथा लोक आगम, लोक ऋण, वित्तीय प्रशासन को प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोक व्यय का उद्देश्य राजकोषीय नीति के उद्देश्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लोक कल्याणकारी लोक सत्ताओं से यह अपेक्षा की जाती है कि ये लोक सत्ताये उन मदों पर व्यय करें जिन मदों पर व्यय करने के लिये निजी व्यक्ति समर्थ नहीं है। सामूहिक शिक्षा व स्वास्थ्य, आवास, सड़क परिवहन आदि पर निजी व्यक्ति द्वारा व्यय किया जाना सम्भव नहीं है। इसी लिये इस प्रकार की महत्वपूर्ण योजनाओं का निर्माण एवं उनका संचालन लोक सत्ताओं द्वारा किया जा सकता है। लोक व्यय के द्वारा उन आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है जो व्यक्तिगत रूप से पूरी नहीं की जा सकती है।

वर्तमान में लोक सत्ताओं के बढ़ते कार्यों एवं दायित्वों को देखते हुए लोक व्यय के उद्देश्यों को दो आधार पर भी स्पष्ट किया जा सकता है। प्रथमतः लोक व्यय का उद्देश्य राज्य की आर्थिक क्रियाओं का कुशल संचालन है ताकि लोक सत्ताओं द्वारा एक कल्याणकारी राज्य। वर्तमान में शायद आपने ध्यान दिया होगा कि लोक व्यय के उद्देश्य निर्धारण में लागत लाभ विश्लेषण को ध्यान में रखा जाता है। अतः लोक सत्ताये भी निजी क्षेत्र की तरह लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से भी आर्थिक क्रियाओं का संचालन कर रही हैं इसके साथ राष्ट्रीयकरण की भावना से भी प्रेरित होकर उद्योगों का संचालन करने लगी है। द्वितीयतः सार्वजनिक कल्याण में वृद्धि करने के उद्देश से लोक व्यय

किया जाता है जिसके अन्तर्गत उत्पादन में वृद्धि करके रोजगार व उपभोग में वृद्धि करने का प्रयास किया जाता है इसीलिये लोक सत्ताओं द्वारा लोक व्यय के माध्यम से सार्वजनिक क्षेत्र को व्यापक बनाती हैं।

5.3.1 राजकोषीय नीति के उद्देश्यों में लोक व्यय

विभिन्न देशों के आर्थिक इतिहास के आधार पर यह महसूस किया गया कि विभिन्न देशों की राजकोषीय नीति में समय - समय पर परिवर्तन होते रहे हैं वर्तमान में राजकोषीय नीति का उपयोग बेरोजगारी व अति उत्पादन की समस्या को दूर करने के लिये किया जाता है इस प्रकार धीरे-धीरे राजकोषीय नीति का उद्देश्य हर क्षेत्र में बढ़ता ही गया। मसग्रेव के अनुसार - राजकोषीय नीति के उद्देश्य उच्च रोजगार कीमत में स्थिरता, विदेशी व्यापार में सन्तुलन, आर्थिक विकास में वृद्धि आदि हैं। वर्तमान में राजकोषीय नीति के माध्यम से रोजगार में पर्याप्त वृद्धि की जाती है जिसमें लोक व्यय की भूमिका सर्वोपरि निर्धारित की गयी है। कीन्स के पूर्ण रोजगार के केन्द्र बिन्दु प्रभाव पूर्ण माँग में क्रय शक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया तथा अन्ततः प्रभावपूर्ण माँग को बढ़ाने में कीन्स ने लोक व्यय के विवेक पूर्ण प्रयोग पर जोर दिया।

विकसित देशों में रोजगार के स्तर को एक सीमा के बाद बढ़ाया नहीं जा सकता। अतः विकसित देशों में राजकोषीय नीति के अन्तर्गत लोक व्यय के माध्यम से रोजगार को एक वांछित स्तर पर बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। इसीलिये इन देशों में लोक व्यय के आवंटन को निवेश तथा उपभोगगत क्षेत्र में ध्यान पूर्वक तय किया जाता है। विकासशील देशों में बेरोजगारी की समस्या एवं संसाधनों का अल्प प्रयोग की समस्या पायी जाती है इसी आधार पर लोक व्यय के माध्यम से संसाधनों के कुशलतम पूर्ण प्रयोग करने के साथ अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन की क्षमता को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है।

विकसित देशों के सामने राजकोषीय नीति का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह उत्पादन की मात्रा को बढ़ा सके परन्तु यहाँ इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि उत्पादन का स्तर उपभोग के स्तर से ऊँचा नहीं होना चाहिए। जब तक उत्पादन क्षमता कम न हो तब तक उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि की जानी चाहिए। अतः विकसित राष्ट्रों में प्रभावोत्पादक माँग में लगातार वृद्धि की जानी चाहिए। ऐसा नहीं हुआ तो बेरोजगारी की समस्या हल नहीं होगी।

विकासशील देशों में छिपी हुई बेरोजगारी होती है जिसे दूर करने के लिए उत्पादन के साधनों को गतिशील बनया जा सकता है। विकसित देशों में छिपी हुई बेरोजगारी तो नहीं रहती हैं परन्तु वहाँ अनिश्चित बेरोजगारी होती है काम के अवसर होते हैं हुए भी यदि वहाँ के लोग काम न करना चाहे या उनके पास इतनी आय हो कि वे बिना काम किये हुए भी अपना जीवन व्यतीत करने की सोचते हो, तो ऐसी स्थिति में अनिश्चित बेरोजगारी फैल जायेगी। यह स्थिति अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव डालती है। देश की जन.शक्ति आलसी व अकर्मण्य हो जाती है इस स्थिति के लिए पूर्णतया जिम्मेदार मौद्रिक माँग में उतार-चढ़ाव का आना बेरोजगारी उत्पन्न करता है, यदि बेरोजगारी को दूर करना है तो मुद्रा की माँग के उतार चढ़ावों पर नियन्त्रण लगाना होगा।

5.3.2 लोक व्यय के आवंटन सम्बन्धी उद्देश्य

बजट के अन्तर्गत लोक व्यय के आवंटन सम्बन्धी उद्देश्यों का सम्बन्ध इस बात से है कि समाज के कुल साधनों का विभाजन निजी एवं सामाजिक वस्तुओं के मध्य किस प्रकार होता है ? निजी वस्तुओं की यह विशेषता है कि उनमें

वर्जन के सिद्धान्त का उपयोग हो सकता है तथा उपभोग में प्रतिद्वन्दिता रहती है। सामाजिक वस्तुएं वे हैं जिनका उपभोग सभी व्यक्ति समान मात्रा में करते हैं, क्योंकि यहां वर्जन सिद्धान्त का उपयोग सम्भव नहीं है।

अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति में काफी अन्तर पाया जाता है। आन्तरिक क्षेत्रों की संरचना भी अलग-अलग स्थितियों में होती है। अर्थव्यवस्था में साधनों का आदर्श आवंटन कुछ शर्तों के पूरी होने पर ही संभव है। अर्थव्यवस्था के एक बड़े क्षेत्र में ये शर्तें पूरी हो जाती हैं, लेकिन कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जहां बाजार यन्त्र के उपयोग से सर्वोत्तम परिणाम नहीं मिल सकते हैं। जिन क्षेत्रों में उपभोक्ताओं तथा उत्पादनकर्ताओं को पूर्ण जानकारी नहीं रहती है वहां बाजार सही ढंग से कार्य नहीं कर सकता है। इस समस्या का समाधान करने के लिए लोक व्यय का एक तकनीकी के रूप में अपनाने का प्रयास किया जाता है।

उत्पादन से सम्बन्धित साधन समायोजन का भी उद्देश्य एक महत्वपूर्ण तथ्य है। कुछ साधन ऐसे हैं जो एक साथ बड़ी मात्रा में ही उपलब्ध होते हैं। उत्पादन की कुछ क्रियाएं बड़े पैमाने पर सम्भव हैं। इन परिस्थितियों में उत्पत्ति हासमान लागत के अनुसार होती है और एकाधिकार का सृजन हो सकता है। अतः आदर्श आवंटन के नियम, अर्थात् कीमत – सीमान्त लागत, का प्रयोग सम्भव नहीं होता है। यहां भी बजट नीति की जरूरत पड़ जाती है।

लोक व्यय-नीति की आवश्यकता उन क्षेत्रों में भी पड़ती है जहां उत्पादन में बाह्य मितव्ययिता या गैर मितव्ययिता मिलती है। बाह्यताओं से तात्पर्य उस लागत या लाभ से है जो कीमत में प्रतिबिम्बित नहीं होते हैं और इसलिए वे कीमतों से 'बाहर' हैं। इसलिए वे बाह्यता के मौजूद रहने का अर्थ यह है कि व्यक्ति उत्पादन तथा वाणिज्य से अधिकतम लाभ ऐसी लागत तथा कीमत के आधार पर ही प्राप्त कर सकता है जो साधनों के उपयोग के वास्तविक मूल्य को नहीं दर्शाती हैं। बाह्यताएं किसी वस्तु के उत्पादन के कारण तीसरे लोगों को ऐसी आकस्मिक सेवाओं के रूप में प्रकट हो सकती हैं जिनके लिए कोई कीमत नहीं ली जा सकती है या ऐसे नुकसान के रूप में आ सकती हैं जिनके लिए कोई क्षतिपूर्ति नहीं की जाती है। वस्तु के उत्पादन के कारण तीसरे लोगों को प्राप्त ऐसी आकस्मिक सेवाओं का एक उदाहरण लें। मान लें किसी नये क्षेत्र में रेल की लाइनें बिछायी जाती हैं। इससे आर्थिक विकास की गति तेज हो जाती है। इससे समाज को जो लाभ मिलता है वह रेल लाइन बिछाने वाली कम्पनी के निजी लाभ से कहीं ज्यादा है। बाजार यन्त्र के अन्तर्गत कीमत उस कुल लाभ के केवल एक ही भाग अर्थात् निजी लाभ के बराबर हो सकती है। अतः किसी भी निजी कम्पनी को इस क्रिया से नुकसान होगा। यहां राज्य की आवश्यकता हो जाती है। कल्याण के अर्थशास्त्र में ऐसी क्रियाओं के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे सिजविक का लाइट हाउस, पीगू की धुआं फेंकने वाली चिमनी, आदि। लोक व्यय के उद्देश्य को वस्तुओं के उत्पादन को आवंटन के साथ जोड़ा जाता है। बाजार यन्त्र के द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं की आदर्श उत्पत्ति उस समय सम्भव नहीं है जब इन वस्तुओं तथा सेवाओं का उपभोग सामूहिक या संयुक्त रूप से समाज के सभी सदस्यों द्वारा होता है। एक बार जब इन सेवाओं का उत्पादन हो जाता है, तब किसी को भी इसके उपभोग से वर्जित नहीं किया जा सकता है। इस स्थिति में इनके उपभोग के लिए व्यक्तियों से बाजार कीमत मांगना सम्भव नहीं होगा। अतः लाभ से प्रेरित होकर कार्य करने वाले निजी उत्पादनकर्ता इन वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में साधनों का उपयोग नहीं करेंगे। यहां भी बजट नीति का प्रयोग करना होगा।

सरकार के पास अनेक उपकरण हैं जिनका उपयोग कर अर्थव्यवस्था में साधनों के आवंटन को प्रभावित किया जा सकता है। इन यन्त्रों में दो प्रमुख यन्त्र हैं:- कर लगाने की शक्ति तथा व्यय करने की क्षमता। करों के माध्यम से उन

वस्तुओं के उत्पादन तथा उपभोग को प्रोत्साहित किया जा सकता है जिनका इष्टतम से कम उत्पादन होता है। इसके विपरीत जिन वस्तुओं का उत्पादन इष्टतम से अधिक होता है उनके उत्पादन तथा उपभोग को करों के माध्यम से कम किया जा सकता है। इन्हीं कार्यों के लिए व्यय का भी उपभोग सम्भव है। ये दोनों मूल लोक वित्तीय यन्त्र है और इन्हें हम इस रूप में भी समझ सकते हैं कि लोक व्यय आर्थिक सहायता है जबकि कर जुर्माना है जिससे उत्पादन की लागत में वृद्धि होती है।

सरकार नियमन के गैर-वित्तीय यन्त्रों का भी प्रयोग कर सकती है। किन्तु, जहां व्यय एवं कर बजट के अंग हैं, वहां अन्य यन्त्र सरकारी बजट से बाहर रहते हैं।

लोक व्यय के आवंटन उद्देश्य के साथ समस्या यह है कि वह कैसे निर्धारित करेगी कि कितनी मात्रा में सामाजिक वस्तुओं का प्रावधान किया जाय, किन सामाजिक वस्तुओं का प्रावधान किया जाय तथा कैसे निर्धारित किया जाय कि इन वस्तुओं के उपभोक्ताओं को इनके उपभोग के लिए कितना भुगतान करना है? निजी वस्तुओं की स्थिति में उपभोक्ता बाजार में मांग के रूप में इन वस्तुओं के लिए अपने अधिमान को व्यक्त करता है। सामाजिक वस्तुओं के लिए वे ऐसा नहीं करेंगे क्योंकि एक बार इनका उत्पादन हो जाने पर लोगों को इनके उपभोग के लिए भुगतान करने पर विवश करना असम्भव है। इन वस्तुओं की स्थिति में भुगतान नहीं करने वालों को उपयोग नहीं करने वाला बनाना मुश्किल है। सामाजिक या सामूहिक उपभोग या सार्वजनिक वस्तुओं की दो प्रमुख विशेषताएं हैं:- उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता का अभाव तथा वर्जन का अभाव इस समस्या के समाधान के लिए राजनीतिक प्रक्रिया के विश्लेषण की आवश्यकता है और इसका अध्ययन सार्वजनिक चयन के सिद्धान्त के अन्तर्गत किया जाता है।

5.3.2 लोक व्यय के वितरण उद्देश्य

सरकार द्वारा निर्धारित किये जाने वाले लोक व्यय के वितरण उद्देश्य का क्लासिकल कार्य माना जाता है। "वस्तुतः एक ऐसा समय था जब लोक सेवाओं के प्रावधान को ही एकमात्र वैध कार्य समझा जाता था ऐसा तर्क प्रस्तुत किया जाता था कि शुद्ध एवं सरल लोक वित्तीय समस्याओं को सामाजिक एवं आर्थिक नीति के असम्बद्ध विचार के साथ उलझाना नहीं चाहिए।" लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि बजट नीति के सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव पड़ते हैं। इन प्रभावों को उस दिशा में मोड़ा जा सकता है जिनका आवंटन के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है। इस सन्दर्भ में ऐसी एक दिशा वह है जिसका सम्बन्ध आय एवं सम्पत्ति के वितरण से है। लोक व्यय के उपयोग से आय एवं सम्पत्ति का वह वितरण सम्भव है जिसे समाज न्यायोचित समझता हो। इसे ही व्यय नीति का वितरण उद्देश्य समझा जाता है। आवंटन उद्देश्य के अन्तर्गत कर एवं व्यय के माध्यम से साधनों का हस्तान्तरण निजी आवश्यकता से हटाकर सार्वजनिक आवश्यकता की सन्तुष्टि के लिए होता है। वितरण का उद्देश्य यह है कि आय एवं सम्पत्ति का हस्तान्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को किया जाय। समाज के दृष्टिकोण से मौजूदा वितरण न्यायपूर्ण हो सकता है या नहीं भी। यदि नहीं है तो बाजार यन्त्र के द्वारा सामाजिक दृष्टि से न्यायोचित वितरण लाना सम्भव नहीं है। अतः बजट प्रक्रिया की आवश्यकता होती है।

बाजार अर्थव्यवस्था में आय की असमानता का प्रमुख कारण यह है कि मजदूरी, लगान, ब्याज के रूप में उत्पादन के साधनों को जो भुगतान किया जाता है वह उनकी सीमान्त उत्पादकता के आधार पर ही किया जाता है। बाजार

व्यवस्था एक ऐसे योग्यता तन्त्र को जन्म देती है जिसमें योग्यता (तथा आय) उन्हीं को प्राप्त होती है जिन्होंने इस व्यवस्था की आवश्यकता के अनुकूल उत्पादन क्षमता को अर्जित किया है। निजी दान को छोड़कर अन्य किसी भी परिस्थिति में उन लोगों की जीविका के लिए कोई प्रावधान नहीं होता है जिन्हें आवश्यक उत्पादन क्षमता प्राप्त नहीं है। एकाधिकार एक दूसरा तत्व है जिसकी उपस्थिति से बाजार व्यवस्था में आय के वितरण में असमानता का सृजन होता है। बाजार व्यवस्था की क्रिया के लिए निजी सम्पत्ति का अधिकार आवश्यक है, लेकिन यह संस्था आय की असमानता के सृजन में सहायता पहुंचाती है। निजी सम्पत्ति के साथ उत्तराधिकार की व्यवस्था असमानता को और बढ़ाती है।

लेकिन न्यायपूर्ण किसे कहा जाय? आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर नहीं देता। आधुनिक कल्याण के अर्थशास्त्र में आर्थिक कार्यकुशलता का विश्लेषण दिये हुए वितरण की स्थिति में किया जाता है। आर्थिक पुनर्व्यवस्था से सामाजिक कल्याण में उस समय वृद्धि होती है जब एक व्यक्ति की दशा में तो सुधार होता है, लेकिन अन्य व्यक्तियों की हालत बिगड़ती नहीं है। पुनर्वितरण कार्य ऐसी पुनर्व्यवस्था से भिन्न है क्योंकि इसमें कुछ लोगों की आर्थिक दशा में सुधार अन्य लोगों की कीमत पर ही किया जाता है।

आय का पुनर्वितरण का लक्ष्य सरकार द्वारा कई तरह से किया जा सकता है। परोक्ष रूप से यह कार्य उत्पादक साधनों व उत्पत्ति की कीमतों में परिवर्तन के द्वारा या सम्पत्ति के अधिकार के प्रावधानों में परिवर्तन के द्वारा सम्भव है। एक उदाहरण लें। मान लें सरकार अपने अधिकार का उपयोग करते हुए कृषि वस्तुओं की कीमतों को सहारा देती है। इससे कृषकों की आय बढ़ जायगी तथा गैर-कृषकों की आय घट जायगी। सरकार रोजगार विशेष तथा खास उद्योगों में कुछ खास लोगों के प्रवेश को रोक सकती है। इससे ऐसे कुछ लोगों को रोजगार नहीं मिलेगा जिन्हें इनमें रोजगार पाने का प्रशिक्षण मिला हुआ है। ऊंची आय पर अधिकतम सीमा तथा न्यूनतम आय का स्तर निर्धारित करके भी आय के वितरण में समानता लाने की चेष्टा की जा सकती है। कर हस्तान्तरण व्यवस्था, ऋणात्मक आय कर, प्रगतिशील आय-कर, आदि कुछ अन्य उपाय हैं जिनका उपयोग सरकार करती है।

मस्प्रेव एवं मस्प्रेव ने आय के पुनर्वितरण के लिए निम्न तीन राज कोषीय विधियों की चर्चा की है

- कर हस्तान्तर योजना जिसमें ऊंची आय पर प्रगतिशील कर के साथ निम्न आय पाने वाले
- परिवारों को सब्सिडी।
- निम्न आय पाने वाले परिवारों के उपभोग में आने वाली लोक सेवाओं, जैसे, मकान, स्वास्थ्य, आदि का वित्त पोषण प्रगतिशील करों के द्वारा ऊंची आय वालों के उपभोग की वस्तुओं पर कर तथा निम्न आय वालों के उपभोग की वस्तुओं की सब्सिडी।

5.4 लोक व्यय द्वारा स्थिरीकरण का उद्देश्य

लोक व्यय का स्थिरीकरण का उद्देश्य नवीनतम है। 1930 के दशक से ही यह प्रकाश में आया है। यह कार्य आवंटन कार्य से भिन्न है। जिसका सम्बन्ध निजी एवं सार्वजनिक आवश्यकताओं के मध्य साधनों के बंटवारे से है। यह वितरण कार्य से भी पृथक है जिसका सम्बन्ध निजी आवश्यकताओं के मध्य साधनों के बंटवारे से है। स्थायित्व का प्रमुख उद्देश्य रोजगार को ऊंचे स्तर पर कायम रखना तथा कीमत में स्थिरता को बनाये रखना है।

इस कार्य की जरूरत इसलिए होती है क्योंकि बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार एवं कीमत स्थिरता स्वयं अर्थात् किसी बाहरी हस्तक्षेप के बिना अपने आप कायम नहीं रह सकती है। रोजगार एवं कीमत स्तर समग्र मांग पर निर्भर करते हैं। इसलिए प्रसारकारी या संकुचनकारी राजकोषीय नीति द्वारा समग्र मांग को स्थिर रखने की जरूरत होती है। मन्दी काल में लोक व्यय में वृद्धि तथा करों में कटौती करके समग्र मांग में वृद्धि करने की जरूरत होती है। मुद्र-स्फीति काल में लोक व्यय में कमी करने की जरूरत पड़ सकती है।

1936 में प्रकाशित General Theory में केन्स ने रोजगार एवं कीमतों में अस्थिरता के कारणों का विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि सरकार के पास ऐसे यन्त्र हैं जिनके प्रयोग द्वारा इन अस्थिरताओं को समाप्त किया जा सकता है। आधुनिक स्थायित्व नीति कीन्स तथा केन्सीयों के द्वारा विकसित सिद्धान्तों का ही उपयोग है। भारत जैसे विकासशील देशों में भी आधार पर स्थिरीकरण का लक्ष्य तय किया जाता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्, विशेषकर 1950 के दशक से, राजकोषीय नीति के उद्देश्यों में एक तीसरा उद्देश्य भी जुड़ गया है। एक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में समग्र मांग एक अपरिवर्तनीय स्तर पर स्थिर नहीं रहती है बल्कि देश की उत्पादन क्षमता तथा जनसंख्या में वृद्धि के अनुसार बढ़ती रहती है। इसलिए जरूरी है कि बजट नीति के द्वारा उत्पादन क्षमता तथा जनसंख्या में वृद्धि के अनुकूल समग्र मांग में भी वृद्धि की जाय ताकि पूर्ण रोजगार एवं कीमत स्थायित्व बने रहें। साथ ही यह भी याद रखना है कि आर्थिक स्थायित्व के लिए सिर्फ राजकोषीय नीति ही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ मौद्रिक नीति तथा समयानुसार अन्दरूनी नीतियों का भी उपयोग पड़ सकता है।

5.5 लोक व्यय के उद्देश्य निर्धारण की समस्या

बजट नीति के अनेक उद्देश्य होते हैं- आवंटन, वितरण तथा स्थायित्व। इन्हें राजकोषीय कार्यों की संज्ञा दी जाती है। इन सभी उद्देश्यों को एक साथ पूरा करने में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं क्योंकि इनके मध्य संघर्ष हो सकता है और वे परस्पर व्यापी हैं। इसलिए कार्यकुशल बजट नीति के निर्माण में जटिलताएं आ जाती हैं, यानि ऐसी बजट नीति का निर्माण कठिन हो जाता है जो सभी उद्देश्यों के साथ न्याय करें।

कुछ उदाहरण लें। मान लें सरकार सेवाओं में वृद्धि करना चाहती है। इसके लिए कर की मात्रा में वृद्धि करनी होगी। अब प्रश्न यह उठता है कि अतिरिक्त करों का वितरण करदाताओं के मध्य किस

प्रकार किया जाय। कर के द्वारा आय के वितरण में परिवर्तन हो सकता है। इसलिए निजी उपयोग के लिए जो आय बच जाती है उसमें सापेक्ष परिवर्तन हो जाएगा। इसका नतीजा यह होगा कि कुछ मतदाता लोक सेवाओं में वृद्धि के पक्ष में मत देंगे। सम्भव है कि ऐसा वे इसलिए करते हैं क्योंकि वे आय में होने वाले वितरण के पक्षधर हैं। इसलिए नहीं कि वे लोक सेवाओं में वृद्धि के पक्षपाती हैं। शायद उचित यह होगा कि दोनों उद्देश्यों को अलग रखा जाय। समाज पहले यह तय कर ले कि आय का उचित वितरण क्या है? इसके बाद लोक सेवाओं की वित्त व्यवस्था के लिए करदाताओं पर इन सेवाओं से मिलने वाले लाभ के अनुसार कर लगा दें? किन्तु, इस रास्ते को अपनाने में कठिनाइयाँ हैं। इसलिए लोक सेवाओं के प्रावधान एवं वितरण सम्बन्धी निर्णयों को केवल खिचड़ी ही नहीं बन जाती है, वरन् विकृति भी पैदा हो जाती है।

यहां ध्यान देना है कि सरकार निर्णय लेती है कि आय का वितरण अधिक समान होना चाहिए। इसके लिए प्रगतिशील कर प्रणाली को अपनाना होगा। लेकिन, अधिक समान वितरण लाने का एक दूसरा तरीका भी है। निम्न

आय वाले वर्गों को लोक सेवाएं अधिक मात्रा में प्रदान की जा सकती है, किन्तु इससे उपभोक्ता के स्वतन्त्र चयन में बाधा पड़ सकती है। एक बार फिर दोनों उद्देश्यों के मध्य संघर्ष पैदा हो जाता है।

अब स्थायित्व राजकोषीय नीति को लें। मान लें कि बेरोजगारी को कम करने के लिए प्रसार की नीति की जरूरत है। इसके लिए लोक व्यय में वृद्धि की जा सकती है। यदि पहला रास्ता अपनाया जाय तो आवंटन कार्य के साथ हस्तक्षेप होगा, कर में कटौती करते समय यह निर्णय लेना पड़ेगा कि यह किस प्रकार लागू किया जाय। आवंटन एवं वितरण दोनों के मध्य तटस्थ रहते हुए स्थायित्व उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कर की दरों में अनुपातिक परिवर्तन करना होगा।

5.6 अभ्यास प्रश्न(Practice Questions)

प्रश्न संख्या 1-

निम्न लिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए।

- (क) लोक व्यय का मुख्य उद्देश्य क्या है?
- (ख) विकसित तथा विकासशील देशों में लोक व्यय के उद्देश्यों में क्या अन्तर पाया जाता है? संक्षेप में लिखो।
- (ग) लोक व्यय का उद्देश्य कौन निर्धारित करता है?
- (घ) मुद्रा स्फीति में लोक व्यय किस प्रकार कार्य करता है?

प्रश्न संख्या 2-

निम्न लिखित कथनों में सही व गलत का चयन कीजिए?

- (क) लोक व्यय, लोक आगम का पूरक है।
- (ख) लोक व्यय तेजी काल में अत्यधिक बढ़ा दिया जाता है।
- (ग) लोक व्यय के उद्देश्य केवल विकासशील देशों में ही निर्धारित होते हैं।
- (घ) लोक व्यय उद्देश्यों के प्रति तटस्थ होता है।

प्रश्न संख्या 3-

नीचे दिये कथनों में रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

- (क) बाजारी अर्थव्यवस्था में .. नहीं होता।
- (ख) बजट नीति केतीन उद्देश्य होते हैं।
- (ग) सामाजिक वस्तुओं और सेवाओं में वृद्धि.....बढ़ाती है।
- (घ) बेरोजगारी को दूर करने के लिये.नीति की जरूरत होती है।

प्रश्न संख्या 4- लोक व्यय के उद्देश्य निर्धारण में आने वाली मुख्य चार समस्याएं बताओ?

प्रश्न संख्या 5- लोक व्यय के उद्देश्यों की मुख्य विशेषताएं संक्षेप में लिखो?

5.7 सारांश (Summary)

परम्परागत अर्थव्यवस्थाओं के साथ वर्तमान में सभी राष्ट्र लोक व्यय के उद्देश्यों को लेकर अत्यन्त गम्भीर रहें हैं। यद्यपि सामान्य रूप से अर्थ व्यवस्थाओं के संचालन की दृष्टि से सरकारों द्वारा लोक व्यय के उद्देश्यों में सामान्यता प्रकट करते हैं परन्तु अर्थव्यवस्थाओं में पाये जाने वाले संरचनात्मक व संगठनात्मक अन्तर के कारण लोक व्यय

के उद्देश्यों की प्रकृति में भी व्यापक अन्तर पाया जाता है। सामान्यतः इसे विकसित, विकासशील तथा पिछड़े राष्ट्रों के सामने उपादन को यथास्तर से आगे बनाये रखने तथा उसमें आवश्यक संधार एवं गणवत्ता पैदा करने के साथ आय तथा सम्पत्ति के वितरण की कम करने पर जोर दिया जाता है इस उद्देश्य को प्राप्त करने में लोक व्यय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। लोक व्यय की उचित नीति द्वारा वितरण के इस उद्देश्य को निर्धारित करने में अत्यधिक रूचि प्रकट की गयी है। उत्पादन तथा वितरण के साथ-साथ अर्थिक वृद्धि को उच्च स्तर पर बनाये रखने का उद्देश्य भी लोक व्यय के द्वारा निर्धारित किया जाता है। यह उद्देश्य विकासशील तथा पिछड़े देशों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि विकासशील तथा विकसित देशों के लिये आर्थिक वृद्धि दर को ऊंचे स्तर पर बनाये रखना वहाँ की सरकारों के लिये एक चुनौती है।

आपको यहां पर यह भी ध्यान देना अति आवश्यक होगा कि आर्थिक स्थायित्व बनाये रखना भी वर्तमान में विकसित तथा विकासशील देशों की सरकारों के लिये अत्यन्त आवश्यक है। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में आर्थिक मन्दी तथा तेजी के व्यापार चक्रों का सामना प्रायः सभी देशों को करना पड़ता है।

विकसित देशों में आर्थिक स्थायित्व का उद्देश्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जो विकासशील तथा पिछड़े देशों में उतना महत्वपूर्ण नहीं है। मन्दी काल में लोग व्यय में वृद्धि तथा तेजी काल में लोक व्यय की आवश्यक कटौती सम्बन्धी नीतियों के द्वारा आर्थिक स्थायित्व का उद्देश्य तय किया जाता है।

आपको यहां पर यह भी जानना अत्यन्त आवश्यक है कि उक्त सभी उद्देश्यों को निर्धारित करने में लोक आगम की भी महत्वपूर्ण भूमिका है लेकिन वर्तमान में लोकतान्त्रिक सरकारों द्वारा लोक व्यय के द्वारा इन उद्देश्यों का निर्धारण करना एवं इन्हें प्राप्त करना महत्वपूर्ण बन गया है।

5.8 शब्दावली (Glossary)

- **आवंटन:-** आवंटन की प्रक्रिया के अन्तर्गत संसाधनों को अलग-अलग मदों एवं उप विभागों में बांटा जाता है।
- **वितरण :-** इसके अन्तर्गत अर्थ व्यवस्था में आय तथा सम्पत्ति के वर्तमान स्थिति में इस प्रकार परिवर्तन किया जाता है कि निम्न आय तथा कम सम्पत्ति वाले लोगों की आय तथा सम्पत्ति में वृद्धि होती है लेकिन अर्थ व्यवस्था के संचालन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।
- **स्थिरीकरण :-** अर्थव्यवस्था में समय-समय पर आने वाले व्यापार चक्रों को नियन्त्रित करते हुए विकास की गति को निरन्तर बनाये रखना स्थिरीकरण कहलाता है।
- **सामाजिक वस्तुएँ:-** सामाजिक वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जो उपभोग में गैर प्रतियोगी होती है तथा उन्हें उपलब्ध कराने एवं उनके मूल्य निर्धारण की जिम्मेदारी सरकार की होती है। सामान्य रूप से सामाजिक वस्तुओं की उपलब्धता सामूहिक कल्याण में वृद्धि के उद्देश्य से की जाती है।
- **बाजार अर्थव्यवस्था:-** बाजार अर्थव्यवस्था से तात्पर्य उस अर्थव्यवस्था से है जिसमें मांग एवं पूर्ति शक्तियाँ बिना सरकारी हस्तक्षेप के स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हैं।
- **राजकोषीय कार्य:-** सरकारी राजस्व सम्बन्धी कार्य।

- **आर्थिक उच्चावचन :-** अर्थव्यवस्था में मन्दी तथा तेजी की क्रमवार उत्पन्न होने वाली स्थितियां जो अलग-अलग प्रभाव डालती है।

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर(Answers for Practice Questions)

हल- प्रश्न संख्या 2 का उत्तर क. सही, ख. गलत, ग. गलत, घ. गलत

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर क. सरकारी हस्तक्षेप, ख. आवंटन, वितरण, ग. आर्थिक कल्याण, घ. स्थायित्व प्रसार

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची(References/Bibliography)

- भाटिया, एच०एल -(2006) लोक वित्त) Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा 0लि0
- जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे0सी -(2005) 0राजस्व) Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं _____ विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वाष्णेय, जे0सी -(1997) 0राजस्व, साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पीटल रोड, आगरा।।
- सिंह, एस0के -(2013) 0लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन
- पब्लिकेशन, आगरा

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री(Useful/Helpful Text)

- दत्त एवं सुन्दरम -(2011) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द एण्ड क 0लि0, नई दिल्ली।
- सेठी, टी0टी -(2005) 0मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।
- मिश्र, जगदीश नारायण(2011) –भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल पब्लिशर्स, हरिसदन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay Type Questions)

प्रश्न संख्या 1:- लोक व्यय के उद्देश्यों का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?

प्रश्न संख्या 2:- लोक व्यय के आवंटनात्मक उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न संख्या 3:- लोक व्यय के वितरण सम्बन्धी उद्देश्यों का विश्लेषण कीजिए?

प्रश्न संख्या 4:- लोक व्यय के द्वारा आर्थिक स्थायित्व को किस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है? स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न संख्या 5:- लोक व्यय के उद्देश्य निर्धारण की मुख्य समस्याओं को बताओं?

इकाई-6 लोक व्यय के नियम-वैगनर एवं वाइजमैन पीकाॅक (Canons of Public Expenditure-Wagner and Wiseman-Peacock)

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 लोक व्यय के नियमों की आवश्यकता
- 6.4 लोक व्यय के नियम
 - 6.4.1 लोक व्यय का वैगनर नियम
 - 6.4.2 वैगनर नियम की समीक्षा
 - 6.4.3 विकासशील राष्ट्रों में विकास व्यय बढ़ने के कारण
- 6.5 लोक व्यय के वाइजमैन पीकाॅक का नियम
 - 6.5.1 वाइजमैन पीकाॅक नियम की सीमाएँ
- 6.6 अभ्यास प्रश्न
- 6.7 सारांश
- 6.8 शब्दावली
- 6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 6.11 सहायक/ उपयोगी ग्रंथ सूची
- 6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह लोक व्यय खण्ड की छठी इकाई है जो वैगनर तथा वाइजमैन पीकॉक के नियमों पर आधारित की गयी हैं। इससे पूर्व की पंचम इकाई में लोक व्यय के उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है जो आवंटन, वितरण तथा स्थायित्व के विभिन्न पक्षों को समायोजित करती है। आप इस इकाई में दर्शाये गये उद्देश्यों को भली भांति समझ गये होंगे।

प्रस्तुत इकाई में एडोल्फ वैगनर तथा वाइजमैन पीकॉक के नियमों को आप अच्छी तरह से समझ सकेंगे जो लोक व्यय के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं तथा लोक व्यय के विभिन्न पक्षों को वास्तविकता के साथ स्पष्ट करते हैं। इसके साथ वैगनर तथा वाइजमैन पीकॉक के नियमों की भी समीक्षा से आप परिचित हो सकेंगे।

काफी लम्बे समय से लोक व्यय अर्थव्यवस्थाओं को अनेक पहलुओं से प्रभावित करता रहा है। ये दोनों नियम एक बड़ी सीमा तक वर्तमान अर्थव्यवस्थाओं के लिए भी अत्यन्त उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध होते रहे हैं। वर्तमान में भारत जैसे विकासशील देशों के लिए सार्वजनिक व्यय की प्रांसगिकता की समीक्षा भी अत्यन्त आवश्यक है। उपयोगी तथा गैर उपयोगी मदों पर लोक व्यय वर्तमान में एक अत्यन्त गम्भीर विषय है जो इस इकाई के द्वारा आप आसानी से समझ सकेंगे।

6.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि

- ✓ लोक व्यय के लिए नियमों की क्या आवश्यकता है तथा नियमों का किस सीमा तक पालन होता
- ✓ लोक व्यय का वैगनर का नियम क्या है तथा अर्थव्यवस्थाओं के लिए इसकी क्या उपयोगिता तथा इस नियम की क्या प्रांसगिकता है।
- ✓ वाइजमैन पीकॉक का लोक व्यय का नियम लोक व्यय की किस समस्या को उजागर करता है एवं इस नियम की क्या प्रांसगिकता है।
- ✓ इन दोनों नियमों में क्या समानताएं हैं तथा किन विपरीत या अलग-अलग दशाओं को स्पष्ट करता है।

6.3 लोक व्यय के नियमों की आवश्यकता

अर्थव्यवस्था में लोक व्यय के लिए नियमों की आवश्यकता है या नहीं? इस प्रश्न के उत्तर के लिए आपको दो बिन्दुओं पर गहराई से विचार करना होगा। प्रथमतः अर्थव्यवस्था की प्रकृति क्या है अर्थात् अर्थव्यवस्था को संचालित करने वाली विभिन्न शक्तियां कौन-कौन सी हैं तथा वे लोक व्यय से किस प्रकार प्रभावित होती हैं। द्वितीयतः लोक व्यय करने वाली सत्ता या सरकार की स्थिति तथा

उद्देश्य क्या है अर्थात् लोक व्यय करने वाली सत्ता का चयन या चुनाव किसके द्वारा किस प्रकार होता है तथा उसे चलाने वाले तत्व लोक व्यय द्वारा किस सीमा तक प्रभावित हैं। लोक सत्ताओं का उद्देश्य केवल सरकार चलाना है या विकास को अग्रसर करना। सरकार को लोक आगम की अपेक्षा लोक व्यय के लिए बड़े ही सतर्कता के साथ कार्य करना होता है। इसके प्रभाव अत्यन्त ही गम्भीर तथा विस्तृत होते हैं। सरकार की प्रकृति से सम्बन्ध इस आधार पर लगाया जाता है कि लोक कल्याणकारी समाजवादी सरकारी तथा पूंजीवादी सरकारों के लोक व्यय के मार्ग अलग-अलग हैं अतः इनके लिए अलग-अलग प्रकार के नियमों की आवश्यकता है ताकि पूर्व निर्धारित

उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। वही दूसरी ओर सरकार का चुनाव करने वालों के हितों की सुरक्षा या उन पर अनावश्यक अपव्यय आदि के लिए भी सरकार के सामने लोक व्यय सम्बन्धी अनेक प्रकार की समस्याएं आती हैं। लोक व्यय के नियमों की आवश्यकता इस बात पर जोर देती है कि बिना अपव्यय के लोक हितों को सुरक्षित किया जाय तथा आर्थिक स्थिरता को प्राप्त किया जाय। लोक व्यय के नियम की उपयोगिता इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि लोक व्यय के लिए लोक आगम की नीतियों भी प्रभावित होती हैं।

6.4 लोक व्यय के नियम

लोक व्यय की नियमों की आवश्यकता को देखते हुए सरकारों द्वारा कुछ नियमों को भी ध्यान में रखना होता है जो नियमों की आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करता है। लोक व्यय के लिए अलग-अलग कार्य शक्तियों द्वारा अनेक नियम प्रतिपादित किये गये हैं जिसमें लाभ का नियम, मितव्ययता का नियम तथा स्वीकृति के नियमों को सामान्य रूप से जाना जाता है। लाभ के नियम के बारे में प्रो० पीगू का यह कथन अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रतीत होता है-"सभी दशाओं में व्यय को उस बिन्दु तक बढ़ाया जाय जिस पर कि व्यय की गयी मुद्रा की अन्तिम इकाई से प्राप्त होने वाली संतुष्टियाँ इस अन्तिम इकाईयों की संतुष्टियों के बराबर हों जो सरकार सेवा प्रदान करने पर व्यय करती है।

यह नियम स्पष्ट करता है कि सार्वजनिक व्यय के समाज के सभी व्यक्तियों को लाभ प्राप्त होना चाहिए न कि व्यक्तिगत स्तर पर अत्यधिक लाभ।

अर्थव्यवस्था के लिए मितव्ययता का नियम अत्यन्त ही उपयोगी एवं लम्बे समय के लिए आवश्यक है। सरकारी अपव्यय को रोकने के लिए स्वीकृति का नियम विकासशील देशों के लिए बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होता है।

लोक व्यय का सही रूप में प्रयोग करने के साथ लोक व्यय के नियमों से सम्बन्धित ग्लेडस्टोन का यह कथन अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। **“आय प्राप्त करने से इसको व्यय करना अधिक कठिन है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से तो राज्य के लिये सबसे उत्तम सिद्धान्त यह है कि सामाजिक लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य को सामने रखकर व्यय करे। अर्थात् विभिन्न मदों पर व्यय किये हुए धन के सीमान्त लाभ को बराबर रखने का प्रयत्न करे।”**

लोक व्यय से सम्बन्धित मितव्ययता नियम भी अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण हैं भारत जैसे विकासशील देश में लोक तान्त्रिक सत्ताओं के लिये इस नियम की उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है। इस नियम के अनुसार सरकार को चाहिए कि व्यय उसी मद में किया जाए जहां पर उसकी आवश्यकता अत्यधिक हो। लोक व्यय से अर्थ व्यवस्था में उत्पादन शक्ति का विकास हो सके जिससे लोगों की कार्य कुशलता एवं कार्य क्षमता में वृद्धि हो सके। लोक व्यय के सम्बन्ध में समय का अपव्यय न हो ताकि फिजूल खर्ची पर रोक लगाकर जनता को सन्तुष्ट किया जा सके।

लोक व्यय से सम्बन्धित स्वीकृति का नियम भी अपना अलग स्थान बनाये हुए है इस नियम के अनुसार लोक व्यय उस स्थिति में ही किया जाये जब उच्च अधिकारी या लोक संस्थाओं से इसकी सामान्य स्वीकृति प्राप्त हो जाए। लोक व्यय से सम्बन्धित बचत के सिद्धान्त पर शिराज का निम्न कथन भी आपके लिये अत्यन्त उपयोगी

सिद्ध होगा " सार्वजनिक अधिकारियों को अपनी आय की प्राप्ति व उसका व्यय सामान्य नागरिकों के समान करना चाहिए। व्यक्तिगत व्यय के समान सन्तुलित बजट की सामान्य नीति होनी चाहिए।

प्रस्तुत इकाई में लोक व्यय से सम्बन्धित वाइजमैन पीकाँक तथा वैगनर के नियम को आप मुख्य रूप से समझ सकेंगे जो सभी प्रकार की प्रगतिशील सरकारों के संचालन में तथा विकास के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है।

6.4.1 लोक व्यय का वैगनर नियम

आपको शायद ज्ञात हो कि लोक व्यय के क्षेत्र में जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर का नियम महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस नियम को राजस्व के कार्यकलाप में वृद्धि का नियम (Law of The Increase of State Activities) के नाम से जाना जाता है। इस नियम के अनुसार लोक व्यय में वृद्धि आर्थिक विकास के साथ-साथ बढ़ती जाती है अर्थात् लोक व्यय तथा आर्थिक विकास में धनात्मक व कार्यात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है। वैगनर ने अपने इस नियम को स्पष्ट करते हुए लिखा कि - "विभिन्न देशों और विभिन्न कालों की व्यापक तुलनाओं से पता चलता है कि प्रगतिशील राष्ट्रों में केन्द्रीय और स्थानीय दोनों सरकारों के कार्यकलापों में वृद्धि होती रहती है। यह वृद्धि विस्तृत और गहन दोनों प्रकार की है। केन्द्रीय और स्थानीय सरकारें निरन्तर नये कार्य हाथ में लेती जाती है और पुराने कार्यों को अधिक कुशलता और पूर्णता के साथ करती है। इस प्रकार केन्द्रीय और स्थानीय सरकारें जनता की आर्थिक आवश्यकताएं एक से अधिक परिमाण में और अधिक संतोषजनक ढंग से पूरा करती हैं।"

लोक व्यय के वैगनर के इस नियम का सम्बन्ध समाज कल्याण की प्राप्ति से होने के साथ लोक आगम के साथ भी स्थापित किया गया है। इन्होंने लोक वित्त को धन के पुनर्वितरण के साधन के रूप में माना जिसमें लोक व्यय की अपनी अलग अहम् भूमिका बतायी गयी है।

वैगनर के अनुसार प्रस्तुत की गयी लोक व्यय में वृद्धि की संकल्पना अर्थव्यवस्था को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करती है। यह सार्वजनिक व्यय निम्न तीन प्रकार से अपने प्रभाव को प्रसारित करता है।

लोक सत्ताओं के पास देश से सम्बन्धित अनेक प्रकार की आर्थिक तथा गैर आर्थिक मदें लोक व्यय के लिए मौजूद रहती हैं। इन मदों के मध्य सरकार को मांग-पूर्ति सम्बन्धी संतुलन स्थापित भी करना होता है जिसके सम्बन्ध में सरकार को अपने कार्यों को कुशलता के साथ करना होता है एवं गहनता के साथ में क्रिया कलापों का निष्पादन करना होता है। सरकार के पास पूंजी की पर्याप्तता होती है इस लिए विस्तृत एवं गहनता के साथ लोक राजस्व को व्यय करना आवश्यक होता है। अपव्यय तथा अनावश्यक व्यय सरकारों के लिए खतरनाक सिद्ध होता है।

- इसके साथ आपको यह भी ध्यान देना होगा कि सरकार लोक व्यय को व्यक्तिगत लाभ देने के आधार पर व्यय नहीं कर सकती है। समाज के सम्पूर्ण हितों के आधार पर लोक व्यय अत्यन्त उपयोगी एवं फलदायक होता है। अतः लोक व्यय लोक कल्याणकारी होता है। अनेक कारणों से लोक कल्याण का क्षेत्र बढ़ता है जिससे लोक व्यय में वृद्धि होती है।

लोक कल्याण से ही जुड़ा एक अन्य पहलू यह भी है कि सरकार उन सभी समाज हित वाले कार्यों पर लोक व्यय आसानी से कर सकती है जिन पर व्यक्तिगत व्यय की सम्भावना नहीं है। व्यक्तिगत व्यय निजी लाभों से प्रेरित होता है। सामाजिक न्याय की दृष्टि से निजी व्यय या निवेश उपयोगी नहीं रह जाता है। सरकार उन सभी बृहद योजनाओं एवं परियोजनाओं पर भी लोक व्यय करती है जो निजी क्षेत्र द्वारा किये जाने वाले व्यय की सीमा से बाहर होती है।

इससे पूर्व आपने पढ़ा होगा कि सरकारों की प्रकृति एवं अर्थव्यवस्था की प्रकृति के आधार पर भी लोक व्यय प्रभावित होता है। इसी आधार पर सरकार की लोकप्रियता एवं आर्थिक विकास की आवश्यकता के महत्व सामन्जस्य स्थापित करने में लोक व्यय में विस्तृत एवं गहन दोनों स्तरों पर उचित निर्णय लिये जाना अत्यन्त आवश्यक है।

आपको यहां पर यह भी जानना अत्यन्त आवश्यक है कि डाल्टन ने वैगनर के नियम को लागू होने के पीछे तीन मुख्य कारण स्पष्ट किये। जो निम्न प्रकार है

1- आधुनिक आर्थिक विकास के कार्यों के कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं, जिनमें निजी संस्थाओं की तुलना में सरकारी संस्थाएं अधिक कुशलता के साथ कार्य कर सकती हैं। डाल्टन का कथन है कि निजी एजेंसियों की तुलना में सरकारी एजेंसियों का चयन बुद्धिमत्तापूर्ण हो सकता है।

2- विकास की प्रक्रिया के कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं, जिसमें निजी क्षेत्र निवेश करने में रुचि नहीं दिखाते। इन क्षेत्रों में जो जनोपयोगी तथा आवश्यक होते हैं, सरकार को अनिवार्य रूप से व्यय करना पड़ता है। इसका एक उपयुक्त उदाहरण बड़े नगरों में जन स्वास्थ्य सेवाओं से सम्बन्धित कार्य है।

3- लोक व्यय का सम्बन्ध मुख्यतः सामूहिक उपयोगी वस्तुओं एवं सेवाओं से होता है, जबकि निजी व्यय का सम्बन्ध वस्तुओं एवं सेवाओं के व्यक्तिगत उपयोग से सम्बन्धित होता है। पार्क, अजायबघर, सार्वजनिक, पुस्तकालय आदि जो सार्वजनिक उपयोग से सम्बन्धित हैं, पर व्यय सरकार द्वारा किया जाता है।

6.4.2 वैगनर नियम की समीक्षा

19वीं शताब्दी में बढ़ते लोक व्यय की प्रवृत्ति पर आधारित एडोल्फ वैगनर का नियम जर्मनी की अर्थव्यवस्था के साथ अन्य अर्थव्यवस्थाओं के लिए भी अत्यधिक प्रासंगिक रहा। विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की आन्तरिक तथा बाह्य विशेषताओं में अन्तर के कारण इस नियम को अनेक दृष्टिकोणों से आलोचनाओं का भी समाना करना पड़ा है। मसग्रेव ने अपने आनुभाविक अध्ययन के आधार पर स्पष्ट किया कि लोक व्यय के हिस्से तथा प्रति व्यक्ति आय में सकारात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं किया गया। प्रतिव्यक्ति आय बढ़ाने के साथ लोक व्यय में वृद्धि का जारी रहना आवश्यक नहीं है इसके साथ वैगनर की समयावधि को लेकर भी आलोचना की गयी। लोक व्यय तथा विकास के मध्य सम्बन्धों में समय तत्व को स्थान नहीं दिया गया है। समय तत्व आर्थिक नियमों का महत्वपूर्ण घटक है। इसके साथ लोक व्यय में होने वाली वृद्धि की आन्तरिक वृद्धियों का जिक्र वैगनर के नियम में नहीं किया गया है।

वर्तमान में वैश्विक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत निजीकरण के दौर में लोक व्यय तथा विकास के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। निजी क्षेत्र द्वारा भी बड़ी-बड़ी परियोजनाओं तथा बृहद क्षेत्रों में भी निवेश किया जा रहा है तथा लोक व्यय में वृद्धि के कारणों में भी बहुदिशीय परिवर्तन नजर आ रहा है।

उपर्युक्त विश्लेषण के बाद भी वैगनर का नियम प्रगतीशील कल्याणकारी राज्यों के सम्बन्ध में अत्यधिक प्रासंगिकता रखता है।

6.4.3 विकासशील राष्ट्रों में विकास व्यय बढ़ने के कारण

विकासशील राष्ट्रों के सामने आर्थिक समस्याओं के साथ-साथ सामाजिक तथा अन्य चुनौतियाँ भी समय-समय पर पैदा होती रहती हैं। इस समस्याओं एवं चुनौतियों को दूर करने के लिए सरकारों को आवश्यक कदम उठाने होते हैं। "विकासशील राष्ट्रों की मुख्य समस्या आर्थिक विकास की गति को बढ़ाना होता है ताकि शेष विश्व के राष्ट्रों के साथ आर्थिक मुद्दों पर सामन्जस्य स्थापित किया जा सके। इस राष्ट्रों में आर्थिक विकास की दर को तीव्र करने के लिए अत्याधिक मात्रा पूंजी निवेश की आवश्यकता होती है। इन देशों में बड़ी-बड़ी परियोजनाओं एवं उपक्रमों को स्थापित करना होता है निजी क्षेत्र के पास इतनी अत्याधिक मात्रा में निवेश कर पाने की क्षमता नहीं है। इस निवेश में निजी क्षेत्र को प्रेरित करने के लिए भी अन्य दूसरे सहायक क्षेत्रों में सरकार को ही निवेश करना होता है। इसीलिए आर्थिक विकास का प्रयास चाहे प्रत्यक्ष सरकार द्वारा हो चाहे निजी क्षेत्र द्वारा अन्ततः परोक्ष रूप से सरकार द्वारा ही किया जाता है। इसके लिए सरकार को अनेक प्रकार की योजनाएं भी संचालित करनी होती है। जो पूंजी निवेश को संरक्षित करती है।

आर्थिक विकास की अलग-अलग अवस्थाओं में जनता का जीवन स्तर भी परिवर्तित होता रहता है तथा सामूहिक लोक कल्याणकारी सुविधाओं के उपभोक्ताओं की संख्या आदि में भी बदलाव आता है। इसी लिए सरकार को इस क्षेत्र पर भी भारी मात्रा में कल्याणकारी लोक व्यय करना होता है। इसका दूसरा पहलू भी अत्यन्त ही रोचक है जनसंख्या वृद्धि जो स्वयं अशिक्षा, परम्परागत समाज जैसी समस्याओं से ही एक समस्या पैदा हुई है। लोक तांत्रिक राष्ट्रों में जनसंख्या सम्बन्धी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के उपाय करना सरकार की मजबूरी बन जाती है। जो लोक व्यय में वृद्धि का कारण बन जाती है। बढ़ती जनसंख्या के कारण राष्ट्रों में आन्तरिक अशान्ति, बेरोजगारी गरीबी, असन्तुलित विकास, आर्थिक विषमता जैसी अनेक समस्याएं पैदा हो रही है। इन सभी समस्याओं को दूर या कम करने के लिए सरकार को निवेश एवं प्रत्यक्ष कल्याणकारी व्यय भारी मात्रा में करना पड़ता है। विकासशील राष्ट्रों की ये समस्याएं इस प्रकार की हैं कि लोक व्यय के अभाव में इनका समाधान सम्भव नहीं होता है। और न ही निजी क्षेत्र द्वारा किये जाने वाले व्यय से इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है। यहां आपको ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि बढ़ती जनसंख्या की समस्या लोक व्यय की प्रवृत्ति दो तरफ से प्रभावित होती है प्रथमतः बढ़ती जनसंख्या को रोकने के लिए केवल सरकारी प्रयास अत्यन्त सार्थक सिद्ध होते हैं। चूंकि बढ़ती जनसंख्या के लिए मुख्य रूप से जनता ही जिम्मेदार है अतः निजी क्षेत्र द्वारा इस दिशा में व्यय किया जाना सम्भव नहीं है। शिक्षा, स्वास्थ्य, जागरूकता कार्यक्रम आदि के प्रचार प्रसार द्वारा लोक व्यय की प्रवृत्ति प्रभावित होती है दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं के निराकरण हेतु भी लोक व्यय का ही सहारा लिया जाना प्रासंगिक है। इसी तथ्य के समानान्तर गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या से भी लोक व्यय में वृद्धि की प्रवृत्ति पैदा होती है तथा समयानुसार गरीबी व बेरोजगारी के स्वरूप से लोक व्यय की प्रवृत्ति में परिवर्तन उत्पन्न होते हैं जो वैगनजर के नियम का भी अनुसरण कर सकते हैं।

6.5 लोक व्यय के वाइजमैन का नियम

लोक व्यय के एडोल्फ वैगनर के नियम को आप भली भांति समझ गये होंगे। लोक व्यय के दूसरे पक्ष से जुड़ा एक अन्य महत्वपूर्ण वाइजमैन पीकॉक का नियम अपना अलग महत्वपूर्ण स्थान रखता है। **वाइजमैन पीकॉक** ने

अपनी पुस्तक "The Growth of public Expenditure in the United Kingdom" जो 1961 में प्रकाशित हुई, में अपने देश में 1890 से 1955 तक के लोक व्यय सम्बन्धी आंकड़ों के अध्ययन के पश्चात इस नियम को स्पष्ट किया। इस नियम के अनुसार लोक व्यय के बारे में निर्णय राजनैतिक आधार पर लिए जाते हैं। सार्वजनिक विचारधारा, लोक व्यय सम्बन्धी राजनैतिक निर्णयों को प्रभावित करती है। यह परिकल्पना लोक व्यय की वृद्धि के स्वरूप तथा ढाँचे में परिवर्तन के विश्लेषण से सम्बन्धित है।

पीकॉक वाइजमैन विश्लेषण सार्वजनिक व्यय निर्धारण के राजनैतिक सिद्धान्त पर आधारित है। उनके अनुसार, लोक व्यय के बारे में निर्णय राजनैतिक आधार पर लिए जाते हैं। सार्वजनिक विचारधारा जो मतपेटी के माध्यम से व्यक्त होती है, लोकव्यय के सम्बन्ध में लिए गए राजनैतिक निर्णयों को प्रभावित करती है। अन्य शब्दों में, लोक व्यय का स्तर जनमत अथवा मतदान द्वारा प्रभावित होता है, यह कथन यथार्थपरक है, क्योंकि वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि लोक व्यय को नागरिक अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से प्रभावित करते हैं। चुनाव के पश्चात गरीबी उन्मूलन हेतु किए जाने वाले व्यय कार्यक्रम तथा किसी प्रतिनिधि विशेष के चुनाव क्षेत्र का विकास इसके उदाहरण हैं। प्रजातन्त्र में नागरिक उन प्रतिनिधियों का चयन करना चाहता है जिनसे उन्हें अधिकतम लाभ मिल सकता हो, प्रतिनिधि भी राज्य के व्यय कार्यक्रम को इस तरह प्रभावित करना चाहते हैं ताकि उनका प्रतिनिधित्व सरकार में बना रहे। पीकॉक एवं वाइजमैन की धारणा है कि मतदाता सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं का लाभ तो लेना चाहता है लेकिन उनके बदले में कुछ भी चुकाने को सामान्य रूप से तैयार नहीं होता है। इस आधार पर लोक व्यय का निर्धारण करते समय सरकार द्वारा इस तथ्य को ध्यान में रखा जाता है कि सम्बन्धित कराधार के प्रस्ताव पर मतदाताओं की क्या प्रतिक्रिया है क्योंकि सरकार जनप्रतिनिधियों को एक निर्धारित समय के बाद उन्हें मतदाताओं के क्षेत्र में जाना होता है इसी लिये उनका विचार है कि कराधान का एक सहन स्तर होता है इस स्तर से अधिक कर लगाने पर मतदाता सरकार के फैसलों का विरोध करने लगते हैं।

आपको यहां ध्यान देना होगा कि कुछ विशेष परिस्थितियों में शारीरिक व्यय में वृद्धि हो जाती है जैसे युद्ध के समय निजी एवं राष्ट्र की सुरक्षा से प्रेरित होकर जनता कराधान के ऊचे स्तर को सहन करने के लिये तैयार हो जाती है। युद्ध की समाप्ति के बाद शारीरिक व्यय में कुछ कमी आ जाती है लेकिन कुछ समय के बाद बड़े हुये कराधान के एक बड़े भाग को सहन करने के लिये जनता भविष्य में भी तैयार बनी रहती है।

वाइजमैन पीकॉक ने अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि युद्ध के बाद ब्रिटेन के सरकारी व्यय में कमी आई परन्तु यह कमी घटकर युद्ध के पूर्व के स्तर पर नहीं आई तथा राष्ट्रीय आय में लोक व्यय का अनुपात युद्ध के तुरन्त पहले के स्तर की तुलना में बहुत अधिक रहा।

इस प्रकार लोक व्यय में यह वृद्धि स्थायी रूप में रही। इस स्थायी वृद्धि की आन्तारिक प्रवृत्ति को देखने पर स्पष्ट है यह स्थायी वृद्धि स्थिर वृद्धि के रूप में नहीं होती है बल्कि यह पेड़ीदार अर्थात् अनियमित रूप में सीढ़ीदार होती है। आपको यहां ध्यान देना होगा कि लोक व्यय का आकार एवं प्रवृत्ति लोक आगम द्वारा भी प्रभावित होती है। आपातकाल में जनता पर अधिक करों की वसूली की जाती है। राष्ट्रीय सुरक्षा आदि कारणों से जनता इस अधिक कर के भार को सहन करने के लिए तैयार हो जाती है और एक निश्चित समय अवधि के बाद जनता इस कर राशि को सहन करने की आदी हो जाती है जिससे सरकार के आय में स्थिर वृद्धि हो जाती है जिसे लोक व्यय के द्वारा संतुलित किया जाता है। सामान्य स्थितियों में कर का यह स्तर मौजूद रहता है तथा युद्ध जैसी आपातकालीन

स्थिति में लोक आगम इसी बढ़े हुए स्तर से आगे ही बढ़ता है। युद्ध स्थिति तथा सामान्य स्थिति या मन्दी की स्थितियों के पैदा होने पर इस लोक आगम में स्थायी वृद्धि के कारण लोक व्यय में भी स्थायी लेकिन पेड़ीदार वृद्धि होती है। युद्धोत्तर काल में लोक व्यय में स्थायी वृद्धि होती है लेकिन युद्ध काल की तुलना में कम होगी।

वाइजमैन पीकॉक ने अपने लोक व्यय सम्बन्धी नियम को भली-भांति स्पष्ट करने के लिये कुछ अवधारणाओं का भी सहारा लिया जिसमें प्रतिस्थापन प्रभाव, निरीक्षण प्रभाव, कर सहनशीलता तथा केन्द्रीयकरण प्रभाव को मुख्य रूप से जाना जाता है।

प्रतिस्थापन प्रभाव के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया कि युद्ध काल के बढ़ते हुये लोक व्यय की पूर्ति के लिये लोक सत्तार्ये करों को बढ़ा लेती हैं। तथा आवश्यकता पड़ने पर लोक ऋण का भी सहारा लेती हैं। क्योंकि करों के बढ़ाने एवं लोक ऋणों की व्यवस्था करने के कारण निजी क्षेत्र द्वारा किया जाने वाला व्यय सार्वजनिक क्षेत्र में होने वाला व्यय के रूप में प्रतिस्थापित हो जाता है। युद्ध की समाप्ति के बाद सरकार के पास जो अतिरिक्त आगम होता है वह युद्ध पर खर्च न होकर सामान्य लोक व्यय के रूप में प्रतिस्थापित हो जाता है। निरीक्षण प्रभाव के अन्तर्गत युद्ध तथा अन्य किसी संकट काल में लोक व्यय में बढ़ोत्तरी होने पर लोक सत्तार्यों द्वारा समीक्षा की जाती है और बढ़ते लोक व्ययों की वित्त व्यवस्था के समायोजन के लिये सहमति की जाती है।

संकट के समय लोकव्यय में वृद्धि होने पर जनता पर करारोपण का भार बढ़ जाता है लेकिन जनता द्वारा करारोपण के अधिक भार को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। जिसे कर सहनता के रूप में उल्लिखित किया गया।

देश में प्रत्येक संकटकाल के पश्चात अर्थव्यवस्था में लोक सत्तार्यों की भूमिका बढ़ जाती है। इस वृद्धि को भी केन्द्रीयकरण प्रभाव कहा जाता है। जहां पर यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि स्थानीय तथा राज्य सरकारों की तुलना में केन्द्र सरकार के लोक व्यय में तीव्र वृद्धि होती है।

6.5.1 वाइजमैन पीकॉक के नियम की सीमाएँ

वाइजमैन पीकॉक के नियम को आप समझ गये होंगे लेकिन इस नियम के सरल एवं विश्लेषणपूर्ण होने के साथ-साथ यह व्यवहारिक रूप से पूर्ण खरा नहीं उतरता है। यह तर्क ठीक है कि आपातकाल में लोक व्यय में वृद्धि के साथ लोक आगम की व्यवस्था आसानी से हो जाती है लेकिन लोक व्यय की वृद्धि की प्रवृत्ति इस प्रकार इस नियम के अनुसार नहीं पायी जाती है। इस नियम में लोक व्यय में वृद्धि का कारण आपातकाल को बताया है लेकिन आपातकाल के साथ अन्य विकासात्मक व संस्थागत सुधारों के कारण भी लोक व्यय में वृद्धि हो जाती है। सरकार के चुनाव तथा शासन सत्तार्यों पर लगातार कब्जा बनाये रखने के कारण भी लोक आगम तथा लोक व्यय में लगातार वृद्धि होती है। जो इस नियम के लागू होने के आधार नहीं है।

आर्थिक सुधारों के दौर में इस नियम के मुख्य आधारों को अधिक जोर से समर्थन नहीं किया जा सकता है। औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा राजघरानों के विकास के कारण भी इस नियम को गहरा धक्का लग रहा है। जनसंख्या एवं जनसंख्या की बढ़ती आदतें, आवश्यकताओं के कारण भी सरकारों को अत्यधिक लोक व्यय का सहारा लेना पड़ रहा है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में सरकार की घटती भूमिका के सम्बन्ध में भी इस नियम की क्रियाशीलता के ठोस कारण या आधार नहीं ढूँढे जा सकते हैं।

सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्तों का अध्ययन करने के पश्चात यह विश्लेषण उचित होगा कि इन सिद्धान्तों का भारत में कहां तक पालन किया जा रहा है

1. **लाभ का सिद्धान्त-** भारत में सार्वजनिक व्ययों में लाभ के सिद्धान्त का अधिकतम पालन करने का प्रयास किया जा रहा है। इस दृष्टि से व्ययों को विभिन्न विकासात्मक, प्रशासनिक और सुरक्षात्मक कार्यों में इस प्रकार विभाजित किया जाता है कि समाज को अधिकाधिक लाभ मिल सके।
2. **मितव्ययिता का सिद्धान्त-** भारत में सैद्धान्तिक रूप से तो मितव्ययिता के सिद्धान्त को अपनाने पर जोर दिया जाता रहा है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से प्रशासनिक शिथिलता और अकुशलता के कारण इस सिद्धान्त का नाममात्र को ही पालन हो पाता है।
3. **स्वीकृति का सिद्धान्त-** भारत में वैधानिक दृष्टि से स्वीकृति के सिद्धान्त को पूर्ण रूप से अपनाया गया है। इसके अन्तर्गत संसद अथवा विधानसभा से व्ययों की स्वीकृति के पश्चात उनके सम्बन्ध में प्रशासकीय स्वीकृति और तकनीकी स्वीकृति पर भी जोर दिया जाता है। स्वीकृति के सिद्धान्त के पालन की जांच के लिए अकेक्षण का प्रावधान भी है।
4. **बचत का सिद्धान्त-** भारत एक विकासशील राष्ट्र है और आर्थिक नियोजन के माध्यम से विकास योजनाओं में संलग्न है। इस दृष्टि से भारत में बचत के सिद्धान्त का पालन नहीं हो पाया है और प्रायः ज्यों और केन्द्रीय सरकार द्वारा घाटे की वित्त व्यवस्था की नीति अपनायी जा रही है।
5. **लोच का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त को आंशिक रूप से ही अपनाना सम्भव हो सका है, क्योंकि सरकारी कार्य क्षेत्र और उत्तरदायित्वों में वृद्धि होने के कारण व्यय निरन्तर बढ़ते रहे हैं। और आय कम होने पर व्ययों को उसी के अनुसार कम करने में कठिनाइयां रही हैं।
6. **उत्पादन का सिद्धान्त-** सरकार ने नीति के रूप में उत्पादकता के सिद्धान्त को अपनाया है लेकिन मितव्ययिता के सिद्धान्त का पूरा पालन न होने के कारण उत्पादकता के सिद्धान्त का भी पूरी तरह पालन नहीं हो पाता।
7. **समान वितरण का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त का एक बड़ी सीमा तक पालन किया गया है और पिछड़े, अविकसित तथा पहाड़ी क्षेत्रों और निर्धन वर्गों पर बड़ी मात्रा में व्यय किया जा रहा है।
8. **समन्वय का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त को भी लगभग पूरी तरह अपनाया गया है। केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों के मध्य आय और व्ययों के स्रोतों के स्पष्ट विभाजन तथा उचित समायोजन की व्यवस्था है।

6.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्रश्न संख्या-1 लोक व्यय के नियमों की आवश्यकता को संक्षेप में लिखो?

प्रश्न संख्या-2 वैगनर का नियम किन सरकारों के सम्बन्ध में लागू होता है? संक्षेप में लिखो?

प्रश्न संख्या-3 वैगनर के अनुसार लोक व्यय में किस प्रकार की वृद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है?

प्रश्न संख्या-4 सही (V) तथा गलत (x) का चयन कीजिए?

- (क) वैगनर का नियम प्रगतिशील राष्ट्रों में लागू होता है।
- (ख) वैगनर के अनुसार लोक व्यय में केवल गहन वृद्धि की प्रवृत्ति होती है।
- (ग) वाइजमैन पीकॉक का नियम 1890 से 1955 तक के लोक व्यय के अनुभवों पर आधारित है।
- (घ) वाइजमैन पीकॉक के अनुसार लोक व्यय में वृद्धि स्थायी तथा पेढ़ीदार होती है।
- प्रश्न संख्या-5 निम्न कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
- (क) The Growth of Public Expenditure in the United Kingdom पुस्तक सन्.....में प्रकाशित हुई।
- (ख).....का नियम आपातकाल तथा मंदी की स्थिति में लागू होता है।
- (ग) युद्ध उपरान्त जनता में कर सहनशीलता में ...होती है।
- (घ) वैगनर के नियम में,तत्व को स्थान नहीं दिया गया। (समय, वृद्धि, 1961, वाइजमैन पीकॉक)

6.7 सारांश (Summary)

लोक सत्ताओं द्वारा लोक व्यय को उचित तथा कुशलतापूर्ण बनाये रखने के लिए लोक व्यय के नियमों की अत्यन्त आवश्यकता है, ताकि लोक कल्याण के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके। इसी सम्बन्ध में अनेक नियमों का प्रतिपादन किया गया है जिसमें वैगनर तथा वाइजमैन पीकॉक के नियम अपना अलग-अलग महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वैगनर के नियम के अनुसार प्रगतिशील राष्ट्रों में केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारों में विस्तृत तथा गहन स्तर पर लोक व्यय में वृद्धि करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। ये लोक व्यय में प्रवृत्ति अनेक प्रकार के परम्परागत तथा नवीन क्रियाकलापों द्वारा प्रभावित होती है। इसके साथ वैगनर के नियम में समयावधि की उपेक्षा की गयी है जो इस नियम को कमजोर बनाती है।

वाइजमैन पीकॉक का नियम United Kingdom में उनके अनुभवों पर आधारित था। इस नियम के अनुसार आपातकाल में लोक व्यय में वृद्धि स्थायी होने के साथ-साथ स्थिर न होकर पेढ़ीदार अर्थात् सीढीनुमा होती है तथा यह लोक व्यय की प्रवृत्ति जनता पर लगने वाले कर की सहनशीलता द्वारा प्रभावित होती है। अर्थशास्त्रियों द्वारा वाइजमैन पीकॉक के नियम की क्रियाशीलता में अनेक प्रकार के अन्य तत्वों जैसे शहरीकरण, औद्योगीकरण, बढ़ती जनसंख्या एवं उसकी आदतें आदि को शामिल न करने की आलोचना की है।

6.8 शब्दावली (Glossary)

- **आर्थिक विकास-** आर्थिक क्षेत्रों में दीर्घकालीन संस्थागत परिवर्तन ही आर्थिक विकास है परन्तु यह परिवर्तन धनात्मक रूप से होते हैं।
- **केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकार** - केन्द्रीय सरकार से तात्पर्य राष्ट्रीय स्तर की सरकार से तथा स्थानीय सरकार से तात्पर्य ग्रामीण तथा शहरी निकायों की सरकारों से है।
- **विस्तृत और गहन वृद्धि-** विस्तृत वृद्धि से तात्पर्य नये कार्यों एवं मदों पर व्यय वृद्धि से तथा गहन वृद्धि से तात्पर्य पुरानी मदों पर पूर्व से अधिक व्यय करने से है।

- **धन का पुनर्वितरण-** धन के पुनर्वितरण से तात्पर्य लोगों की आय की संरचना में बदलाव से है। सामान्य रूप से गरीबी की आय में वृद्धि करने के प्रयास शामिल किये जाते हैं।
- **वैश्विक अर्थ व्यवस्था-** विश्व के राष्ट्रों की अर्थ व्यवस्थाओं का आपस में आर्थिक मुद्दों पर अन्तर्सम्बन्धित होना ही वैश्विक अर्थव्यवस्था कहलाता है।
- **निजीकरण-** सार्वजनिक संस्थाओं एवं उपक्रमों को निजी स्वामित्व एवं अधिकार में आना ही निजीकरण कहलाता है।
- **आर्थिक सुधार-** देश की अर्थव्यवस्था में ऐसे सुधार जो आर्थिक विकास की गति को तीव्र करते हैं।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

हल- प्रश्न संख्या 4 का उत्तर- (क) सही, (ख) गलत, (ग) सही, (घ) सही

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर- (क) 1961, (ख) वाइजमैन पीकॉक, (ग) वृद्धि, (घ) समय

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची (References/Bibliography)

- भाटिया, एच०एल-(2006) लोक वित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा 0लि0 जंगपुरा, नई दिल्ली
 - पंत, जे0सी-(2005) 0राजस्व (Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।।
 - वाष्णेय, जे0सी -(1997) 0राजस्व, साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पिटल रोड, आगरा।।
 - सिंह, एस0के-(2013) 0लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
-

6.11 सहायक/उपयोगी ग्रंथ (Useful/Helpful Text)

- दत्त एवं सुन्दरम (2011) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द एण्ड क 0लि0, नई दिल्ली।।
 - सेठी, टी0टी-(2005) 0मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।।
 - मिश्र, जगदीश नारायण(2011) –भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल पब्लिशर्स, हरिसदन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।।
-

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 लोक व्यय से सम्बन्धित वैगनर के नियम की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?

2 लोक व्यय के नियमों की आवश्यकता को बताते हुए वाइजमैन पीकॉक नियम की व्याख्या कीजिए?

- 3 विकासशील देशों के संदर्भ में लोक व्यय के नियमों की प्रासंगिता को स्पष्ट कीजिए?
- 4 वैगनर तथा वाइजमैन पीकॉक के नियमों के मुख्य अन्तरो को स्पष्ट कीजिए?

इकाई-7 लोक व्यय का प्रभाव – उत्पादन, वृद्धि, वितरण और स्थिरीकरण (Effects of Public Expenditure-Production, Growth, Distribution and Stabilization)

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 लोक व्यय के प्रभाव
 - 7.3.1 लोक व्यय का उत्पादन पर प्रभाव
 - 7.3.2 लोक व्यय का वृद्धि पर प्रभाव
 - 7.3.3 लोक व्यय का वितरण पर प्रभाव
- 7.4 लोक व्यय एवं स्थिरीकरण
- 7.5 लोक व्यय के प्रभावों की सीमाएँ
- 7.6 अभ्यास प्रश्न
- 7.7 सारांश
- 7.8 शब्दावली
- 7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 7.11 सहायक /उपयोगी पुस्तक सूची
- 7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह लोक व्यय खण्ड की सातवीं इकाई है जो लोक व्यय के प्रभावों पर आधारित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने लोक व्यय के नियमों को भली भांति समझा होगा जिसमें वैगनर तथा वाइजमैन पीकॉक के नियमों पर मुख्य रूप से ध्यान दिया गया। प्रस्तुत इकाई में आप लोक व्यय के अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रभावों से परिचित हो सकेंगे। जिससे उत्पादन, वृद्धि, वितरण और स्थिरीकरण पर पड़ने वाले प्रभावों को शामिल किया गया है। लोक व्यय का उत्पादन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। प्रत्यक्ष प्रभावों के साथ परोक्ष रूप से भी प्रभावित करता है। वृद्धि को तीव्र बनाने में लोक व्यय अत्यधिक उपयोगी है। आय का समान वितरण तथा स्थिरीकरण की दशा में लोक व्यय को सरकारों द्वारा एक उपकरण के रूप में अपनाया जाता है। अतः इन पक्षों पर लोक व्यय के प्रभावों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उत्पादन, वृद्धि, वितरण तथा स्थिरीकरण पर पड़ने वाले लोक व्यय के प्रभावों का विश्लेषण से आप लोक व्यय की अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगिता का अनुमान लगा सकते हैं। लोक व्यय से प्रभावित ये सभी पक्ष आपस में गहरा अन्तसम्बन्ध रखते हैं, जिसे प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप भली भांति समझ सकेंगे।

7.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप भली भांति समझ सकेंगे कि

- ✓ लोक व्यय अर्थव्यवस्था को किस दिशा एवं रूप में प्रभावित करता है तथा इन प्रभावों का स्वरूप क्या है?
- ✓ लोक व्यय का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों को आप भली भांति समझ सकेंगे तथा उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों के स्वरूप को भी आप समझेंगे।
- ✓ आर्थिक वृद्धि पर लोक व्यय का क्या प्रभाव पड़ता है तथा वितरण लोक व्यय द्वारा किस प्रकार एवं किस रूप में प्रभावित होता है।
- ✓ आर्थिक स्थायित्व को बनाये रखने के लिए लोक व्यय कितना सार्थक है तथा यह लोक व्यय से कहां तक प्रभावित होता है।
- ✓ उत्पादन, वृद्धि, वितरण तथा स्थिरीकरण पर पड़ने वाले लोक व्यय के प्रभाव किस सीमा तक क्रियाशील होते हैं?

7.3 लोक व्यय के प्रभाव

प्राचीन काल में लोक व्यय राज्य के क्रिया कलापों को संचालित करने का एक उपकरण था लेकिन वर्तमान में लोक व्यय न केवल राज्य के क्रिया कलापों को चलाने के साथ-साथ सरकारों को चलाने का भी एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है। राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति के अनुसार लोक व्यय का प्रभाव अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग स्तर पर पाया जाता है। इसीलिए लोक व्यय वर्तमान में महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है। सरकारों का मुख्य ध्यान लोक आगम की अपेक्षा लोक व्यय पर केन्द्रित किया जा रहा है। अर्थव्यवस्था का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो लोक व्यय के प्रभाव से अछूता रहता हो।

आपको यहां पर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि लोक व्यय के प्रभाव दो रूपों में पड़ते हैं प्रथमतः प्रभाव आपको स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं तथा द्वितीयतः प्रभावों पर आम जनता की नजर पहुँचना अधिक आसान नहीं है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि द्वितीयतः प्रभाव प्रथमतः प्रभावों से कमजोर हैं। लोक व्यय का कोई भी प्रभाव एक दूसरे से कितना प्रबल व निर्बल है यह इस बात पर निर्भर करता है कि प्रभावित होने वाला क्षेत्र कितना संवेदनशील क्षेत्र है? लोक व्यय के प्रभावों की विवेचना आगे के शीर्षकों के अन्तर्गत भली भाँति रूप से स्पष्ट की जा सकती है।

7.3.1 लोक व्यय का उत्पादन पर प्रभाव

आपको यहां पर लोक व्यय के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों की प्रवृत्ति से परिचित किया जायेगा। लोक व्यय का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का प्राचीन काल में भी महत्वपूर्ण स्थान रहा तथा वर्तमान में भी लोक व्यय अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। अर्थव्यवस्था की प्रकृति किसी भी प्रकार की हो या उसका आकार कैसा भी क्यों न हो? लोक व्यय के बिना उत्पादन सम्बन्धी अनेक निर्णयों को ले पाना सम्भव नहीं है।

लोक व्यय के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण तथ्य पर विचार करना आपके लिए अत्यन्त उपयोगी होगा कि अर्थव्यवस्था के संसाधनों पर स्वामित्व अधिकार की स्थिति क्या है? संसाधनों पर निजी स्वामित्व तथा अधिकार है तो लोक व्यय का प्रभाव उत्पादन पर अलग दिशा में होगा और यदि संसाधनों पर सरकार का स्वामित्व तथा अधिकार है तब लोक व्यय का उत्पादन पर प्रभाव अत्यन्त तीव्र तथा गहन होता है। इसके साथ आर्थिक नियमों की भाँति उत्पादन केवल आर्थिक संसाधनों पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक पर एक बड़ी सीमा तक निर्भर रहता है। उत्पादन से जुड़ा एक अन्य अहम तत्व मानवीय व्यवहार है जो लोक व्यय से काफी है। सरकारों का दायित्व है कि वह अपनी जनता की मूल भूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हरदम प्रयास करें। इस मूल भूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार को ऐसे आवश्यक उत्पादन को अपने हाथों में लेना होता है। ऐसी स्थिति में उत्पादन के सभी साधनों को एकत्रित एवं समायोजित करने के लिए लोक व्यय को एक उपकरण के रूप में अपनाना होता है। सामाजिक आर्थिक सेवाओं के उत्पादन पर भी सरकार को भारी मात्रा में व्यय करना होता है जैसे स्वास्थ्य सुविधाएँ, शिक्षा व्यवस्था, परिवहन सेवाएँ, सुरक्षा व्यवस्था, सिंचाई योजनाएँ, न्यायालय व्यवस्था, जलकल व्यवस्था आदि पर भारी मात्रा में लोक व्यय का सहारा लिया जाता है।

आपको सामान्य रूप से समझाया जा सकता है कि इन उत्पादनों पर लोक व्यय का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। लोक व्यय जितना अधिक होगा उत्पादन का स्तर भी उतना ही ऊँचा होगा। सरकार कुछ उत्पादन कार्य को स्वयं अपने हाथ में नहीं लेती है लेकिन उत्पादन में वृद्धि करने के लिए निजी व्यक्तियों को प्रोत्साहन हेतु लोक व्यय का सहारा लेती है। यह लोक व्यय जनता में उत्पादन बढ़ाने हेतु प्रेरणा पैदा करता है। लोक व्यय का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव को प्रो० डाल्टन के इस कथन से भली भाँति समझा जा सकता है- **"जब सरकार स्वास्थ्य, मकानों और सामाजिक सुरक्षा पर व्यय करती है या बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करती है तो यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विनियोग होता है जो भौतिक पूंजी के स्थान पर मानवीय पूंजी का निर्माण करता है। प्राचीन काल की अपेक्षा वर्तमान सरकारों द्वारा लोक व्यय का उत्पादन पर प्रभाव इस दिशा में बढ़ता जा रहा है।"**

लोक व्यय उत्पादन पर कार्य निवेश तथा बचत के माध्यम से भी प्रभाव डालता है। आपको शायद यह ज्ञात हो कार्य करने की क्षमता निवेश का स्तर तथा बचत करने की क्षमता एक के स्तर तथा गुणवत्ता दोनों पर ही प्रभाव डालता है। लोक व्यय कार्य, निवेश तथा बचत की क्षमताओं एवं स्तर को सीधे तौर पर प्रभावित करता है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना होता है कि सरकार द्वारा किये जाने वाला लोक व्यय कहीं लोगों के मध्य कार्य निवेश तथा बचत को विपरीत रूप से प्रभावित नहीं कर रहा है, ऐसी स्थिति में उत्पादन भी बढ़ने के स्थान पर घटना प्रारम्भ होता है। लोक व्यय में वृद्धि होने पर आर्थिक क्रियाओं का विस्तार होता है जिससे उत्पादन में वृद्धि होना स्वाभाविक है। सरकार को चाहिए कि लोक व्यय को उत्पादन कार्यों पर ही करना चाहिए। अपव्यय तथा अनुत्पादक कार्यों पर किये जाने वाले लोक व्यय का उत्पादन पर प्रभाव वांछित दिशा में नहीं पड़ सकता है। लोक व्यय का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव को एक अन्य दिशा में भी देखा गया है यदि लोक व्यय वर्तमान उत्पादन क्रिया के लिए किया गया है या भविष्य की उत्पादन योजनाओं के लिए। दोनों ही दिशाओं में लोक व्यय का उत्पादन पर अलग-अलग स्तर पर प्रभाव पड़ता है। लोक व्यय से उत्पादन के साधन वर्तमान से भविष्य की ओर हस्तान्तरित होते हैं। जब सरकार द्वारा पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के लिये किसी कार्य योजना पर बल देती है तब संसाधनों का हस्तांतरण भविष्य की ओर होता है और विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ती जाती है परिणाम स्वरूप अर्थव्यवस्था में उत्पादन शक्ति का विकास होता है। साधनों के इस हस्तान्तरण के लिये भारी उद्योग एवं बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओं को प्राथमिकता दी जाती है। इन भारी उद्योग एवं परियोजनाओं पर निजी क्षेत्र की अपेक्षा लोक सत्ताओं द्वारा सही ढंग से कुशलतापूर्ण कार्य किया जा सकता है क्योंकि इस का सम्बन्ध सामूहिक लोक कल्याण एवं राष्ट्र निर्माण से होता है।

विकासशील देशों में राज्य आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिये व्यक्तियों, निजी संस्थाओं को ऋण व अनुदान आदि देता है ताकि ये सब मिलकर अपने-अपने क्षेत्र में साधनों का सदुपयोग कर उत्पादन के स्तर को बढ़ा सके। साधनों के हस्तान्तरण के सम्बन्ध में इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है कि जब साधनों को मानवीय संसाधनों के विकास की ओर हस्तान्तरित किया जाता है तब उत्पादन के स्तर में अनुकूल असर दिखाई देने लगता है इस सन्दर्भ में डाल्टन का कहना है कि **“जब सरकार स्वस्थ, मकानों और सामाजिक सुरक्षा पर व्यय करती है या बच्चों को निशुल्क शिक्षा प्रदान करती है तो यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विनियोग होता है जो भौतिक पूंजी के स्थान पर मानवीय पूंजी का निर्माण करता है।”**

प्राचीन अर्थशास्त्रियों का विचार था कि साधनों के हस्तान्तरण से आर्थिक विकास नहीं किया जा सकता है उनका विश्वास था कि आर्थिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप कम से कम होना चाहिए। यहां यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि राज्य द्वारा साधनों का हस्तान्तरण लाभप्रद हो या हानिप्रद? इस प्रश्न का उत्तर देश की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिये सुरक्षा व्यय को ही लें। आज प्रत्येक देश बाह्य आक्रमण से अपने को सुरक्षित रखना चाहता है। शीत - युद्ध की आशंका से भी देश अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना चाहते हैं कुछ लोग यहां यह भी कह सकते हैं कि यदि सुरक्षा - व्यय में कमी करके इसे विकास कार्यों में लगाया जाता तो देश प्रगति कर सकता था, परन्तु हमेशा यह कथन सत्य नहीं है। यदि देश में हमेशा शान्ति व सुरक्षा बनी रहे, तो इससे देश का निरन्तर विकास होगा देश उत्तरोत्तर आर्थिक प्रगति करता रहेगा। इस प्रकार सुरक्षा सम्बन्धी व्यय रूप से आवश्यक एवं उत्पादक है। परन्तु यहां इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि सुरक्षा- व्यय एक सीमा से आगे न बढ़े। यदि विश्व के सभी राष्ट्र इस

बात के लिये सहमत हो जाते हैं कि 'सुरक्षा परिषद' के ही समान 'विश्व सेना' का गठन कर दिया जाये, जो सब देशों की सुरक्षा के लिये उत्तरदायी होगा, यदि इसके बाद भी कोई राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिये व्यय करता है, तो ऐसा सुरक्षात्मक व्यय अनुत्पादक होगा।

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि यदि सरकार सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए राजनीतिक स्वार्थों से अलग होकर सार्वजनिक व्यय करे तो प्रत्येक प्रकार का सार्वजनिक व्यय उत्पादक हो सकता है।

7.3.2 लोक व्यय का वृद्धि पर प्रभाव

आपको यहाँ पर गम्भीरता से विचार करना होगा कि लोक व्यय का वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का सवाल विकासशील या पिछड़े देशों से मुख्य रूप से जुड़ा हुआ है। विकासशील तथा पिछड़े देश पूंजी की कमी के कारण बेरोजगारी तथा गरीबी की समस्या का सामना कर रहे हैं। लोक व्यय तथा वृद्धि के सम्बन्ध में **लेविस** के इस कथन पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है- **"अर्द्धविकसित देशों में विकास कार्यक्रमों को इस प्रकार लागू करना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का विकास समान रूप से एक साथ हो, ताकि उद्योग और कृषि, उत्पादन और उपभोग तथा उत्पादन और निर्यात में उचित सन्तुलन बना रहे।"**

उक्त कथन के आधार पर आप समझ सकते हैं कि लोक व्यय का वृद्धि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रभाव पाया जाता है। केवल उत्पादन बढ़ाने से वृद्धि की कल्पना नहीं की जा सकती इसके लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के महज सन्तुलन स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है। सभी अर्थशास्त्री इस मत से सहमत हैं कि लोक व्यय आर्थिक वृद्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। वृद्धि को बनाये रखने के लिए बजट में लोक व्यय की वृद्धि बनाये रखने के साथ नयी नयी विकास मदों पर उसका आवंटन करके आर्थिक वृद्धि को तेज किया जा सकता है। वर्तमान में लोक व्यय आर्थिक वृद्धि के लिए एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कारगर उपाय है।

7.3.3 लोक व्यय का वितरण पर प्रभाव

लोक व्यय के उत्पादन तथा वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के बाद अब आप लोक व्यय का वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों को भली भाँति समझ सकेंगे। सामान्य रूप से कर व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन एवं सुधार करके ही आय तथा धन के असमान वितरण को कम करने का प्रभाव सरकारों द्वारा किया जाता रहा है। वर्तमान में ऐसा लगता है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में असमान वितरण की समस्या को दूर करने का सरकारी प्रयास सरकारी कार्यों के संचालन का एक उपकरण बनता जा रहा है। किसी भी अर्थव्यवस्था में धन के समान वितरण की कल्पना करना अर्थव्यवस्था तथा सरकार दोनों के लिए ही एक टेढ़ी खीर सिद्ध होगा।

विकसित देशों में असमान वितरण की समस्या को कम करने के लिए प्रगतिशील करों के प्रयोग को वरीयता दी जाती है। लेकिन यदि निर्धनों पर से कर के भार को हटा लिया जाय तो इसे केवल एक अनुदान के ही रूप में समझ लिया जाय क्योंकि करों को हटाने से किसी भी देश में गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर नहीं किया जा सकता है। यहाँ पर लोक व्यय के प्रभावों पर ध्यान केन्द्रित किया जाय तो विकासशील देशों में प्रगतिशील कर प्रणाली के समान या कहीं अधिक लोक व्यय, आय के असमान वितरण को कम करने में सहायक होता है। प्रगतिशील सरकारें लोक व्ययों को गरीबी दूर करने के एक उपाय के रूप में अत्यधिक ओर से अपना रही हैं।

यहां एक तथ्य यह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि लोक व्यय किसी भी वर्ग या मद पर किया जाय लेकिन उसका अन्तिम प्रभाव गरीब तथा बेरोजगारों पर अनुकूल रूप से अवश्य पड़ता है। अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं बाजार व्यवस्था में गरीबों का योगदान कम नहीं आंका जा सकता है। लेकिन लोक व्यय मीरों पर व्यय करने से उसका प्रभाव गरीबों तक पहुँचने में काफी समय लगता है। वहीं दूसरी ओर सरकार द्वारा लोक व्यय को गरीब वर्ग पर सीधे करके असमान वितरण पर अनुकूल प्रभाव डाला जाता है। प्रायः सभी प्रगतिशील सरकारें इस उपाय का प्रयोग करती रही हैं। सार्वजनिक निर्माण कार्यों पं नवीन विकासात्मक कार्यों पर लोक व्यय द्वारा वितरण व्यवस्था में वांछनीय सुधार लाने का प्रयास सरकारों द्वारा किया जाता है। लोकतांत्रिक सरकारों द्वारा गरीबों के कल्याण के चलायी जाने वाली विभिन्न विकासात्मक तथा गैर-विकासात्मक योजनाएँ पर भारी मात्रा में लोक व्यय किया जाता है जिससे गरीबों की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है जिससे उनकी आय में सुधार के साथ-साथ अर्थव्यवस्था में मांग व पूर्ति शक्तियों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने में सहायता मिलती है। लोक व्यय का वितरण पर कई तरह से प्रभाव डाला जाता है। अतः लोक व्यय के वितरण पर एक तरफा पड़ने वाले प्रभावों का मापन करना इतना सरल कार्य नहीं है लेकिन महत्वपूर्ण आवश्यक है। लोक व्यय का वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों के सम्बन्ध में प्रो० पीगू का मत है कि कोई भी कार्य जो गरीबों की वास्तविक आय के कुल भाग में वृद्धि करता हो सामान्यतया आर्थिक कल्याण में वृद्धि करता है। लोक सत्तायें अपने राज्य के नागरिकों को एक आवश्यक न्यूनतम जीवन स्तर का आश्वासन देती हैं तथा इसके लिये राजकोषीय निति के अन्तर्गत लोक व्यय का इस प्रकार से प्रयोग करती है कि राज्य में व्याप्त बढ़ती आय तथा सम्पत्ति की अवांछनीय विसमता को दूर किया जा सके। लोक व्यय की वह पद्धति अधिक उत्तम मानी जाती है जो आय की असमानता को कम करने की क्षमता रखती हो लोक व्यय के द्वारा वितरण को प्रभावित करने के लिये निम्न विधि का प्रयोग किया जाता है जो वितरण को अलग-अलग रूपों में प्रभावित करती है।

1. आनुपातिक लोक व्यय के द्वारा वितरण को प्रभावित किया जाता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत समाज के व्यक्तियों को उनकी आय के अनुपात में ही लोक व्यय से सम्बन्धित लाभ या सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। जैसे मकान भत्ता में तीन प्रतिशत की वृद्धि कर दी जाये।
2. प्रतिगामी व्यय के द्वारा समाज के लोगों को प्राप्त आय की तुलना में कम अनुपात में लोक व्यय के द्वारा सुविधायें उपलब्ध करायी जाती हैं। विकासशील तथा पिछड़े देशों में गरीबों के लिये आवश्यक सुविधायें उपलब्ध कराने के लिये अमीर वर्ग के लिये इस प्रतिगामी लोक व्यय की रीत को अपनाया जाता है क्योंकि अमीर वर्ग को उनसे प्राप्त आय की अपेक्षा उन्हें कम अनुपात में लोक व्यय की सुविधायें प्राप्त हो पाती हैं।
3. प्रगतिशील लोक व्यय समाज में आय की अपेक्षा अधिक मात्रा में सुविधायें उपलब्ध कराता है। निर्धनों को उपलब्ध होने वाली सार्वजनिक सेवायें उनकी आय से अधिक मात्रा में उपलब्ध करायी जाती हैं। विकासशील तथा पिछड़े देशों में व्याप्त गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी जैसी समस्याओं के समाधान हेतु प्रगतिशील लोक व्यय अत्यन्त ही सार्थक सिद्ध होता है।

लोक व्यय का वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों के सम्बन्ध में निम्न तथ्य भी अत्यन्त उपयोगी है निर्धन वर्ग के लिए निःशुल्क व्यवस्था- सार्वजनिक व्यय की नीति में यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि निर्धन वर्ग के लिए शिक्षा, चिकित्सा एवं बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन की निःशुल्क व्यवस्था होनी चाहिए।

1. **उपादान-** सरकार उत्पादकों और वितरकों को उपादान प्रदान करके यह व्यवस्था कर सकती है कि निर्धन और मध्यम वर्ग के लोगों के लिए खाद्यान्न, वस्त्र एवं मकानों की उचित रियायती दरों पर उपलब्ध कराया जाये।
2. **नकद अनुदान-** कुछ विशिष्ट वर्गों को दिये जाने वाले नकद, अनुदान धन की वितरण व्यवस्था को सन्तुलित बनाने में योगदान देते हैं। इनमें वृद्धावस्था के लिए पेंशन, बीमारी भत्ता, बेरोजगारी भत्ता, मातृत्व भत्ता, विधवाओं के लिए पेंशन अपंगों के लिए सहायता इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है।
3. **पिछड़े क्षेत्रों पर अधिक व्यय-** देश में धन के वितरण की असमानता को कम करने के लिए यह भी आवश्यक है कि सरकार द्वारा अविकसित एवं पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। इससे वहां के लोगों के जीवन स्तर में सुधार होता है और आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है।
4. **लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन-** यदि सरकार विभिन्न वित्तीय सहायता एवं प्रेरणाओं द्वारा लघु और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करती है, तो उससे भी सम्पत्ति के वितरण में सुधार होता है।
5. **उचित वेतन, मजदूरी एवं भत्ते-** सरकार को यह देखना चाहिए कि वेतन भोगी वर्ग को उचित वेतन, मजदूरी एवं भत्ते मिलें। इसके लिए सरकार को निश्चित रूप से व्ययों में वृद्धि करनी होगी। दूसरी ओर निजी उपक्रमों में इस प्रभाव से उद्योगपतियों से कर्मचारी वर्ग के आय का उचित प्रवाह होता रहता है। लोक व्यय का वितरण पर प्रभाव के सम्बन्ध में लुट्ज का यह कथन अत्यन्त ही उपयोगी है। "सार्वजनिक धन के वितरण की स्थायी नीति अपनाने से देश को हानि होगी और यदि इसी उद्देश्य से व्यय किया जाये तो सरकार का अधिकांश व्यय अनुत्पादक माना जाएगा।" इस सम्बन्ध में ब्यूहलर ने स्पष्ट किया कि धन के वितरण की असमानताओं को कम करने के लिये सरकार को गरीबों पर व्यय करके तथा धनी वर्ग पर अधिक करारोपण की रीति को कुछ समय तक लागू करना होगा।

आपको यहां पर लोक व्यय तथा वितरण के सम्बन्ध में कीन्स के विचार को ही ध्यान में रखना होगा। कीन्स के अनुसार निर्धनों में धनी व्यक्तियों की अपेक्षा उपभोग पर व्यय करने की अधिक प्रवृत्ति पायी जाती है और इसी कारण जब धनी वर्ग से धन ले कर गरीबों पर व्यय किया जायेगा तो देश में व्यय के धन की मात्रा बढ़ेगी जिससे उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होगी।

7.4 लोक व्यय तथा स्थिरीकरण

अब आप अर्थव्यवस्थाओं के स्थिरीकरण पर लोक व्यय के पड़ने वाले प्रभावों को भली भांति समझ सकेंगे। आपको यहां पर यह ध्यान देना होगा कि यह आवश्यक नहीं है कि लोक व्यय का प्रभाव सदैव सकारात्मक ही पाया जाय। स्थिरीकरण की समस्या कोई नई समस्या नहीं है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान में भी विकसित देशों के साथ विकासशील देश भी इस समस्या के समाधान के लिए लोक आगम की व्यवस्था के साथ-साथ लोक व्यय की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। सामान रूप से अर्थव्यवस्था को मंदी व तेजी की अनावश्यक

अव्यवस्थाओं से बचाना ही स्थिरीकरण कहा जा सकता है जिसके लिए लोक व्यय को एक आवश्यक उपकरण बनाया गया है।

विकसित देशों में रोजगार तथा वृद्धि की दर चरम सीमा पर होती है अतः व्यापारिक चक्र की समस्या सामान्य रूप से पनपती रहती है जिसके समाधान के लिए लोक व्यय को अत्याधिक महत्व दिया जाता है। वही विकासशील देशों में इस समस्या के समाधान के लिए करारोपण एवं लोक व्यय दोनों ही तत्वों को एक सामन्जस्य के साथ स्वीकार किया जाता रहा है। विकासशील देशों में गरीबी, बेरोजगारी तथा संस्थागत विकास सम्बन्धी अनेक समस्याएँ पायी जाती है। विकासात्मक सरकारों की लोकप्रियता हासिल करने के लिए अपने कार्यों का विस्तार करना होता है जिससे आर्थिक अस्थिरता पैदा होती है। वही दूसरी ओर इस आर्थिक अस्थिरता को दूर करने के लिए करारोपण व्यवस्था के साथ बढ़ते लोक व्यय को बड़ी सीमा तक सहारा लिया जा रहा है लेकिन सरकारों के सामने मुख्य समस्या इस लोक व्यय के लिए मदों का चयन की तथा व्यय के आवंटन की सदैव बनी रहती है। एक तरफ सरकार द्वारा मांग सृजित करने के लिए लोक कल्याणकारी योजनाएं संचालित की जाती है वहीं पूर्ति पक्ष को समायोजित करने के लिए भारी मात्रा में पूंजीगत व्यय किया जाता है। यहां पर आपको यह भी बताना आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में मंदी व तेजी की अवांछनीय अवस्थाओं से निपटने के लिए लोक व्यय सम्बन्धी तत्कालीन उपाय भी किये जाते हैं। मंदी की अवस्था में मांग सृजित करने व क्रय शक्ति बढ़ाने के लिए प्रत्यक्ष तौर पर भारी मात्रा में लोक व्यय किया जाता है वही तेजी की अवस्था में लोक व्यय में कमी करना सम्भव नहीं होता है लेकिन लोक व्यय की दशा एवं क्षेत्र में आवश्यक परिवर्तन किये जाते है जिससे लोक व्यय का प्रभाव आर्थिक स्थिरता बनाये रखने में सहायक सिद्ध हो सके। आर्थिक अस्थिरता की मन्दी काल में घटनाओं का क्रम इस प्रकार से संचालित होता है कि वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में गिरावट आ जाती है जिससे व्यवसाय में सस्ती पैदा हो जाती है। इससे व्यापारियों को हानि होने लगती है और आर्थिक क्षेत्र में निराशा का माहौल पैदा हो जाता है इस आर्थिक मन्दी का उत्पादन तथा रोजगार पर प्रतिकूल रूप से प्रभाव पड़ता है। जनता में क्रय शक्ति घट जाती है।

आपको शायद ध्यान होकि लोक व्यय के द्वारा जनता में क्रय शक्ति बढ़ जाती है जिससे वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग में वृद्धि हो जाती है। इस लोक व्यय के द्वारा बढ़ी हुई क्रय शक्ति का प्रभाव अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर अलग-अलग रूपों में सकारात्मक स्तर पर पड़ता है। लोक व्यय में वृद्धि होने से उपभोग का स्तर बढ़ जाता है जिससे निजी एवं सार्वजनिक विनियोग को प्रोत्साहन मिलता है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के साथ पूर्ण विकसित अर्थव्यवस्थाओं में भी मुद्रा स्फीति की स्थितियां आर्थिक अस्थिरता पैदा करती हैं। जिसे राजकोशीय नीति के माध्यम से नियन्त्रित किया जाता है। राजकोशीय नीति में लोक व्यय को एक महत्वपूर्ण एवं कारगर उपाय के रूप में प्रयोग किया जाता है। मन्दी काल में उठाये गये लोक व्यय सम्बन्धी कदमों के विपरीत इस स्थिति में लोक व्यय में कमी की जाती है। राजकीय व्यय को कम करके मुद्रा स्फीति के खतरनाक प्रभावों को एक बड़ी सीमा तक कम किया जाता है।

आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिये इस बात का विशेष ध्यान रखना होता है कि मन्दी या तेजी की स्थिति में लोक व्यय से सम्बन्धित निर्णय इस प्रकार लिया जाये कि उसका प्रभाव अर्थव्यवस्था में एक तरफा न हो जाये अन्यथा आर्थिक अस्थिरता - मन्दी और तेजी के बीच सदैव बनी रहेगी।

7.5 लोक व्यय के प्रभावों की सीमाएं

आपने इस इकाई के प्रारम्भ में लोक व्यय के उत्पादन, वितरण आदि पर पड़ने वाले प्रभावों को अध्ययन किया। लेकिन इस संदर्भ में आपको यह भी ध्यान रखना होगा कि जिन प्रभावों के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सरकार लोक व्यय करती है वे प्रभाव पूर्ण रूप से प्रभावी नहीं हो पाते हैं। जनता का व्यवहार तथा गैर आर्थिक क्रियाकलाप लोक व्यय के प्रभावों को कम करने में सफल हो जाते हैं। इसके साथ सरकारी योजनाओं तथा क्रियाकलापों का उचित क्रियान्वयन नहीं हो पाने से भी लोक व्यय के प्रभाव सीमित हो जाते हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण सीमा यह भी देखने को मिलती है कि यदि सरकारी लोक व्यय से प्राप्त उद्देश्यों को एक निश्चित समय सीमा में नहीं रखा गया अर्थात् समय तत्व को ध्यान में नहीं रखा गया तो लोक व्यय के प्रभाव एक बड़ी सीमा तक प्रभावित होते हैं। सामान्यतः यह प्रभाव नकारात्मक या प्रतिकूल रूप में ही परिचलित होते हैं। अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप तथा प्राकृतिक आपदाओं आदि कारणों से भी लोक व्यय के प्रभाव पूर्ण रूप से दिखाई नहीं देते हैं।

7.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Question)

निम्न प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए।

- 1- लोक व्यय अर्थव्यवस्था के किन-किन क्षेत्रों को प्रभावित करता है? संक्षेप में लिखो।
- 2- लोक व्यय उत्पादन को किस दिशा में प्रभावित करता है?
- 3- लोक व्यय कौन-कौन सी सेवाओं के लिए प्रयोग किया जाता है?
- 4- नयी विकास योजनाओं पर लोक व्यय को क्यों किया जाता है?
- 5- लोक व्यय के प्रभावों को सीमित करने वाले कारको/तत्वों को संक्षेप में बताओ?
- 6- नीचे दिये कथनों में सही (v) तथा गलत (x) का चयन करें।

(क) लोक व्यय अनुत्पादक भी हो सकता है

(ख) लोक व्यय स्थिरीकरण में सहायक नहीं है

(ग) लोक व्यय धन के असमान वितरण को बनाता है

(घ) आर्थिक वृद्धि पर बढ़ाने में लोक व्यय का प्रभाव अनुकूल होता है

प्रश्न संख्या 7- नीचे दिये गये कथनों में रिक्त स्थानों को पूरा करो।

(क) प्राकृतिक आपदाएँ लोक व्यय के प्रभावों को

करते हैं।

(ख) स्थिरीकरण के लिए कर प्रणाली के साथ भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(ग) लोक व्यय.....तथा.....के अवांछित प्रभावों को नियंत्रित करने में सहायक है।

(घ).....तथा तत्वों पर भी लोक व्यय के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों की निर्भरता पायी जाती है।

7.7 सारांश (Summary)

लोक व्यय के प्रभाव देशों की अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति तथा स्वरूप के कारण अलग-अलग स्तर तथा मात्रा में पड़ते हैं। लोक व्यय का उत्पादन पर सामान्य रूप से अनुकूल प्रभाव पड़ता है। लोक व्यय का स्तर ऊंचा होने तथा

उत्पादक कार्यों पर करने से देश में उत्पादन का स्तर ऊंचा होगा। लोक व्यय उत्पादन पर परोक्ष रूप से निवेश, बचत आदि के माध्यम से भी सकारात्मक प्रभाव डालता है। लोक व्यय के द्वारा वृद्धि को भी तीव्र किया जाता है। विकासशील देशों में विकासात्मक व्यय को अत्यधिक महत्व दिया जा रहा है। विकासशील देशों में आय के असमान वितरण की समस्याएं उत्पन्न हैं जिसका समाधान सरकार द्वारा करारोपण के साथ-साथ लोक व्यय का अधिक प्रयोग किया जा रहा है।

अर्थव्यवस्था के सामने आने वाली एक अन्य मुख्य समस्या अर्थिक अस्थिरता की भी बनी रहती है जिसके समाधान के लिए लोक व्यय का सहारा लिया जाता है। वही लोक व्यय का उत्पादन, वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव सामूहिक रूप से देश की स्थिरीकरण में भी सहायता करते हैं। मंदी तेजी के अवांछनीय प्रभावों को लोक व्यय के द्वारा नियंत्रित किया जाता है। अतः हम सारस्वरूप कह सकते हैं कि लोक व्यय का उत्पादन, वितरण, वृद्धि तथा स्थिरीकरण पर अलग-अलग दिशाओं में भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ते हैं।

7.8 शब्दावली (Glossary)

- **लोक व्यय-** लोक व्यय से हमारा तात्पर्य उस व्यय से है जो सरकारों द्वारा किया जाता है। यह व्यय देश के नागरिकों की रक्षा करने एवं उनके सामाजिक आर्थिक कल्याण हेतु किया जाता
- **उत्पादन-** उत्पादन से तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं को पैदा करने या नया रूप देने से है जिससे उपभोक्ताओं को पूर्व की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि प्राप्त होती है।
- **वितरण-** वर्तमान में आय व सम्पत्ति के वितरण को परिवर्तन करना वितरण कहलाता है ताकि आय व सम्पत्ति जनता में न्यायपूर्ण वितरित हो सके।
- **वृद्धि-** केवल उत्पादन में होने वाली कृत्रिम व स्थिर गति वाले परिवर्तन को आर्थिक वृद्धि कहा जाता है। संस्थागत रूप से दीर्घकालीन परिवर्तन इसमें शामिल नहीं किये जाते हैं।
- **स्थिरीकरण-** स्थिरीकरण से तात्पर्य अर्थव्यवस्था की उस गति से है जिसमें अर्थव्यवस्था बिना किसी विशेष उतार चढ़ाव से लोगों को रोजगार, आय व विकास की स्थितियां उत्पन्न कर सके।
- **मानवीय पूंजी-** मानवीय पूंजी के अन्तर्गत कार्यशील मानव संसाधनों में कार्यकुशलता, विवेकपूर्ण निर्णय क्षमता, शारीरिक विकास, तथा स्वस्थ जीवन चर्या आदि में वृद्धि को शामिल किया जाता है।
- **उत्पादक व अनउत्पादक व्यय-** ऐसा लोक व्यय जिससे अर्थव्यवस्था में उत्पादन में वृद्धि होती है उसे उत्पादक व्यय कहा जाता है जबकि ऐसी मदों पर किया गया व्यय जो किसी प्रकार का उत्पादन पर सकारात्मक प्रभाव नहीं डालता है अनुत्पादक व्यय कहलाता है।
- **पूंजी-** धन का वह भाग जो उत्पादन कार्य में लगा होता है तथा आर्थिक वृद्धि में सहायक है, पूंजी कहलाता है।
- **व्यापार चक्र-** अर्थव्यवस्था में आवश्यक गति के वितरित अवांछित मंदी तथा तेजी की स्थितियों का क्रमवत पाया जाना व्यापार चक्र कहलाता है।

- **आर्थिक विकास-** आर्थिक विकास से हमारा तात्पर्य उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ तकनीकी एवं संस्थागत रूप से होने वाली संरचनात्मक परिवर्तनों से है।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

हल- प्रश्न संख्या 6 का उत्तर

क. सही, ख. गलत, ग. गलत, घ. सही

हल- प्रश्न संख्या 7 का उत्तर

क. मंदी-तेजी, ख. सामाजिक धार्मिक, ग. लोकप्रिय, घ. सीमित

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची (References/Bibliography)

- भाटिया, एच०एल-(2006) लोक वित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा 0लि0 जंगपुरा, नई दिल्ली।
 - पंत, जे0सी-(2005) 0राजस्व (Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
 - वाष्णीय, जे0सी-(1997) 0राजस्व, साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पीटल रोड, आगरा।
 - सिंह, एस0के-(2013) 0लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
-

7.11 सहायक/उपयोगी ग्रंथ (Useful/Helpful Text)

- दत्त एवं सुन्दरम-(2011) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द एण्ड क 0लि0, नई दिल्ली।
 - सेठी, टी0टी-(2005) 0मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।
 - मिश्र, जगदीश नारायण(2011) –भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल पब्लिशर्स, हरिसदन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।
-

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

- 1- लोक व्यय के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन कीजिए?
- 2- लोक व्यय का आर्थिक वृद्धि पर किस रूप में प्रभाव पड़ता है? स्पष्ट करो
- 3- लोक व्यय का वितरण के साथ सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए? प्रश्न संख्या 4- आर्थिक स्थायित्व के लिए लोक व्यय की उपयोगिता को स्पष्ट कीजिए?
- 5- लोक व्यय के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों को सीमित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए?

इकाई - 8 कार्यात्मक वित्त (Functional Finance)

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 कार्यात्मक वित्त से आशय
- 8.4 कार्यात्मक वित्त के उद्देश्य
- 8.5 कार्यात्मक वित्त के नियम
- 8.6 प्रो0 लर्नर के तर्क
- 8.7 कीन्स के विचार
- 8.8 अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में कार्यात्मक वित्त की अनुरूपता
- 8.9 विकसित अर्थव्यवस्था में कार्यात्मक वित्त की सीमा
- 8.10 कार्यात्मक वित्त एवं कार्यशील वित्त
- 8.11 अभ्यास प्रश्न
- 8.12 सारांश
- 8.13 शब्दावली
- 8.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.15 संदर्भ सहित ग्रन्थ
- 8.16 सहायक/ उपयोगी ग्रंथ सूची
- 8.17 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाईयों में सार्वजनिक वित्त से सम्बन्धित विभिन्न जानकारी का विस्तृत उल्लेख किया गया। सार्वजनिक वित्त का उद्देश्य एवं उसके वर्गीकरण की व्याख्या की गयी। प्रस्तुत इकाई में सार्वजनिक वित्त से सम्बन्धित कार्यात्मक वित्त की चर्चा की गयी है। प्राचीन काल में लोक वित्त का क्षेत्र संकुचित होने से अर्थशास्त्री महज यह मानते थे कि राजकोषीय नीति का मुख्य कार्य आय व्यय का लेखा-जोखा करना है। उनके अनुसार सार्वजनिक वित्त का सम्बन्ध सार्वजनिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत आय प्राप्त करके उसे व्यय करना है। परम्परावादी अर्थशास्त्री जैसे एडम स्मिथ, रिकार्डो, मिल करारोपण को केवल आय का साधन मानते थे। इस प्रकार लोक वित्त अकार्यात्मक वित्त के रूप कार्य में करता था। पर ज्यों-ज्यों सरकार के कार्य क्षेत्र में वृद्धि होने लगी, और सरकारी हस्तक्षेप बढ़ता गया, वैसे-वैसे सार्वजनिक वित्त के प्रकृति में भी परिवर्तन होने लगा।

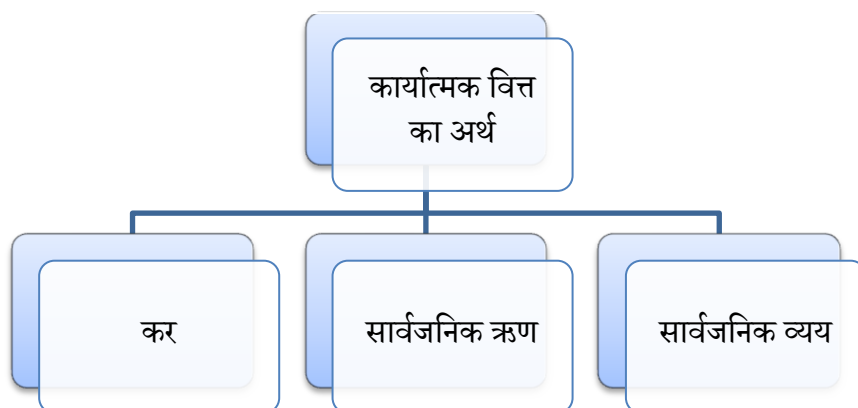
कार्यात्मक वित्त शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकी अर्थशास्त्री प्रो० लर्नर ने किया था। परन्तु वित्त को कार्यात्मक बनाने का श्रेय कीन्स को जाता है। कीन्स द्वारा वित्त का उपयोग मन्दी एवं बेरोजगारी को दूर करने के लिये किया गया। जिन सामान्य उपकरणों की कीन्स ने चर्चा की, कार्यात्मक वित्त के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

8.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह जान सकेगे कि :

- ✓ कार्यात्मक वित्त क्या है ?
- ✓ कार्यात्मक वित्त के उद्देश्य क्या है ?
- ✓ कार्यात्मक वित्त के विभिन्न उपकरण क्या है ?
- ✓ कार्यात्मक वित्त के संदर्भ में प्रो० लर्नर एवं कीन्स के क्या विचार है ?
- ✓ अल्पविकसित एवं विकसित अर्थव्यवस्था में कार्यात्मक वित्त की क्या अनुरूपता है ?
- ✓ कार्यात्मक वित्त एवं कार्यशील वित्त में क्या अंतर है ?

8.3 कार्यात्मक वित्त का आशय (Meaning of Functional Finance)



आधुनिक अर्थशास्त्री के मतानुसार करारोपण का उद्देश्य आर्थिक असमानताओं को कम करना एवं आर्थिक क्रियाओं का नियमन करना है। लार्ड कीन्स (**Lord Keynes**) पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने इस बात पर जोर दिया कि राजस्व की नीतियों द्वारा आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित किया जा सकता है। कीन्स के पश्चात् प्रो० लर्नर (**Prof. Lerner**) ने इस विचार को एक आधुनिक रूप प्रदान किया। प्रो० लर्नर का कहना है जिस ढंग से सार्वजनिक वित्तीय उपाय समाज में कार्य करते हैं उसे कार्यात्मक वित्त कहते हैं। उनका मानना है कि राजकोषीय कार्यवाहियों की जाँच केवल उनके प्रभावों द्वारा ही की जानी चाहिये।

जिस विधि के द्वारा अर्थव्यवस्था में राजकोषीय कार्यवाहियाँ क्रियाशील रहती हैं उसी को प्रो० लर्नर ने कार्यात्मक वित्त का नाम दिया। आज राज्य के सामने अनेक उद्देश्य हैं जैसे – बेरोजगारी दूर करना, सार्वजनिक कल्याण की योजनाएं बनाना, उन पर व्यय करना, यातायात के साधनो करना, निजी उद्योग एवं सार्वजनिक उद्योगों में गति प्रदान करना, वितरण की असमानता को मिटाना आदि। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये लोक वित्त की सहायता ली जाती है। जिन साधनों का प्रयोग इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है, वे कार्यात्मक वित्त के अन्तर्गत आते हैं।

कार्यात्मक वित्त के अर्थ को निम्न बातों से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **कर (tax)**- कार्यात्मक वित्त के अन्तर्गत करों को लगाने का मुख्य उद्देश्य आय प्राप्त करना नहीं है, बल्कि कुछ सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति भी करना है। करारोपण के द्वारा आय की असमानता को दूर किया जा सकता है। जब मुद्रास्फीति की स्थिति हो तो, कर लगाकर अतिरिक्त क्रयशक्ति में कमी आ सकती है। इससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। कार्यात्मक वित्त के कारण ही करारोपण अर्थव्यवस्था में सक्रिय भूमिका निभा रहा है।
2. **ऋण (public debt)**- कार्यात्मक वित्त यह भी स्पष्ट करता है कि ऋण से अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। साथ ही यह भी बताता है कि ऋण का उपयोग कब और कैसे किया जाए।
3. **सार्वजनिक व्यय (public expenditure)**- यदि लोक व्यय से अर्थव्यवस्था पर अनुकूल प्रभाव पड़ रहे हों तो सार्वजनिक व्यय होने चाहिये, अन्यथा नहीं। कार्यात्मक वित्त की सहायता से सार्वजनिक व्ययों को उपयोगी बनाया जा सकता है। अर्थात् उत्पादन, उपभोग, रोजगार, राष्ट्रीय आय में वृद्धि संभव है तो सार्वजनिक व्यय आर्थिक विकास को चरम सीमा तक पहुँचा सकता है।

कार्यात्मक वित्त इस विचार पर आधारित है कि बजट स्थिरता (**budget stability**) के साथ पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने तथा बनाये रखने का एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। इस विचार के अनुसार लोक वित्त मुद्रा स्फीति (**inflation**) तथा मुद्रा अवस्फीति (**deflation**) के मूल कारण को दूर करता है जिससे आर्थिक स्थिरता (**economic stability**) कायम रहती है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रो० लर्नर ने सुझाव दिया है कि कार्यात्मक वित्त के अन्तर्गत सरकार की क्रियाओं के लिये निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाना चाहिए।

1. राज्य को सबसे पहली जिम्मेदारी यह है कि वह खर्च को इस प्रकार नियमित तथा नियन्त्रित

करें कि सभी वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति प्रचलित मूल्यों पर ही पूरी तरह खप जाया खर्च की मात्रा अधिक होने पर मुद्रास्फीति उत्पन्न हो जायेगी और यदि कम हुयी तो मुद्रा अवस्फीति और उसके परिणाम स्वरूप बेरोजगारी उत्पन्न होगी।

8.4 कार्यात्मक वित्त के उद्देश्य

कार्यात्मक वित्त के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है।

1. **रोजगार में वृद्धि :-** देश के लिये बेरोजगारी एक अभिशाप होती है। रोजगार स्तर में वृद्धि करने के लिए कार्यात्मक वित्त की सहायता ली जाती है।
2. **आय स्तर में वृद्धि :-** रोजगार से तो आय प्राप्त होती है परन्तु रोजगार में लगा व्यक्ति भी कुछ समय के बाद अपनी आय में वृद्धि करने में चेष्टा करता है। अतः सरकार बजटों में परिवर्तन करके आय स्तर को प्रभावित करती है।
3. **आर्थिक विकास :-** आर्थिक विकास में सार्वजनिक व्यय, आय तथा ऋण का महत्वपूर्ण योगदान है। कार्यात्मक वित्त के द्वारा आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है।
4. **बचत में वृद्धि :-** आर्थिक विकास के माध्यम से आय स्तर में वृद्धि करके बचतों को बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त करारोपण से उपभोग में कमी करके भी बचते बढ़ायी जा सकती है।
5. **व्यापार चक्रों पर रोक :-** पूंजीवादी व्यवस्था में व्यापार चक्रों की पुनरावृत्ति होती है। व्यापारिक तेजी व मन्दी के समय सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन करके व्यापार चक्रों में रोक लगायी जा सकती है।

8.5 कार्यात्मक वित्त के उपकरण और उनके प्रयोग

जैसे युद्ध में बारूद का प्रयोग होता है, वैसे वर्तमान समय में कार्यात्मक वित्त उतना ही उपयोगी है। जब कभी किसी देश में आर्थिक अस्थिरता जैसे मुद्रा प्रसार, मुद्रा-संकुचन, मन्दी, बेरोजगारी उत्पादन हास जैसी स्थिति उत्पन्न होती है। तब इस स्थिति को नियन्त्रण में लाने के लिये कार्यात्मक वित्त की सहायता ली जाती है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री सरकार का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करते थे। वे उसे घातक मानते थे। उनके अनुसार सरकारी हस्तक्षेप प्रतियोगिता में बाधक होते हे जिससे विकास अवरूद्ध हो उठता है। सरकारी हस्तक्षेप में न निज भावना होती है न निज स्वार्थ। पर वर्तमान समय में लोक कल्याणी राज्यों के विकास के साथ-साथ सरकारी हस्तक्षेप बढ़ने लगा है। आर्थिक उच्चावचन के समय सरकार मूक दर्शक बन कर नहीं रह सकती। सरकार अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करने के लिये निम्न उपकरणों की सहायता लेती है -

1. करारोपण
2. सार्वजनिक व्यय
3. सार्वजनिक ऋण
4. घाटे की वित्त व्यवस्था

ऊपर दिये गये उपकरणों की सहायता से रोजगार, आय की समानता, अल्पविकसित देशों में पूंजी का निर्माण एवं आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है। विभिन्न परिस्थितियों में इन उपकरणों का प्रयोग निम्न प्रकार से होता है।

मुद्रा प्रसार तथा मुद्रा संकुचन में कार्यात्मक वित्त की भूमिका - मुद्रा स्फीति एवं मुद्रा संकुचन से निपटने के लिये तीन राजकोषीय उपकरण हैं।

1. सरकार द्वारा स्वयं क्रय विक्रय करना।
2. नागरिकों को मुद्रा देना और उनसे मुद्रा लेना
3. ऋण देना-लेना।

कार्यात्मक वित्त इस बात की जाँच करता है कि प्रत्येक वित्तीय उपकरण मुद्रा प्रसार या मुद्रा संकुचन को रोकने के लिये किस प्रकार से काम में लाया जा सकता है। वर्तमान में कार्यात्मक वित्त अनेक प्रकार की समस्याओं का समाधान ढूँढ चुका है।

1. सार्वजनिक व्यय :- सरकार को ऊपर यह दायित्व है कि वह अपने व्यय को इस प्रकार नियन्त्रित करे कि

मुद्रा स्फीति एवं मुद्रा संकुचन जैसी स्थितियों से निपटारा हो सके।

a) मुद्रा स्फीति - मुद्रा स्फीति निजी अथवा गैर सरकारी व्यय की अधिकता का परिणाम होती है। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये राजकोषीय अस्त्रों का उपयोग किया जाना चाहिए।

1. कम व्यय करके।
2. नये कर लगाकर एवं चालू करों की दर को बढ़ाकर
3. निजी अथवा गैर सरकारी खर्च की वृद्धि को रोकने के लिये सरकार लोगों से रूप्ये उधार ले सकती है।
4. बैंक दर बढ़ाकर ब्याज की दरों को बढ़ा देना जिससे लोग खर्च कम करें और बचत अधिक।

इसका अर्थ यह है कि आधिक्य बजट की नीति अपनाकर मुद्रा स्फीति सम्बन्धी दबाव को रोका जा सकता है। इस प्रकार आर्थिक स्थिरता भी बनी रहेगी।

b) मुद्रा अवस्फीति :- जिस प्रकार मुद्रास्फीति निजी अथवा गैर सरकारी व्यय की अधिकता से उत्पन्न होता है उसी प्रकार मुद्रा अवस्फीति गैर सरकारी खर्च की कमी का परिणाम होता है। इसे निम्न तरीकों से दूर किया जा सकता है।

- I. करों की दरें घटाकर जिससे लोगों की क्रयशक्ति में वृद्धि हो सके।
- II. सरकार कुछ ऐसी मदों पर अपने व्ययों में वृद्धि कर सकती है जैसे पेन्शन, बेरोजगारी के लाभ आदि। इससे उपभोग में वृद्धि हो सकती है।
- III. व्याज की दर को घटाकर और निवेश व्यय को प्रोत्साहित करके निजी उद्यमियों को उदारता से ऋण दे सकती है।
- IV. जब ब्याज की दर में वृद्धि से निजी उद्यमी प्रेरित नहीं होते तो ऐसे में बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकार को सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों को अपने हाथ में लेना चाहिये।
- V. उत्पादन एवं अनुदान देकर सरकार पिछड़े क्षेत्रों को प्रोत्साहित कर सकती है साथ ही

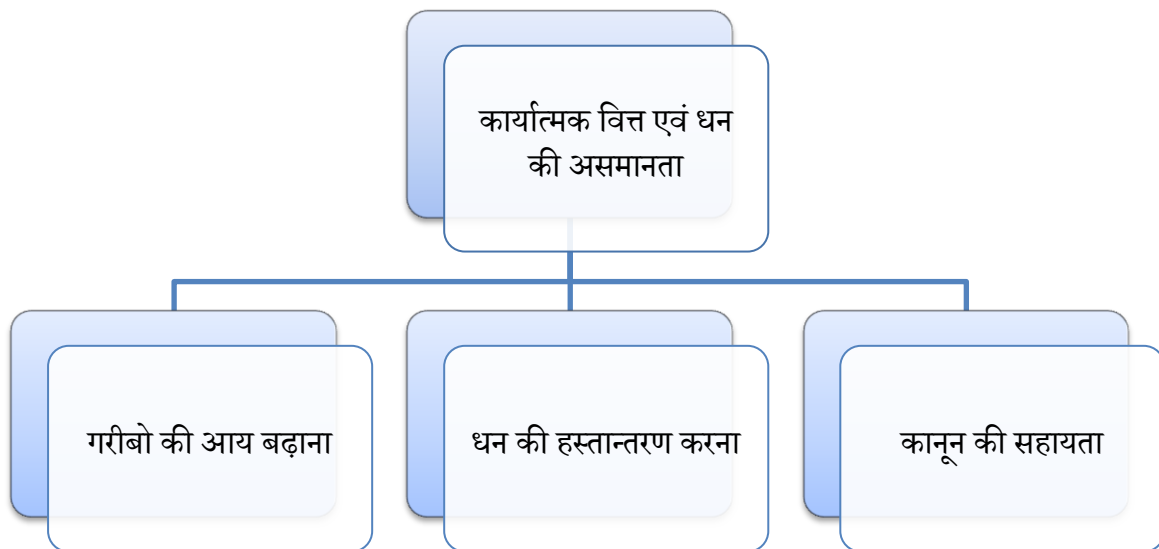
ब्याज मुक्त ऋण देकर भी ऐसे क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहन दे सकती है। ऊपर दिये गये उपाय मन्दी के विरुद्ध है जिससे लोगो में क्रय शक्ति बढ़ सकती है और वे उपभोग व्यय में वृद्धि कर देते है जिससे मांग बढ़ती है और निवेश प्रोत्साहित होता है। अतः यहाँ घाटे का बजट श्रेयस्कर माना जाता है।

2. सार्वजनिक ऋण :- कार्यात्मक वित्त के अनुसार, 'सरकार द्वारा उधार लेने का उद्देश्य स्वयं अधिक धन प्राप्त करना नहीं अपितु यह है कि जनता अपने पास बाण्ड अधिक रखे और मुद्रा कम रखें।' यह लर्नर का मत है। अन्य शब्दों में सरकार को मुद्रा स्फीति की अवधि में उधार लेना चाहिए। और सरकार द्वारा लोगो को केवल तभी धन उधार दिया जाना चाहिए जब यह उचित समझे कि लोगो के पास मुद्रा तो अधिक मात्रा में रहे और बाण्ड कम मात्रा में।

3. करारोपण :- करारोपण के सम्बन्ध में लर्नर ने कहा कि कराधान का उद्देश्य अधिक धन प्राप्त करना नहीं है अपितु यह कि करदाता के पास कम मात्रा में मुद्रा छोड़ी जाए। कर के दो प्रभाव होते है।

1. सरकार के हाथों में मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है।
2. लोगो के हाथों में मुद्रा की मात्रा कम हो जाती है।

पहले प्रभाव का महत्व उतना नहीं जितना की दूसरे का। क्योंकि सरकार नोट छापकर भी मुद्रा की मात्रा को बढ़ा सकती है। मुद्रास्फीति में करों की मात्रा और दर में वृद्धि एवं अवस्फीति में कर की मात्रा और दर में कटौती की जानी चाहिए। अन्य शब्दों में कराधान का महत्व यह है कि यह निजी अथवा गैर सरकारी व्यय को नियमित एवं नियन्त्रित करता है।



4. घाटे की वित्त व्यवस्था :- प्रो० लर्नर के अनुसार यदि सरकार के द्रव्य व्यय की मात्रा चालू द्रव्य आय से अधिक हो और उसकी पूर्ति जनता से ऋण लेकर करना सम्भव न हो तो उसकी पूर्ति घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा अथवा नये नोट छापकर की जानी चाहिए। इस प्रकार पूर्ण रोजगार तथा मूल्य स्थिरता की स्थिति लाने के लिये सरकार को नोटों की छपाई उनका निःसंचय करना (**hoarding**) अथवा उनको नष्ट करना, जो भी उचित हो वो करना चाहिये। अतः कार्यात्मक वित्त का प्रयोजन राजकोषीय या बजट नीति के प्रतिचक्रीय लक्ष्य (**counter cyclical goal of fiscal policy**) को पूर्णतया प्राप्त करना है। अन्य शब्दों में, क्रियाशील वित्त का उद्देश्य अर्थव्यवस्था के चक्रीय उतार चढ़ावो (**cyclical fluctuations**) के चक्रों को नियन्त्रित करना है और पूर्ण

रोजगार तथा मूल्य स्थिरता की स्थिरता को बनाये रखना है। अतः लर्नर के मतानुसार सरकार का बजट इस लक्ष्य से प्रेरित होना चाहिए। प्रो० लर्नर के ही शब्दों में, 'बजट को सन्तुलित करने के सिद्धान्तों को कदापि इतना महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता, जितना की पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाये रखने तथा मुद्रास्फीति को रोकने को माना जाना चाहिये।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि लर्नर ने सन्तुलित अथवा ठोस वित्त के सिद्धान्त पर आधारित राजकोषीय नीति के आधार पर समाप्त करके उसके स्थान पर कार्यात्मक वित्त के सिद्धान्त को प्रतिस्थापित किया।

8.6 बजट के समर्थन में प्रो० लर्नर के विचार (Lerner's arguments in support of balanced budget)

वैसे तो लर्नर ने सन्तुलित बजट का परित्याग करने को कहा परन्तु कुछ परिस्थितियों में इसका समर्थन भी किया। जब सन्तुलित बजट पूर्ण रोजगार की स्थिति को क्षति न पहुँचाता हो, साधनों का अनुकूल उपयोग करता हो, मुद्रास्फीति, अवस्फीति उत्पन्न न करता हो।

नियन्त्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत, जहाँ कि अर्थव्यवस्था के एक काफी बड़े भाग का संचालन व्यवसायी लोगो द्वारा किया जाता है, ऐसे पूर्वाग्रह जहाँ व्यवसायी लोग सरकार को एक व्यवसाय समझते हैं और पूंजीवादी समाज पर अपनी विचारधारा धीरे-धीरे थोप देते हैं। बजट के किसी भी सिद्धान्त से बंधने के प्रति जाने वाला दृढ़ पूर्वाग्रह ही है। ऐसे पूर्वाग्रह महत्व रखते हैं। इन पूर्वाग्रहों के मुकाबले पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने आदि लक्ष्यों का अधिक महत्व है। और व्यवसायी लोगो की केवल इस भावना के कारण इन लक्ष्यों का बलिदान नहीं किया जा सकता कि सरकार को ठोस व्यावसायिक सिद्धान्त "sound business principle" पर दृढ़ता से टिके ही रहना चाहिए। पर यदि ऐसा कोई तरीका है जिससे कि बिना इन लक्ष्यों की बलि चढ़ाये बजट को सन्तुलित बनाया जा सकता है तो निश्चय ही उस पर विचार किया जाना चाहिए।

8.7 कार्यात्मक वित्त एवं कीन्स के विचार

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने लोक वित्त को कार्यात्मक वित्त का रूप नहीं दिया था। उनके अनुसार सरकारी क्षेत्र निजी क्षेत्र के समान कुशल नहीं है। उनका मानना था कि -

1. बचत का बजट होना चाहिये और संभव हो तो सन्तुलित बजट हो।
2. सरकारी हस्तक्षेप न हो।
3. स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार स्वतः ही प्राप्त हो जाता है।
4. बजट छोटा होना चाहिए।
5. कर उपभोग पर लगाना चाहिये, कर पर नहीं।

हालांकि कीन्स परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के इन विचारों को काफी समय तक मानते रहे पर 1930 की महामन्दी ने उन पर गहरा प्रभाव डाला। अपनी पुस्तक "General theory of employment, interest and money"

में उन्होंने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री की पूर्ण रोजगार नहीं, अल्प बेरोजगारी अर्थव्यवस्था में विद्यमान रहती है। सरकारी हस्तक्षेप के महत्व को उजागर करते हुये उन्होंने प्रभावपूर्ण मांग का कम होना बेरोजगारी का कारण बताया जो सरकारी हस्तक्षेप से ही बढ़ाया किया जा सकता है। बेरोजगारी की स्थिति में सन्तुलित, आधिक्य या छोटा बचत कारगर नहीं होता बल्कि घाटे का बजट ही जरूरी होता है। सरकार द्वारा किया गया व्यय लोगो की क्रयशक्ति में वृद्धि करता है जिससे प्रभाव पूर्ण मांग बढ़ती है। उपभोग पर लगने वाले कर को अनुचित बताते हुये उन्होने यह मत प्रस्तुत किया कि इससे वस्तुओं की मांग में कमी हो जायेगी और बेरोजगारी को बढ़ावा मिलेगा। कीन्स के अनुसार सार्वजनिक वित्त की क्रियाएँ देश में उत्पादन एवं रोजगार की प्रभावित करती है। मन्दी के समय सरकार को व्यय बढ़ा देना चाहिये। सार्वजनिक निर्माण कार्यों को बढ़ावा देने से देश में आय एवं रोजगार में वृद्धि होती है। यह वृद्धि गुणक प्रभाव से कई गुना हो जाती है। प्रारम्भिक निवेश से केवल उन उद्योगो की आय में ही वृद्धि नहीं होती है, बल्कि अन्य उद्योगो की आय में भी वृद्धि हो जाती है। कीन्स ने इसे निवेश गुणक (Investment Multiplier) कहा है। ΔI के बराबर विनियोग करने पर आय ΔY के बराबर बढ़ जायेगी तो विनियोग गुणांक होगा।

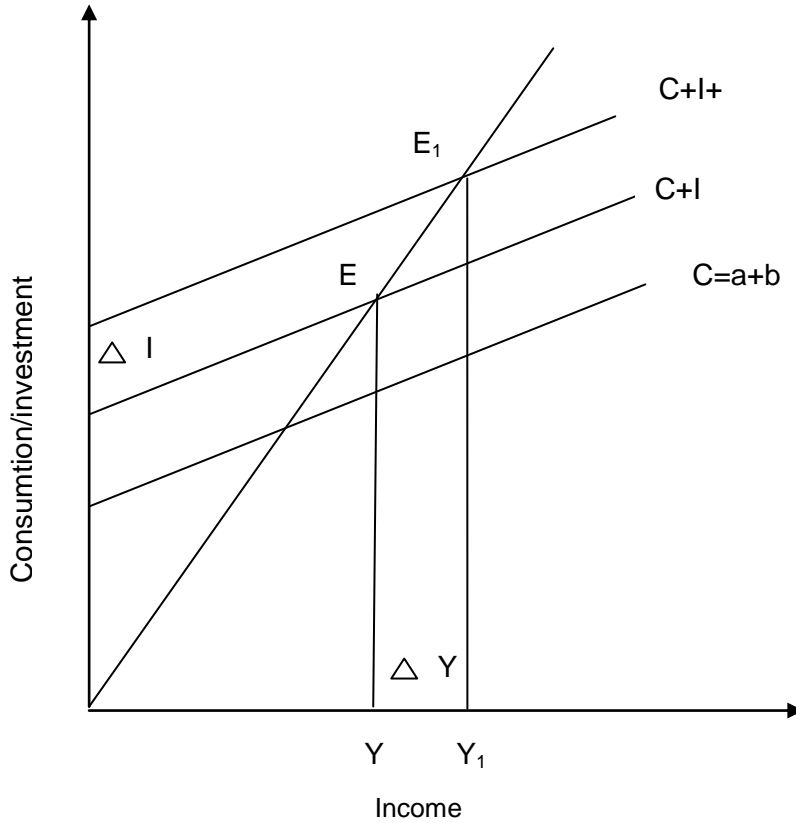
$$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

कीन्स मानते है कि गुणक सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) पर निर्भर करती है :

$$K = \frac{1}{1-mpc}$$

यदि $mpc = 0.5$ है तो 100 करोड़ रूपये के प्रारम्भिक निवेश के फलस्वरूप आय होगी।

$$\begin{aligned} \Delta Y &= K \cdot \Delta I & ; & \quad K = \frac{1}{1-mpc} \\ & & & = \frac{1}{1-0.5} \times 100 \\ & & & = \frac{1}{0.5} \times 100 \\ & & & = 200 \end{aligned}$$



इसे एक चित्र के माध्यम से भी दर्शाया जा सकता है।

प्रारम्भिक अवस्था में संतुलन की स्थिति में $Y=C+I$ है। जहाँ $0Y$ आय प्राप्त होती है। यदि अर्थव्यवस्था में के AI बराबर विनियोग किया जाये तो नयी संतुलन की स्थिति ($Y=C+I+AI$) पर होगी, जहाँ AY आय निश्चित होगी। AI के विनियोग में वृद्धि से YY_1 , (AY) के बराबर आय में वृद्धि होती है।

अतः यह स्पष्ट है कि मन्दी काल में विनियोग बढ़ाकर मन्दी को दूर किया जा सकता है। कीन्स ने पूंजीवादी ढांचे में वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राजकोषीय नीति को अहम् बताया। यह नीति सरकार के लिये एक महत्वपूर्ण उपकरण है जिसके द्वारा सरकार अपने लक्ष्यों को पूरा कर सकती है।

8.8 अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में कार्यात्मक वित्त की अनुरूपता

विकासशील देश चक्रीय समस्याओं में फँसे होने के कारण अपना आर्थिक विकास करने की क्षमता नहीं रखते। इन देशों में पूंजी की कमी, निर्धनता, प्रति व्यक्ति न्यून आय, जनसंख्या का आधिक्य, अशिक्षा कृषि का पिछड़ापन, परम्परावादी अर्थव्यवस्था, आदि अनेक ऐसी बाते हैं जो विकास में बाधक होती हैं। अतः विकासशील देशों में कार्यात्मक वित्त का मुख्य उद्देश्य पूंजी निर्माण तथा आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना है।

1. **अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के लिये अनपयुक्त: (not suitable for underdeveloped economy)** कार्यात्मक वित्त का सिद्धान्त उस राजकोषीय नीति की कसौटी पर खरा नहीं उतरता जो कि एक विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश के आर्थिक विकास के लिये उपयुक्त होती है। आर्थिक विकास की जरूरतें सन्तुलित बजट के माध्यम से सम्पूर्ण नहीं हो सकती।

आर्थिक विकास की जरूरतों की मांग यह होती है कि राजकोषीय या बजट नीति का उपयोग निवेश और बचतों के स्तर को निरन्तर ऊँचा उठाने में किया जाना चाहिये। यही कि विकासशील अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति का आधार कार्यात्मक वित्त के आधार से भिन्न होता है।

2. **व्यापक अर्थव्यवस्था पर आधारित (based upon Macro economy) :-** कार्यात्मक वित्त व्यापक अर्थव्यवस्था के कीन्स मॉडल पर आधारित है और यह मानता है कि अर्थव्यवस्था में विकास की एक निश्चित दर बनी रहे। अतः अर्थव्यवस्था के समस्त व्यय को नियमित व नियन्त्रित करके यह विकास की उस दर पर अर्थव्यवस्था को बनाये रखने का प्रयास करता है। इस प्रकार वह स्थिर या स्थैतिक मॉडल जिस पर कि कार्यात्मक वित्त का सिद्धान्त आधारित है, विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त नहीं है।
3. **अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में महत्व (importance in underdeveloped economy) :-** अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण व्यय के नियमन द्वारा मुद्रा स्फीति या मुद्रा अवस्फीति को रोकने की समस्या को तो गौण ही माना जाता। वहाँ मुख्य समस्या तीव्र गति से अधिक विकास करने की होती है। इसके लिये आवश्यकता है कि निवेशों में लगातार वृद्धि हो तथा उपभोग पर रोक लगे। इस प्रकार अल्पविकसित अथवा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में विकास की समस्या वास्तव में गतिशील अर्थशास्त्र की समस्या होती है।
4. **व्यापक स्थिरता का आधार (basis of macro statics):-** कार्यात्मक वित्त का सिद्धान्त व्यापक स्थिरता का है जबकि आर्थिक विकास के लिए व्यापक गतिशीलता का सिद्धान्त माना जाता है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में कुल व्यय के स्थिरीकरण का अर्थ होगा अल्पविकसित के सन्तुलन की स्थिर दशा और वह आर्थिक विकास की जरूरतों के लिये उपयुक्त नहीं हो सकती।
5. **कराधान का उपयुक्त प्रयोग नहीं (not proper use of taxation) :-** विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में कराधान का उपयोग साधनों की वृद्धि के लिये किया जाना चाहिये। इस प्रकार, सरकारी उधार का उपयोग साधनों को गतिशील करने के एक अस्त्र के रूप में किया जाना चाहिए। परन्तु कार्यात्मक वित्त अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास के सिद्धान्त के पहलू को महत्वपूर्ण नहीं मानता। अन्त में यद्यपि यह सत्य है कि विकासशील अर्थव्यवस्था में निवेशों की मात्रा क्रमशः अधिकाधिक बढ़ती जाती है जिससे मुद्रा स्फीति सम्बन्धी दबाव भी उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अर्थव्यवस्था को अपने कुल व्यय में कटौती करनी चाहिये जैसा कि कार्यात्मक वित्त के सिद्धान्त में बतलाया गया है। आर्थिक विकास की लागत पर मौद्रिक स्थिरता उचित नहीं है।

सार्वजनिक व्यय, करारोपण, सार्वजनिक ऋण, उद्योग आदि ऐसे उपकरण हैं जिन्हें अपनाये बिना आर्थिक विकास सम्भव नहीं। बचतों को प्रोत्साहन देकर पूंजी के निर्माण से विनियोग को बढ़ाया जा सकता है। गुणक व त्वरक से आर्थिक विकास को गति प्रदान की जा सकती है। इस क्रिया से विकासशील देश आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त कीमत स्तर में वृद्धि को रोकना तथा समाज में आय की विषमताओं को दूर करना भी विकासशील देशों में कार्यात्मक वित्त के उद्देश्य हो सकते हैं।

8.9 विकसित अर्थव्यवस्था में कार्यात्मक वित्त की सीमा

कार्यात्मक वित्त की मान्यता है कि अर्थव्यवस्था में विकास की एक निश्चित मान्य दर को प्राप्त किया जाए परन्तु उँची दर से विकास करना भी वांछनीय है। यदि राजकोषीय कार्यवाहियों के द्वारा कल व्यय के स्तर को प्रभावित किया गया वह भी बिना इस बात की परवाह किये कि निवेश की वृद्धि पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है, इससे लोगों की उपभोग प्रवृत्ति को अनुचित बढ़ावा मिल सकता है। उससे कुल उत्पादन की दीर्घकालीन वृद्धि अवरूद्ध हो सकती है। इस प्रकार कार्यात्मक वित्त के सिद्धान्त में चक्रीय उतार-चढ़ाव को रोकने की अल्पकालीन समस्या के समाधान पर ध्यान दिया परन्तु दीर्घकालीन विकास की समस्या पर नहीं।

8.10 कार्यशील वित्त

8.10.1 प्रो0 बलजीत सिंह का दृष्टिकोण

प्रो0 बलराज सिंह ने कार्यात्मक वित्त को कार्यशील वित्त कहा है। उनके अनुसार कार्यशील वित्त में हम वित्तीय विधियों एवं उपकरणों का उनकी कार्य-संरचना पर परीक्षण करते हैं और यह ज्ञात करते हैं कि उपकरणों की अर्थव्यवस्था के लिये क्या उपयोगिता है। राजकोषीय नीति की साधनों की गतिशीलता बनाये रखने तथा आर्थिक विकास में जो भूमिका होती है, उसे कार्यशील वित्त कहा जाता है। कार्यशील वित्त में राज्य द्वारा राजकोषीय समायोजन किया जाता है, जिससे अर्थव्यवस्था में विनियोग का निरन्तर प्रवाह होता रहे और उपलब्ध साधनों का अधिकतम प्रयोग हो सके, ताकि राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो सके।

8.10.2 कार्यशील वित्त की मान्यताएँ :

1. सार्वजनिक व्यय अपूर्ण होने से मांग एवं उत्पादन में साम्य की स्थिति नहीं होती है।
2. राष्ट्रीय आय बचत और विनियोग पर आधारित है।
3. विभिन्न वित्तीय रीतियाँ अर्थव्यवस्था में स्फूर्ति उत्पन्न करती हैं।

कार्यशील वित्त में ऐसे उपाय किये जाते हैं कि विनियोग सदैव होते रहे, इससे उत्पादन एवं रोजगार में वृद्धि होती रहे।

प्रो0 सिंह के अनुसार कीन्स एवं लर्नर के वित्तीय दृष्टिकोण केवल विकसित अर्थव्यवस्था तक ही सीमित हैं। जबकि वास्तविक समस्या अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की होती है। निर्धन देशों में राजकोषीय नीति का इस प्रकार नियमन एवं संचालन करना चाहिये, ताकि उपलब्ध साधनों की इष्टतम प्रयोग करके उत्पादन एवं रोजगार में वृद्धि की जा सके।

8.10.3 कार्यात्मक वित्त एवं कार्यशील वित्त में अंतर

1. कार्यात्मक वित्त इस मान्यता पर आधारित है कि सम्पूर्ण आय व्यय नहीं की जाती जिससे फलस्वरूप प्रभावपूर्ण मांग कम होती है। अतः ऐसी स्थिति में उत्पादन मांग से अधिक होगा और इसलिये कार्यात्मक वित्त का मुख्य कार्य वित्तीय क्रियाओं द्वारा मांग में वृद्धि करना है। इसके विपरीत कार्यशील वित्त की मान्यता है कि कोई देश इसलिये निर्धन है क्योंकि उसकी आय कम है। अतः मुख्य समस्या बचत एवं विनियोग में वृद्धि करके राष्ट्रीय आय को बढ़ाना है।

2. डॉ0 बलजीत सिंह के अनुसार कीन्स एवं लर्नर के विचार विकसित अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित हैं।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में प्रभावपूर्ण मांग बढ़ाना समस्या नहीं है। जैसा कि विकसित अर्थव्यवस्था में होती है। इन अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहित करके उत्पादन बढ़ाना मुख्य लक्ष्य होता है।

3. कार्यात्मक वित्त में व्यय से आरम्भ करते हैं जबकि कार्यशील वित्त में उत्पादन से आरम्भ किया जाता है। प्रो0 वॉन फिलिप का कहना है कि कार्यशील वित्त की धारणा कार्यात्मक वित्त की धारणा से निश्चित रूप से श्रेष्ठ है।

4. बिना रूकावट के चलने वाली अर्थव्यवस्था में भी असाम्य उत्पन्न हो जाता है। इसको ठीक करने के लिये कार्यात्मक वित्त का सहारा लिया जाता है। इसके विपरीत जो अर्थव्यवस्था अविकसित है और अर्थव्यवस्था स्वयं नहीं चल पा रही है, ऐसी अर्थव्यवस्था में वित्तीय नीति द्वारा ऐसे उपाय किये जाते हैं जिससे बचत एवं विनियोग में निरन्तर प्रभाव बना रहे तथा उपलब्ध साधनों का इष्टतम प्रयोग किया जा सके, यह कार्यशील वित्त में ही सम्भव है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी देश के विकास के लिये प्रथम चरण में कार्यशील वित्त तथा विकास के अंतिम चरण में कार्यात्मक वित्त का प्रयोग करके कोई भी देश अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

8.11 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बजट गुणांक क्या है
2. कार्यात्मक वित्त का विचार सर्वप्रथम किसने दिया ?
3. कार्यशील वित्त विचार किस अर्थशास्त्री के द्वारा दिया गया ?
4. कार्यात्मक एवं क्रियाशील वित्त में क्या अन्तर है।

8.12 सारांश (Summary)

कार्यात्मक वित्त शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकी अर्थशास्त्री प्रो० लर्नर ने किया था। परन्तु वित्त को कार्यात्मक बनाने का श्रेय कीन्स को जाता है। प्रो० लर्नर का कहना है जिस ढंग से सार्वजनिक वित्तीय उपाय समाज में कार्य करते हैं उसे कार्यात्मक वित्त कहते हैं। उनका मानना है कि राजकोषीय कार्यवाहियों की जाँच केवल उनके प्रभावों द्वारा ही की जानी चाहिये। सरकार अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करने के लिये निम्न उपकरणों की सहायता लेती है - करारोपण, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण, घाटे की वित्त व्यवस्था। कार्यात्मक वित्त के अन्तर्गत करों को लगाने का मुख्य उद्देश्य आय प्राप्त करना नहीं है, बल्कि कुछ सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति भी करना है। कार्यात्मक वित्त यह भी स्पष्ट करता है कि ऋण से अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। इसकी सहायता से सार्वजनिक व्ययों को उपयोगी बनाया जा सकता है। कार्यात्मक वित्त इस विचार पर आधारित है कि बजट स्थिरता के साथ पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने तथा बनाये रखने का एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। राज्य को सबसे पहली जिम्मेदारी यह है कि वह खर्च को इस प्रकार नियमित तथा नियन्त्रित करें कि सभी वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति प्रचलित मूल्यों पर ही पूरी तरह खप जाय। रोजगार स्तर में वृद्धि करने के लिए कार्यात्मक वित्त की सहायता ली जाती है। सरकार बजटों में परिवर्तन करके आय स्तर को प्रभावित करती है। कार्यात्मक वित्त के द्वारा आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है। प्रो० बलराज सिंह ने कार्यात्मक वित्त को कार्यशील वित्त कहा है। उनके अनुसार कार्यशील वित्त में हम वित्तीय विधियों एवं उपकरणों का उनकी कार्य-संरचना पर परीक्षण करते हैं।

और यह ज्ञात करते हैं कि उपकरणों की अर्थव्यवस्था के लिये क्या उपयोगिता है। प्रो० सिंह के अनुसार कीन्स एवं लर्नर के वित्तीय दृष्टिकोण केवल विकसित अर्थव्यवस्था तक ही सीमित हैं। जबकि वास्तविक समस्या अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की होती है। निर्धन देशों में राजकोषीय नीति का इस प्रकार नियमन एवं संचालन करना चाहिये, ताकि उपलब्ध साधनों की इष्टतम प्रयोग करके उत्पादन एवं रोजगार में वृद्धि की जा सके।

8.13 शब्दावली (Glossary)

- **प्रभावी माँग :-** वह बिन्दु जहाँ समग्र माँग एवं समग्र पूर्ति एक दूसरे को काटते हैं।
- **गुणक :-** निवेश में परिवर्तन से आय में कई गुना परिवर्तन।
- **त्वरक :-** उपभोग वस्तुओं की माँग में परिवर्तन के फलस्वरूप पूँजीगत वस्तुओं के विनियोग में परिवर्तन।
- **मुद्रा संकुचन :-** मुद्रा अवस्फीति की दशा।
- **घाटे की वित्त व्यवस्था :-** सरकार द्वारा आय की तुलना में व्यय की अधिकता के कारण नये नोट छापना।

8.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

1. आय में वृद्धि/ बचत में वृद्धि
2. प्रो० लर्नर
3. डा० बलजीत सिंह
4. कार्यात्मक वित्त में व्यय को केन्द्र माना गया है जबकि कार्यशील वित्त में उत्पादन को केन्द्र माना गया है। जबकि कार्यशील वित्त में उत्पादन को केन्द्र माना गया है।

8.15 संदर्भ ग्रंथ सूची (References/Bibliography)

- बी०पी००त्यागी :- लोक वित्त, जय प्रकाश एवं कम्पनी, मेरठ, 2004 |
- डा०वी०सी०सिन्हा एवं पुष्पा सिन्हा - अर्थशास्त्र, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, आगरा, 2003
- टी०एन०हजेला – राजस्व के सिद्धान्त, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा० लि० दिल्ली 2004
- जे०सी०वाष्णेय – लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2003
- डा०जे०सी०पन्त एण्ड प्रो०जोशी – राजस्व, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 2002
- वाष्णेय एवं श्रीवास्तव – राजस्व, एस०बी०पी०डी०पब्लिकेशन्स, आगरा, 2003

8.16 सहायक/ उपयोगी ग्रंथ सूची (Useful/Helpful Text)

- Houghton, E. W. (Ed.) ((1988, Public Finance, Penguin, Baltimore.
- Jha, R. ((1998, Modern Public Economics, Routledge, London.

- Mithani, D. M. ((1998, Modern Public Finance, Himalaya Publishing House. Mumbai.
- Musgrave, R. A. and P. B. Musgrave ((1976, Public Finance in Theory and Practice McGraw Hill, Kogakusha, Tokyo.

8.17 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. कार्यात्मक वित्त क्या है ? आधुनिक आर्थिक विकास में यह किस प्रकार उपयोगी है ?
2. कार्यात्मक वित्त और कार्यशील वित्त में भेद स्पष्ट कीजिये ? क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि विकसित एवं अर्द्धविकसित देशों में राजकोषीय नीति के उद्देश्य में भिन्नता होती है।
3. मुद्रा प्रसार व मुद्रा संकुचन में वित्त की क्या भूमिका है ?

इकाई 9 करारोपण के सिद्धान्त एवं वर्गीकरण (Canons and Classification of Taxation)

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 करारोपण एवं सिद्धान्त
 - 9.3.1 करारोपण का आशय
 - 9.3.2 करारोपण एवं सिद्धान्तों के मध्य सम्बन्ध
- 9.4 करारोपण के सिद्धान्त
 - 9.4.1 करारोपण के मुख्य सिद्धान्त
 - 9.4.2 करारोपण के न्याय सम्बन्धी सिद्धान्त
 - 9.4.3 करारोपण के अन्य सिद्धान्त
- 9.5 करारोपण का वर्गीकरण
- 9.6 करारोपण की आवश्यकता
- 9.7 अभ्यास प्रश्न
- 9.8 सारांश
- 9.9 शब्दावली
- 9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 9.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
- 9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई, तृतीय ब्लाक लोक राजस्व एवं बजटिंग से सम्बन्धित नवीं करारोपण के सिद्धान्त एवं वर्गीकरण पर आधारित हैं इससे पूर्व की इकाई के अन्तर्गत आपने राजस्व से सम्बन्धित अनेक पक्षों के बारे में अध्ययन किया होगा। इस इकाई के अन्तर्गत लोक सत्ताओं या सरकारों द्वारा लगाये जाने वाले विभिन्न करों से सम्बन्धित सिद्धान्तों से भली भाँति परिचित हो पायेंगे। सर्वप्रथम आप करारोपण का आशय समझने के साथ करारोपण एवं इसके लिए आवश्यक सिद्धान्तों के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन करेंगे। करारोपण के विभिन्न सिद्धान्त राजस्व तथा सार्वजनिक उद्देश्यों के विभिन्न पक्षों से अलग-अलग सम्बन्धित हैं। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत करारोपण के मुख्य सिद्धान्तों के साथ सामाजिक न्याय के लिए आवश्यक सिद्धान्तों को भी आप भली-भाँति समझ सकेंगे। करारोपण के अन्य सिद्धान्तों का भी आप अध्ययन करेंगे जो एक अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

करारोपण के सिद्धान्तों को भली-भाँति समझने के बाद आप करारोपण के वर्गीकरण को समझेंगे जो करों की प्रकृति एवं आवश्यकता के आधार पर किये गये हैं। आपको यह विदि हो कि करारोपण के द्वारा सरकार किन-किन उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहती है। इसे भली-भाँति समझने के लिए प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत करारोपण की आवश्यकता को भी स्पष्ट किया गया है। करारोपण के सिद्धान्तों एवं वर्गीकरण की उपयोगिता किसी एक देश की सरकार के लिए ही नहीं अपितु समस्त प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के कुशल संचालन के लिए अत्यन्त आवश्यक समझी गयी है।

9.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई 'करारोपण के सिद्धान्त एवं वर्गीकरण' के अन्तर्गत आप समझ सकेंगे कि :

- ✓ करारोपण की क्या अवधारणा है तथा इसका विस्तृत अर्थ क्या है? जिसके कारण इसका राजस्व में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।
- ✓ किसी भी सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था के सफल एवं कुशल क्रियान्वयन के लिए राजस्व की पूर्ति के करारोपण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए।
- ✓ आप समझ सकेंगे कि करारोपण का सामाजिक न्याय तथा आर्थिक स्थिरता से क्या सम्बन्ध है जो किसी भी देश की सरकार के लिए अत्यन्त उपयोगी है।
- ✓ करारोपण का वर्गीकरण क्या है तथा यह वर्गीकरण किन आधारों पर किये गये हैं तथा अर्थव्यवस्था के लिए इनकी क्या प्रासंगिकता है।
- ✓ आप अध्ययन कर समझ सकेंगे कि करारोपण की आवश्यकता किसी देश की सरकारों एवं लोकसत्ताओं के लिए क्यों होती है।

9.3 करारोपण एवं सिद्धान्त

इस इकाई के इस भाग के अन्तर्गत आप अध्ययन कर सकेंगे कि करारोपण का क्या आशय है? एवं करारोपण के साथ इससे सम्बन्धित सिद्धान्तों के मध्य क्या अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

9.3.1 करारोपण का आशय- आपको यहाँ पर स्पष्ट रूप से समझना होगा कि कर एवं करारोपण एक ही अवधारणा नहीं है। सामान्य रूप से करारोपण को कर के ही रूप में परिभाषित किया जाता रहा है। लेकिन करारोपण तथा कर एक दूसरे के पूरक रूप में ही हैं। प्रथमतः आपको कर की अवधारणा को स्पष्ट किया जाय। कर जनता पर लगाया गया वह अनिवार्य भुगतान है जिसे सरकार द्वारा अनिवार्य रूप से एकत्रित किया जाता है तथा उसे सार्वजनिक कार्यों पर सामान्यतः व्यय कर दिया जाता है।

डॉल्टन के अनुसार, “कर किसी सार्वजनिक सत्त द्वारा लगाया गया एक अनिवार्य अंशदान है भले ही इसके बदले में करदाताओं को उतनी सेवाएं प्रदान की गयी हों अथवा नहीं। यह किसी कानूनी अपराध के दण्डस्वरूप नहीं लगाया जा सकता।”

बेस्टेबिल (Bastable) के शब्दों में कर को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है, “कर किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की सम्पत्ति का वह भाग होता है जो सार्वजनिक सेवाओं को चलाने के लिए अनिवार्य रूप से बसूल किया जाता है।”

अर्थशास्त्री शिराज ने भी कर को निम्नवत स्पष्ट किया है, “कर सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा बसूल किया जाने वाला वह अनिवार्य भुगतान है जो सार्वजनिक भलाई के खर्च को पूरा करने के लिए लिया जाता है और उसका किसी विशेष लाभ से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।” कर की अवधारणा को स्पष्ट करके आपको करारोपण की अवधारणा को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

9.3.2 करारोपण एवं सिद्धान्तों के मध्य सम्बन्ध

लम्बे समय से ही सरकारों के क्रियाकलापों में वृद्धि के साथ अनेक प्रकार के उद्देश्यों में भी परिवर्तन पाया गया है। सरकार द्वारा अपनी अर्थव्यवसा संचालन के लिए वित्तीय व्यवस्था अनेक प्रकार के उपायों द्वारा की जाती रही है। करारोपण उनमें से एक महत्वपूर्ण उपाय के रूप में जाना जाता है। सरकार के ऊपर लगातार बढ़ती जिम्मेदारियों के मद्देनजर यह भी आवश्यक होता है कि सरकार की व्यवस्थाओं का सर्वाधिक लाभ किस वर्ग या व्यक्ति को प्राप्त हुआ है तथा किस वर्ग को किसी भी प्रकार का लाभ प्राप्त नहीं हो सका। सरकार को देश में वित्तीय व्यवस्था को सचारु बनाये रखने के साथ शान्ति व्यवस्था तथा सामाजिक सुरक्षा आदि का भी ध्यान रखना होता है। इसीलिए करारोपण को एक अत्यन्त विचारणीय बिन्दु के रूप में देखा गया है। सरकार की वित्तीय व्यवस्थायें भी पूर्ण हों तथा जनता में भी शान्ति तथा सुरक्षा व्यवस्था बनी रहे इसके लिए किसी सामान्य से पैमाने से काम चलने वाला नहीं है। करारोपण के विभिन्न सिद्धान्त सरकार तथा जनता से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन कर आधारित किये गये हैं। इसीलिए इन सिद्धान्तों की प्रासंगिकता प्राचीन से वर्तमान में भी बनी हुई है। वर्तमान में कर प्रणाली इतनी विस्तृत है कि करारोपण के बिना सरकार के क्रियाकलापों को संचालित कर पाना सम्भव नहीं होगा। कल्याणकारी राज्यों में करारोपण के साथ-साथ करारोपण के सिद्धान्त भी समकक्ष रूप में देखे जाने लगे हैं। अतः सिद्धान्तों की अवहेलना करके करारोपण को सफल नहीं बनाया जा सकता है।

9.4 करारोपण के सिद्धान्त

करारोपण का आशय एवं सिद्धान्तों के साथ सम्बन्धों को समझने के बाद आपको यह भी भली-भाँति समझना आवश्यक होगा कि करारोपण के लिए उचित एवं अनुचित का निर्धारण

करने वाले सिद्धान्त कौन-कौन से हैं। अध्ययन की आसानी के लिए यहाँ पर करारोपण के सिद्धान्तों को तीन रूपों में स्पष्ट किया गया है। करारोपण के मुख्य सिद्धान्त, करारोपण के न्याय सम्बन्धी सिद्धान्त तथा करारोपण के अन्य सिद्धान्त।

9.4.1 करारोपण के मुख्य सिद्धान्त

करारोपण के मुख्य सिद्धान्तों के अन्तर्गत उन सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे जिनको करारोपण के समय मुख्य रूप से ध्यान में रखा जाता है। ये मुख्य सिद्धान्त निम्नवत् रूप से स्पष्ट किये जा सकते हैं :

(1) एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्त : 1776 में प्रकाशित पुस्तक 'राष्ट्रों के धन के स्वरूप एवं कारणों की खोज' (*An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations*) में एडम स्मिथ ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया वे निम्नवत् हैं :

क. निश्चितता का सिद्धान्त (Canon of Certainty) : एडम स्मिथ के ही शब्दों में, "प्रत्येक व्यक्ति को जो कर देना है, वह निश्चित होना चाहिए मनमानापन नहीं। भुगतान का समय, भुगतान की जाने वाली राशि, करदाता तथा प्रत्येक अन्य व्यक्ति को स्पष्ट होना चाहिए।" यह सिद्धान्त इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि करारोपण के द्वारा सरकार एवं करदाता दोनों में से किसी को कोई असुविधा का सामना न करना पड़े। कर की राशि, समय, तथा अन्य महत्वपूर्ण तथ्य स्थिर तथा स्पष्ट हो ताकि कर के संग्रहण में अनावश्यक विवादों से बचा जा सके। कर देने वाले एवं कर लेने वाले दोनों को कर के बारे में पूर्ण एवं स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। यह सिद्ध करदाता एवं करारोपण करने वाली संस्था या सत्ता दोनों के लिए ही अत्यन्त लाभदायक माना गया है। कर सम्बन्धी निश्चितता होने पर करदाता को समय से पूर्ण करक चुकाने में अनावश्यक परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता है।

ख. समानता का सिद्धान्त (Canon of Equality) : करारोपण के इस सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "प्रत्येक राज्य की प्रजा को सरकार के लालन-पालन के लिए, जहाँ तक सम्भव हो, अपना अंशदान अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार देना चाहिए अर्थात् उस आय के अनुपात में जिसका आनन्द वे राज्य की संरक्षता में प्राप्त करते हैं।" यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कर देने वाले व्यक्ति पर अनावश्यक या आवश्यकता से अधिक करारोपण नहीं करना चाहिए। राज्य का संरक्षण से प्राप्त लाभों के आधार पर ही करारोपण का आकार निश्चित होना चाहिए। इस सिद्धान्त में राज्य की संरक्षता तथा कर की मात्रा के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट करना एक कठिन कार्य है। इसके साथ कर पर प्रतिफल की बाध्यता लागू करने के सम्बन्ध में भी यह सिद्धान्त न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता है। देश में गरीब, बेरोजगार, बीमार व्यक्ति राज्य की संरक्षता के अनुपात में कर का भुगतान करने में समर्थ नहीं कहे जा सकते हैं।

ग. मितव्ययिता का सिद्धान्त (Canon of Economy) : एडम स्मिथ के इस सिद्धान्त को शुद्ध आर्थिक सिद्धान्त कहा जा सकता है। एडम स्मिथ के अनुसार, "प्रत्येक कर इस तरह लगाया और बसूल किया जाना चाहिए कि उसके द्वारा सरकारी कोष में जितना द्रव्य आये उससे बहुत अधिक मात्रा में जनता की जेब से द्रव्य न निकाला जाय, अथवा जनता द्वारा दिये जाने वाले कर का सरकारी कोष में आने वाली रकम से आधिक्य न्यूनतम हो।"

घ. सुविधा का सिद्धान्त :- इस सिद्धान्त की वास्तविकता में जाने पर आप समझेंगे कि सरकार के पास अत्यधिक मात्रा में करारोपण से प्राप्त राशि अनावश्यक नहीं आनी चाहिए अन्यथा उस राशि का प्रयोग पूर्ण कुशलता के साथ नहीं हो सकेगा। यह सिद्धान्त सरकार की कार्यकुशलता पर नियंत्रण रखने पर ध्यान देता है। सुविधा का सिद्धान्त : इस सिद्धान्त के अनुसार करदाता को कर देने में किसी भी प्रकार की असुविधा नहीं होनी चाहिए। यह करदाता को कर के भगतान में किसी भी प्रकार की असुविधा होने पर करदाता को कर का भार अधिक सहना पड़ता है। एडम स्मिथ के अनुसार, **“प्रत्येक कर ऐसे समय और इस ढंग से लगाया जाय कि करदाता को भुगतान की सुविधा हो। प्रायः देखा जा सकता है कि प्रत्येक करदाता कर का सुविधाजनक रूप से भुगतान करना चाहता है।”**

(2) लोच का सिद्धान्त : अर्थव्यवस्थाओं के विकास एवं प्रकृति के अनुसार लोच का सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी तथा महत्वपूर्ण रूप में देखा जा सकता है। अर्थव्यवस्थाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप सरकारें करारोपण में आवश्यक परिवर्तन कर सकती हैं। ताकि देश में आर्थिक संकट का सामना न करना पड़े। कर प्रणाली में लोच की कमी के कारण करदाता एवं सरकार दोनों को ही अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

(3) उत्पादकता का सिद्धान्त : इस सिद्धान्त के अनुसार कर प्रणाली इस प्रकार की हो ताकि अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव उत्पादकता बढ़ाने वाले हों। कर प्रणाली का सम्बन्ध केवल कर देने एवं कर एकत्रित करने तक ही सीमित नहीं रह जाता है बल्कि कर प्रणाली एक अर्थव्यवस्था का केन्द्र बिन्दु होता है। कर एकत्रण की लागत पर कर प्राप्त की राशि आधिक्य होने पर भी उत्पादकता के रूप में देखा जाता है। इसके साथ उत्पादकता का सिद्धान्त भविष्य में करारोपण की प्रवृत्ति में वृद्धि बनाये रखने पर जोर देता है। यह सिद्धान्त उत्पादकों की उत्पादन वृद्धि, आय एवं बचत में वृद्धि की प्रवृत्ति, एवं उपभोग पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है।

(4) विविधता का सिद्धान्त : करारोपण का विविधता का सिद्धान्त वर्तमान में गतिशील अर्थव्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सरकारें करारोपण के लिए केवल किसी एक मद पर ही निर्भर नहीं रह सकती हैं क्योंकि एक स्रोत से सरकार के क्रियाकलापों के लिए वित्त की पूर्ण व्यवस्था नहीं की जा सकती है। इस सिद्धान्त के अनुसार कर प्रणाली में अनेक प्रकार के कर होने चाहिए जिन्हें जनता की आर्थिक स्थिति के अनुसार अलग-अलग व्यक्तियों एवं वस्तुओं पर लगाया जा सके। इससे करारोपण का प्रभाव समस्त अर्थव्यवस्था पर फैलाने में सहायता मिलती है। एक कर प्रणाली से अर्थव्यवस्था का कुछ क्षेत्र कर प्रणाली से बाहर ही रह जायेगा और सरकार के लिए एक नई समस्या पैदा होगी।

9.4.2 करारोपण के न्याय सम्बन्धी सिद्धान्त

समय-समय पर अर्थशास्त्रियों द्वारा जनता के साथ आर्थिक रूप से न्याय बनाये रखने के लिए अनेक प्रयास किये गये हैं। न्याय सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया गया है जो मुख्य रूप से निम्नवत हैं :

- 1. कर देय योग्यता सिद्धान्त :** करारोपण के मुख्य एवं बहुत पुराने कर देय योग्यता सिद्धान्त (**Ability to pay theory**) का प्रतिपादन 16वीं शताब्दी में जॉन बोर्डिन और 18वीं शताब्दी में बिलियम पेटी और एडम स्मिथ ने किया था। इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में एडम स्मिथ का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि, **“प्रत्येक राज्य की जनता को राज्य की सहायता हेतु अपनी योग्यतानुसार अनुपात में अंशदान करना**

चाहिए अर्थात् उस आय के अनुपात में देना चाहिए जो कि वे राज्य के संरक्षण में प्राप्त करते हैं।" इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति की कर देने की योग्यता का निर्धारण करके करारोपण करना चाहिए ताकि वह उस कर का भुगतान आसानी से कर सके। यहाँ पर यह अत्यन्त साधारण सत्य है कि निर्धन वर्ग के व्यक्तियों की कर देने की क्षमता या योग्यता कम होती है। अतः निर्धनों पर कर का आरोपण करके कम मात्रा में अंशदान लिया जाय। इसके विपरीत धनीवर्ग के व्यक्तियों की कर देने की योग्यता अधिक होती है। अतः धनी वर्ग पर करारोपण द्वारा अधिक मात्रा में कर का अंशदान प्राप्त किया जाना चाहिए। इसी लिए सरकार द्वारा शासन को कुशलतापूर्ण चलाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं के अनुसार अंशदान कर देना चाहिए या सरकार द्वारा बसूला जाना चाहिए। कर देय योग्यता के निर्धारण के लिए भावनात्मक तथा आन्तरिक दृष्टिकोणों की सहायता की आवश्यकता होती है।

2. **सेवा लागत सिद्धान्त** : यह आपको विदित है कि लोक सत्तार्ये सार्वजनिक कार्यों का निष्पादन करती हैं तथा समाज के कल्याण में वृद्धि के लिए निरन्तर प्रयासरत रहती हैं। समाज कल्याण में वृद्धि करने के लिए सार्वजनिक कार्यों के निष्पादन पर सरकारों या लोकसत्ताओं को एक निश्चित लागत उठानी पड़ती है जिसे अपने देश के नागरिकों से ही बसूला जा सकता है क्योंकि ये सत्तार्ये इन्हीं नागरिकों के कल्याण के प्रयास करती हैं। यह सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि समाज की सेवा पर आने वाली या उठायी जाने वाली लागत के बराबर समाज द्वारा सत्ताओं को कर दिये जाने चाहिए। सेवा लागत के सिद्धान्त के सम्बन्ध में डॉल्टन ने लिखा है कि, *"सेवा लागत का सिद्धान्त डाक सेवाओं, विद्युतधारा आदि की पूर्ति पर लागू किया जा सकता है। इन सेवाओं की कीमत इस सिद्धान्त के आधार पर निर्धारित की जा सकती है।"* प्रो० ब्यूहलर ने इस सिद्धान्त के विषय में स्पष्ट किया है कि, *"अनेक लेखकों का सुझाव है कि करों को सरकार द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं की लागत के आधार पर ही लगाया जाना चाहिए। वह भी शायद इस आधार पर कि नागरिकों को सरकारी सेवाओं को चुनने या रद्द करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए।"* यहाँ आपको स्पष्ट होना चाहिए कि एक तरफ कर को अदा करने पर प्रतिफल की आशा नहीं करनी चाहिए वहीं यह सिद्ध कर अदा करने पर सेवा प्राप्त करने की कीमत पर आधारित किया गया है। जो वास्तव में करारोपण का सिद्धान्त न होकर शुल्क आरोपण के रूप में देखा जा सकता है। यह सिद्धान्त सेवाओं को प्राप्त न करने वालों पर करारोपण न करने की बात भी स्वीकार करता है।
3. **अधिकतम कल्याण का सिद्धान्त** : करारोपण व्यवस्था में कल्याण आधारित इस सिद्धान्त को एजवर्थ तथा पीगू ने अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माना। इस सिद्धान्त के अनुसार करारोपण की व्यवस्था इस प्रकार तय की जाय कि व्यक्तियों का अधिकतम कल्याण हो सके। एजवर्थ के अनुसार, *"करारोपण की नीति को समान सीमान्त त्याग पर आधारित करने के उपरान्त ही समाज को अधिकतम कल्याण प्राप्त हो सकता है।"* इसी सम्बन्ध में पीगू ने एक तथ्य को इस प्रकार स्पष्ट किया कि, *"सभी इस बात से सहमत हैं कि सरकार की क्रियाओं का नियमन इस प्रकार से होना चाहिए कि उसके नागरिकों का कल्याण अधिकतम हो। यही सरकार की सम्पूर्ण कानूनी प्रक्रिया की कसौटी है और करारोपण के क्षेत्र में यही न्यूनतम त्याग का सिद्धान्त है।"* इस सिद्धान्त को इस अवधारणा पर

आधारित किया गया है कि जैसे-जैसे व्यक्ति की आय में वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों व्यक्ति को मिलने वाली आय की सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है। इसीलिए बढ़ी हुई आय पर घटती दर से करारोपण किया जाना चाहिए। पीगू ने स्पष्ट किया कि न्यूनतम त्याग के लिए यह आवश्यक है कि करदाताओं द्वारा भुगतान की गयी द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान होनी चाहिए।

डॉल्टन तथा मसग्रेव ने भी अधिकतम कल्याण के सिद्धान्त से सम्बन्धित न्यायपूर्ण वितरण की समस्या को समान सीमान्त त्याग तथा समान सीमान्त कल्याण की तलना करके हल करने का प्रयास किया। करारोपण से अधिकतम कल्याण की स्थिति को उस समय प्राप्त किया जा सकता है जब सरकार द्वारा प्रत्येक मद पर किये गये व्यय से समाज को समान सीमान्त कल्याण प्राप्त हो तथा करारोपण से जनता को होने वाला सीमान्त त्याग समान हो।

4. **आय सिद्धान्त :** करारोपण के आय सिद्धान्त का प्रतिपादन इटली के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डि मार्को द्वारा किया गया। इस सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित किया गया है। यह सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति की आय के अनुपात के आधार पर करारोपण करने पर जोर देता है। डि मार्को के अनुसार, *“जितनी अधिक आय एक व्यक्ति की होती है, उसे उतना ही अधिक कर देना चाहिए, क्योंकि उतनी ही अधिक सेवाओं का उपयोग उसने किया है। अतः धीन व्यक्ति अधिक तथा निर्धन व्यक्ति कम कर देगा। इस प्रकार करों का निर्धारण आय के अनुपात में किया जाना चाहिए।”* यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से आय कर से सम्बन्धित किया गया है यदि सम्पूर्ण कर व्यवस्था के लिए आय को आधार बनाया जाय तो अर्थव्यवस्था का संचालन के लिए सरकार की वित्त व्यवस्था अत्यन्त संकुचित रूप में ही रह जायेगी तथा अन्य क्षेत्र करारोपण से बाहर ही रह जायेंगे।
5. **वित्तीय सिद्धान्त :** करारोपण का वित्तीय सिद्धान्त कॉलबर्ट के कथन 'बत्तख को इस प्रकार नोचों कि वह कम से कम शोर मचाये' पर आधारित है। प्राचीन काल में सरकारों के सम्मुख मुख्य समस्या अपनी व्यवस्थाओं के लिए अधिक से अधिक मात्रा में आय अर्जित करने की थी न कि जनता के कल्याण में वृद्धि करने या आर्थिक स्थिरता की। इसीलिए इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार को करारोपण के द्वारा अधिकाधिक पर्याप्त आय प्राप्त हो जानी चाहिए। वर्तमान में सरकारों के सामने आय प्राप्त के साथ समाज के कल्याण एवं त्याग के साथ अर्थव्यवस्था में समान वितरण सम्बन्धी समस्यायें उपस्थित रहती हैं।

9.4.3 करारोपण के अन्य सिद्धान्त

करारोपण के अन्य सिद्धान्तों में एडोल्फ बैगनर (Adolph Wagner) द्वारा प्रतिपादित सामाजिक-राजनैतिक सिद्धान्त, सैलिंगमैन के हितप्राप्ति सिद्धान्त को भी शामिल किया गया है।

सामाजिक राजनैतिक सिद्धान्त का प्रतिपादन इस आधार पर किया गया कि करों का चुनाव सामाजिक तथा राजनैतिक उद्देश्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। व्यक्तिगत उद्देश्यों के आधार पर किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। वैगनर के अनुसार सम्पत्ति एवं उत्तराधिकार का संरक्षण सरकार द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

हित प्राप्ति सिद्धान्त के अनुसार सरकार द्वारा समाज को अनेक सामाजिक प्रशासनिक सेवायें उपलब्ध करायी जाती हैं और समाज के जीवन, धन एवं सम्पत्ति की रक्षा भी सरकार के हस्तक्षेप के बिना सम्भव नहीं है। अतः इस

सेवाओं की लागत के बदले उन्हें कर का भगतान सरकार को करना ही चाहिए तथा यह वित्तीय भार सेवाओं की प्राप्ति के अनुपात में ही वहन किया जाना चाहिए।

9.5 करारोपण का वर्गीकरण

करारोपण से सम्बन्धित विभिन्न अर्थशास्त्रियों में सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद आपको यह समझना अत्यन्त आवश्यक है कि करारोपण का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है।

1. प्रत्यक्ष कर तथा परोक्ष कर
2. एकल एवं बहुकर प्रणाली
3. करों की दर की स्थिति के आधार पर वर्गीकरण
4. विशिष्ट कर एवं मूल्यानुसार कर
5. लोक सत्ताओं के आधार पर कर-केन्द्रीय कर, राज्यीय कर, स्थानीय
6. अन्य वर्गीकरण

करों के उक्त वर्गीकरणों के अन्तर्गत निर्धारित किये जाने वाले करों की विस्तृत व्याख्या के आधार पर आप इन वर्गीकरणों के बारे में भली-भाँति समझ सकेंगे।

(1) प्रत्यक्ष कर तथा परोक्षकर (Direct and Indirect Tax)

एक लम्बे समय से अर्थशास्त्रियों में विवादास्पद विषय रहा है कि किन करों को प्रत्यक्ष कर माना जाय तथा किन करों को परोक्षकर की श्रेणी में रखा जाय। डॉल्टन ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों के विषय में लिखा है कि, "एक प्रत्यक्ष कर वास्तव में उसी व्यक्ति द्वारा दिया जाता है जिस पर वैधानिक रूप से वह लगाया जाता है जबकि अप्रत्यक्ष कर एक व्यक्ति पर लगाया जाता है तथा सम्पूर्ण या आंशिक रूप से वह अन्य व्यक्ति द्वारा भुगतान किया जाता है, जो अनुबन्ध एवं सौदा करने की शर्तों के परिणाम स्वरूप ऐसा होता जे0एस0 मिल ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों के बारे में लिखा है कि, "एक प्रत्यक्ष कर वह है जो उसी व्यक्ति से माँगा जाता है जो उसे भुगतान करने की इच्छा या इरादा रखे और एक अप्रत्यक्ष कर वह है जो एक व्यक्ति से इस आशा एवं इच्छा से माँगा जाता है कि वह दूसरे की लागत पर इसकी क्षतिपूर्ति कर लेगा।" सामान्य तौर पर कर आघात तथा कर आयतन के आधार पर ही करों को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों की श्रेणी में रखा गया है। प्रत्यक्ष करों के आरोपण पर कराघात एवं कर का आपतन एक ही इकाई या व्यक्ति पर पड़ता है जबकि परोक्ष करों के आरोपण की स्थिति में कराघात तथा कर का आयतन अलग-अलग इकाइयों या व्यक्तियों पर पड़ता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष करारोपण के अन्तर्गत कर विवर्तन नहीं पाया जाता जबकि परोक्ष करारोपण की स्थिति में कर का विवर्तन किया जाता है। इस प्रकार आय, व्यय, धन, सम्पत्ति, उपहार, उत्तराधिकार, पूँजी आय, व्याज आदि पर करारोपण प्रत्यक्ष कर की श्रेणी में आता है। उत्पादन शुल्क, बिक्रीकर, सीमा शुल्क आदि को परोक्ष कर की श्रेणी में रखा जाता है।

(2) एकल एवं बहुकर प्रणाली

सामान्य रूप एकल करारोपण की स्थिति में कर प्रणाली के अन्तर्गत केवल एक ही कर अस्तित्व में पाया जाता है। साधारण जीवन की अर्थव्यवस्था में इस कर प्रणाली को अपनाया जा सकता है जिसमें एक ही कर से अर्थव्यवस्था संचालन के लिए वित्त की व्यवस्था आसानी से हो सके।

लेकिन अर्थव्यवस्थाओं के विकास एवं अनेक जटिलताओं के चलते एकल कर प्रणाली से काम चलने वाला नहीं है। इस कर प्रणाली से न तो सरकार सभी को कर सीमा में ला सकती है और न ही सार्वजनिक कार्य पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में राजस्व की आपूर्ति को जुटा पा सकती है।

बहुकर प्रणाली के अन्तर्गत एक ही कर प्रणाली में एक साथ एक से अधिक कर अस्तित्व में पाये जाते हैं। इस कर प्रणाली में अधिकांशतः सभी को किसी न किसी कर की सीमा में लाया गया है तथा सरकार के लिए सार्वजनिक कार्यों की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में राजस्व को जुटाया जा सका है। बहुकर प्रणाली से कर प्रणाली के अन्तर्गत पैदा होने वाली अनेक समस्याओं को हल किया जा सकता है।

एकल कर प्रणाली में अर्थव्यवस्था में आवश्यकतानुसार सुधारों की सम्भावनायें समाप्त हो जाती हैं तथा अर्थव्यवस्था में स्थिरता या ठहराव की स्थिति पैदा हो जाती है। इसके साथ बहुकर प्रणाली में लोचता की अधिकता के कारण अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुसार आवश्यक परिवर्तन किये जा सकते हैं।

(3) करों की दर की स्थिति के आधार पर कर

आपको यहाँ पर ध्यान देना होगा कि करों की दरों की स्थिति में अन्तर के आधार पर करों को अनेक रूपों में रखा जा सकता है।

आनुपातिक कर (Proportional Tax) : आनुपातिक कर प्रणाली के अन्तर्गत सभी प्रकार की आय वाली इकाईयों एवं व्यक्तियों पर एक ही दर से कर लगाया जाता है। आय में वृद्धि होने पर कर राजस्व में वृद्धि होती है। आय में वृद्धि की दर तथा कर राजस्व में वृद्धि की दर समान पायी जाती है यदि एक आय स्तर 1000 करोड़ रुपये पर 10 प्रतिशत की दर से कर लगाने पर 100 करोड़ रूपया का राजस्व प्राप्त होगा। परन्तु आय स्तर 10000 करोड़ रूपये होने पर भी कर 10 प्रतिशत की दर से ही लगाया जायेगा तथा कर राजस्व की राशि 1000 करोड़ रूपये होगी।

प्रगतिशील कर (Progressive Tax) : प्रगतिशील कर प्रणाली में आय के स्तर में वृद्धि होने पर कर की दर में भी वृद्धि हो जाती है। इसे एक उदाहरण द्वारा आसानी से समझाया जा सकता है।

आय स्तर (लाख)	की दर(%)	करों से प्राप्त आय (लाख रु०)
100	10	10
400	15	60
600	20	120
1000	30	300

उपर्युक्त तालिका में आय स्तर में वृद्धि होने के साथ साथ कर की दर में वृद्धि हो रही है।

प्रतिगामी कर (Regressive Tax) : इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रगतिशील करक प्रणाली की विपरीत दिशा में कर की दरें निश्चित की जाती हैं। प्रारम्भ में आय स्तर पर कर की दर उच्च पायी जाती है जैसे-जैसे आय का स्तर बढ़ता जाता है कर की दर घटती जाती है।

अधोगामी कर (Degressive Tax) : अधोगामी कर प्रणाली में प्रारम्भिक आय स्तर से आय में वृद्धि होने पर कर की दरें बढ़ती जाती हैं लेकिन एक स्तर के बाद आय वृद्धि होने पर कर की दर बढ़ायी नहीं जाती हैं। इस सीमा

के बाद कर की दर समान हो जाती हैं जैसे 100000 ₹ की आय पर 8 प्रतिशत की दर, ₹ 200000 ₹ पर 10 प्रतिशत की दर तथा ₹ 400000 की आय पर 15 प्रतिशत की दर से कर लगेगा लेकिन 400000 ₹ से ऊपर आय वृद्धि पर कर की दर 15 प्रतिशत ही रहेगी। यह कर प्रगतिशील तथा प्रतिगामी कर प्रणाली की संयुक्त विशेषताओं के आधार पर व्युत्पन्न किया गया है।

(4) विशिष्ट कर एवं मूल्यानुसार कर

विशिष्ट कर वे कर कहलाते हैं जिन्हें किसी वस्तु के भार आकार या इकाईयों की संख्या के आधार पर लगाया जाता है, जबकि मूल्यानुसार कर वह कर है जिसे वस्तु के मूल्य के आधार पर लगाया जाता है। सामान्य रूप से मूल्यानुसार कर को अधिक महत्व दिया जा रहा है।

(5) लोक सत्ताओं के आधार पर कर

लोक सत्ताओं के अधिकार के आधार पर करों को निम्न रूपों में विभाजित किया जा सकता है -

केन्द्रीय सरकार के कर : जो कर किसी देश की केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाते हैं जैसे भारत में आय कर जो देश की संघीय सरकार द्वारा लगाया जाता है।

राज्य सरकार के कर : किसी देश के अन्दर वहाँ की अलग-अलग राज्य सरकारों द्वारा लगाये जाने वाले कर इस श्रेणी में आते हैं, जैसे भारत में कृषि तथा मनोरंजन कर आदि राज्यों की सरकारों द्वारा लगाये जाते हैं।

स्थानीय कर : ये कर स्थानीय सरकारों जैसे - नगर निगम, पंचायत द्वारा लगाये जाते हैं जैसे पथकर, गृहकर, जलकर आदि।

6. अन्य वर्गीकरण

करों के अन्य वर्गीकरणों में व्यक्ति कर तथा वस्तु कर, अस्थायी तथा स्थायीकर एवं सम्पत्ति कर तथा वस्तुकर (Tax on Property and Tax on Commodity) को भी शामिल किया गया

9.6 करारोपण की आवश्यकता

आपको इस बिन्दु के अन्तर्गत यह समझ में आ जायेगा कि किसी राजसत्ता या सरकार को करारोपण की आवश्यकता क्यों पड़ती है। क्या अन्य साधनों से करारोपण से प्राप्त राजस्व की भरपाई नहीं की जा सकती। किसी अर्थव्यवस्था में सरकार द्वारा करारोपण की आवश्यकता को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. सरकार के लिए सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता अपने सामाजिक कार्यों के लिए किये जाने वाले व्यय की पूर्ति के लिए आय प्राप्त करना निर्धारित की गयी। यह आवश्यकता अत्यन्त ही प्राचीन तथा सार्वभौमिक रूप में देखी गयी है।

2. विकास के दौर में सरकारों के सामने एक अन्य चुनौती स्वयं की अर्थव्यवस्थाओं को संतुलित स्तर पर चलाने की रही है। अर्थव्यवस्थाओं के नियमन एवं नियन्त्रण के लिये सरकारों द्वारा करारोपण का सहारा लिया गया है। व्यापारिक चक्रों की स्थिति, विदेशी प्रभाव आदि से बचने के लिए भी करारोपण को एक उपकरण के रूप में अपनाया जाने लगा है।

3. समाज में व्याप्त अनेक विसंगतियों को दूर करने के लिए भी करारोपण पद्धति का सहारा समय-समय पर सरकारें लेती रही हैं। धन के असमान वितरण की समस्या का सामना करने वाली अर्थव्यवस्थाओं के लिए करारोपण की भूमिका और अधिक बढ़ जाती है।

प्र० राजा चलैया के एक कथन से करारोपण की आवश्यकता को और अधिक स्पष्ट रूप में रखा जा सकता है :

“एक विकासोन्मुख देश में एक अच्छी कर पद्धति का कार्य यह होना चाहिए कि वह उस आर्थिक वेशी को गतिशील करे जो अर्थव्यवस्था में अभी हाल में उत्पन्न हुई हो। आर्थिक वेशी उस अन्तर को कहते हैं जो वास्तविक चालू उपज तथा वास्तविक चालू उपभोग के बीच पाया जाता है। भारत जैसे देश में आर्थिक वेशी का एक बड़ा भाग कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होता है। वह किसानों, व्यापारियों तथा अन्य लोगों द्वारा अपने पास रख लिया जाता है और ये लोग इस वेशी को उत्पादक विनियोजन में लगाने के अभ्यस्त नहीं होते। आर्थिक विकास की दृष्टि से कर नीति का कार्य यह है कि वह इस वेशी को गतिशील करे, उसे उत्पादक स्रोतों की ओर मोड़े तथा उसके आकार में निरन्तर वृद्धि करे।”

इस प्रकार आर्थिक विकास के लिए करारोपण की आवश्यकता भी अहम भूमिका अदा करती है।

9.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्र.1 करारोपण से आप क्या समझते हैं?

प्र.2 "कर किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की सम्पत्ति का वह भाग होता है जो सार्वजनिक सेवाओं को चलाने के लिए अनिवार्य रूप से वसूल किया जाता है। यह कर सम्बन्धी परिभाषा किस अर्थशास्त्री द्वारा दी गयी?

प्र.3 एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित करारोपण के सिद्धान्त कौन-कौन से हैं?

प्र.4 'करारोपण का उत्पादकता का सिद्धान्त' उत्पादन क्षमता पर कैसा प्रभाव डालता है?

प्र.5 कर देय योग्यता सिद्धान्त का प्रतिपादन किस अर्थशास्त्री द्वारा किया गया?

प्र.6 आय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया -

- | | |
|------------------------|---------------------|
| (i) मार्शल द्वारा | (ii) पीगू द्वारा |
| (iii) डि मार्को द्वारा | (iv) रोबिन्स द्वारा |

प्र.7 एडोल्फ वैगनर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त है -

- | | |
|------------------------------|---------------------------------|
| (i) आय सिद्धान्त | (ii) सामाजिक राजनैतिक सिद्धान्त |
| (iii) हित प्राप्ति सिद्धान्त | (iv) उत्पादकता का सिद्धान्त |

प्र.8 विषिष्ट कर क्या है?

प्र.9 स्थानीय करों से आप क्या समझते हैं?

प्र.10 सही/गलत का चयन कीजिए -

- (i) आय कर राज्य सरकार का कर है।
- (ii) बिक्री कर परोक्ष कर की श्रेणी में आता है।
- (iii) मूल्यानुसार कर वस्तु के मूल्य के आधार पर लगाया जाता है।
- (iv) प्रत्यक्ष कर के अन्तर्गत कराघात एवं कर का भार एक ही व्यक्ति पर हाता है।

प्र.11 कर की दर के आधार पर करारोपण कितने प्रकार से किया जाता है?

9.8 सारांश (Summary)

करारोपण एक अत्यन्त प्राचीन अवधारणा है। सरकारों को अपने सार्वजनिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए करारोपण द्वारा अनिवार्य रूप से कुछ धनराशि बसूली जाती है जिसे जनता द्वारा अदा किया जाता है। करारोपण का निर्धारण सरकारों द्वारा मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है। इसके लिये करारोपण के अनेक सिद्धान्तों का सहारा लिया जाता है लेकिन यह वहाँ की अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति पर निर्भर करता है। एडम स्मिथ, विलियम पेटी, डि-मार्को, डॉल्टन, मसग्रेव, कॉलवर्ट, वैगनर तथा सैलिंगमैन आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा करारोपण के लिए अलग-अलग सैद्धान्तिक विचारों का प्रतिपादन किया है।

करारोपण का वर्गीकरण भी विभिन्न आधारों पर किया गया है। किसी देश की सरकार अपनी आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं के आधार पर उनमें से करों का चयन करती है। सामान्य रूप से प्रत्यक्ष कर, परोक्ष कर, एकल कर बहुकर तथा करों की दर के आधार पर वर्गीकरण को प्राथमिकता दी गयी है। सरकार के कार्यों की पूर्ति गैर-कर राजस्व से कर पाना सम्भव नहीं होती है इसीलिए सरकारों को करारोपण की आवश्यकता होती है। अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए भी करारोपण का सहारा लिया जाता है।

9.9 शब्दावली(Glossary)

- कर – सरकार द्वारा जनता से अनिवार्य रूप से वसूला जाने वाला अंशदान ।
- सार्वजनिक सत्ता – सरकार
- करदाता – कर को अदा करने वाले व्यक्ति/संस्था करदाता कहलाता है।
- मिव्ययता – कम या आवश्यकतानुसार खर्च करने की प्रवृत्ति ।
- द्रव्य - मुद्रा की राशि।
- लोचता – लचीला पना।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Question)

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- वाष्णेय, जे0सी(1997) 0, राजस्व) Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेपन्स,आगरा।
- पंत, जे0सी(2005) 0, राजस्व) Public Finance), द्वादष संस्करण, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, प्रकाषक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- भाटिया एच0एल(2008) 0, लोकवित्त) Public Finance), विकास पब्लिपिंग हाउस प्रा० लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- मिश्रा एवं पुरी(2010) , भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिपिंग हाउस, नई दिल्ली।

9.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- Agarwal, R.C. ((2006, Public Finance, Lakshmi Narayan Agarwal, Agra.
- रुद्र, दत्त एवं के0पी0एम 0सुन्दरम(2010) , भारतीय अर्थव्यवस्था, एस 0चन्द एण्ड कं0 लि0, रामनगर, नई दिल्ली।
- सेठी, टी0टी(2008) 0, मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा ।

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. करारोपण से आप क्या समझते हैं? करारोपण के सिद्धान्तों की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए?
2. करारोपण के सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिए?
3. करारोपण का वर्गीकरण कीजिए?
4. करारोपण की आवश्यकता की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए?
5. प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों को स्पष्ट करते हुए उनके गुण-दोषों की विवेचना कीजिए?

इकाई 10 करारोपण का प्रभाव - उत्पादन, वृद्धि, वितरण और संसाधनों के आवंटन पर (Effects of Taxation on Production, Growth, Distribution and Allocation of Resources)

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 करारोपण के प्रभाव
 - 10.3.1 करारोपण का उत्पादन पर प्रभाव
 - 10.3.2 करारोपण का वृद्धि पर प्रभाव
- 10.4 करारोपण का वितरण एवं संसाधनों के आवंटन पर प्रभाव
 - 10.4.1 करारोपण का वितरण पर प्रभाव
 - 10.4.2 करारोपण का संसाधनों के आवंटन पर प्रभाव
 - 10.4.3 करारोपण के प्रभाव एवं भारतीय अर्थव्यवस्था
- 10.5 अभ्यास प्रश्न
- 10.6 सारांश
- 10.7 शब्दावली
- 10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 10.10 सहायक/ उपयोगी ग्रन्थ
- 10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

पूर्व की इकाई में आपने करारोपण के सिद्धान्तों का अध्ययन किया होगा तथा उन सिद्धान्तों की उपयोगिता तथा प्रासंगिकता को समझ लिया होगा। इसके साथ करारोपण के वर्गीकरणों को भी भलीभांति समझा होगा जो विभिन्न आधारों पर तय किये गये हैं। प्रस्तुत इकाई लोक राजस्व तथा बजटिंग ब्लॉक से सम्बन्धित दसवीं इकाई है जो करारोपण के प्रभावों से सम्बन्धित की गयी है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत करारोपण के अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रभावों का अध्ययन आप भलीभांति कर सकेंगे। करारोपण के प्रभावों को उत्पादन, वृद्धि वितरण तथा संसाधनों के आवंटन पर अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों ही दिशाओं के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जायेगा जो आपको अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध होंगे। करारोपण के प्रभाव एक दिशीय न होकर बहुदिशीय पाये जाते हैं जो किसी भी अर्थव्यवस्था को विभिन्न रूपों में परिवर्तित करते हैं तथा सरकार या लोकसत्ताओं के उद्देश्यों को पूरा करने में सहायक सिद्ध होते हैं। इसीलिए करारोपण के उत्पादन, वृद्धि तथा वितरण आदि पर पड़ने वाले प्रभाव सरकार द्वारा पूर्व लक्ष्यानुसार तय किये जाते हैं। लेकिन अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं सरकार की क्रियान्वयन नीति भी करारोपण के प्रभावों को अलग-अलग दिशाओं की ओर ले जाने में सहायक होती है।

10.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि :

- ✓ करारोपण के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव किन-किन दिशाओं में क्रियाशील होते हैं?
- ✓ आप अध्ययन कर सकेंगे कि करारोपण के द्वारा उत्पादन किस प्रकार तथा किस दिशा में प्रभावित होता है। करारोपण से उत्पादन प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से किस प्रकार प्रभावित होता है?
- ✓ करारोपण का वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभावों को भी आप इस इकाई के द्वारा भलीभांति समझ सकेंगे?
- ✓ आप समझ सकेंगे कि करारोपण द्वारा किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये आय का पूर्ववितरण किस प्रकार किया जाता है तथा यह किस रूप में प्रभावित होता है?
- ✓ करारोपण से संसाधनों के आवंटन पर पड़ने वाले प्रभावों का भी आप भलीभांति अध्ययन कर सकेंगे।

10.3 करारोपण के प्रभाव

वर्तमान में करारोपण का महत्व अर्थव्यवस्थाओं के लिए और अधिक बढ़ जाता है कि करारोपण के द्वारा अर्थव्यवस्था को किसी भी दिशा में प्रभावित करने में सहायता मिलती है। एक निश्चित समयावधि में अर्थव्यवस्था की रोजगार, विकास एवं वृद्धि, सामाजिक न्याय, आर्थिक-समानता आदि की स्थिति के बाद करारोपण के द्वारा इन महत्वपूर्ण आयामों में जो परिवर्तन पैदा होता है उसे आप करारोपण के प्रभावों के रूप में देख सकते हैं। प्रायः आपने देखा होगा कि आर्थिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन से न केवल देश की अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है अपितु सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्थाओं में भी बदलाव देखा जा सकता है लेकिन प्रस्तुत इकाई में मुख्यरूप से आर्थिक चरों पर पड़ने वाले करारोपण के प्रभावों का ही अध्ययन किया गया है। करारोपण के प्रभावों के सम्बन्ध

में प्रो 0लर्नर ने अपने विचार निम्न रूप में व्यक्त किये, “कर सम्बन्धी नीति बनाते समय उद्देश्य केवल आर्थिक लाभ या आय प्राप्त करना नहीं होना चाहिए वरन अर्थव्यवस्था में स्थिरता बनाये रखने तथा तेजी व मन्दी को रोकना चाहिए। कर प्रणाली का उद्देश्य आर्थिक स्थिरता को बनाये रखना होना चाहिए।”। इस प्रकार यह कहना न्याय संगत होगा कि करारोपण के प्रभावों को किसी विशेष आयाम के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। करारोपण के माध्यम से अर्थव्यवस्था के सभी महत्वपूर्ण चरों या आयामों में परिवर्तन किया जाता है जिन्हें सामूहिक रूप से करारोपण के प्रभावों के रूप में रखा जा सकता है।

10.3.1 करारोपण का उत्पादन पर प्रभाव

उत्पादन किसी भी अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिस पर करारोपण के प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। करारोपण का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना निम्नवत रूप में की जा सकती है।

- I. कार्य क्षमता इच्छा पर प्रभाव
- II. बचत करने की क्षमता इच्छा पर प्रभाव
- III. उत्पादनों के संसाधनों पर प्रभाव
- IV. उत्पादन तकनीकी पर प्रभाव
- V. उत्पादन पर अन्य प्रभाव
 1. **कार्यक्षमता एवं इच्छा पर प्रभाव :** करारोपण के द्वारा व्यक्ति की कार्य करने की क्षमता एवं कार्य करने की इच्छा पर अलग-अलग रूप में प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति की कार्य करने की क्षमता करारोपण की प्रकृति से सीधे प्रभावित होती है। प्रत्यक्ष करों की अपेक्षा परोक्ष कर निर्धन वर्ग की कार्यक्षमता को नकारात्मक दिशा में प्रभावित करते हैं। इसके साथ बेलोचदार तथा आवश्यक वस्तुओं पर लगाये गये करों से व्यक्ति की कार्यक्षमता दुष्प्रभावित होती है जबकि लोचदार या विलासिता की वस्तुओं पर लगने वाले कर कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकते। वहीं दूसरी ओर व्यक्ति की कार्य करने की इच्छा भी करारोपण द्वारा प्रभावित होती है। प्रो० मिल के अनुसार, "व्यक्ति केवल धनी नहीं होना चाहता, बल्कि वह दसरो की अपेक्षा अधिक धनी होना चाहता है।" यदि आनपातिक कर प्रणाली को अपनाया जाता है तो कार्य करने की इच्छा अप्रभावित होगी तथा कर की अन्य प्रणालियाँ कार्य करने की इच्छा को अलग-अलग दिशाओं में प्रभावित करती हैं। करारोपण व्यक्ति को मानसिक रूप से भी प्रभावित करता है जिसका उस व्यक्ति की कार्य करने की क्षमता से गहरा सम्बन्ध होता है। बेलोचदार मांग में करारोपण का काम करने की इच्छा पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। आय की मांग लोच इकाई के बराबर होने पर व्यक्ति की कार्य करने की इच्छा अप्रभावित रहती है तथा आय की लोचदार मांग की स्थिति में करारोपण का व्यक्ति की कार्य करने की इच्छा प्रतिकूल रूप में प्रभावित होती है। जो उत्पादन को भी उसी दिशा में प्रभावित करती है।
 2. **बचत करने की क्षमता एवं इच्छा पर प्रभाव :** बचत करने की क्षमता एवं बचत करने की इच्छा दोनों ही एक बड़ी सीमा तक करारोपण द्वारा प्रभावित होती है। प्रथमतः देखा गया है कि निर्धन वर्ग की अपेक्षा धनीवर्ग की बचत करने की क्षमता अधिक होती है। यदि कर की दरें प्रगतिशील हैं तो बचत करने की

क्षमता दुष्प्रभावित होती हैं। इसके विपरीत बचत करने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है। वहीं निम्न आय वर्ग की बचत क्षमता में वृद्धि करने के लिए आवश्यक है उन्हें कर प्रणाली में सहायता प्रदान की जाय। इसके साथ वितरणीय असमानताओं को कम करने के लिए करारोपण का प्रयोग करके समाज के सभी वर्गों की बचत करने की क्षमता को प्रभावित किया जा सकता है जिसका उत्पादन से गहरा सम्बन्ध है। द्वितीयतः बचत करने की इच्छा भी करारोपण द्वारा प्रभावित की जाती है। कर की प्रकृति, आकार तथा स्वरूप आदि के द्वारा बचत करने की इच्छा अलग-अलग स्तर पर प्रभावित होती है। ब्याज पर कर तथा लाभ-आय पर कर की ऊँची दर से बचत करने की इच्छा प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है जिसका उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

3. **उत्पादन के संसाधनों पर प्रभाव :** करारोपण के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने के साथ-साथ परोक्ष रूप से भी प्रभावित होता है। करों के आकार तथा प्रकृति के आधार पर उत्पादन के साधन के योग तथा स्थानान्तरण पर पड़ने वाले प्रभाव के द्वारा उत्पादन को प्रभावित किया जाता है। उत्पादन कार्य में प्रयुक्त साधनों पर लगने वाले करों का भार अधिक है तो उसका उत्पादन की मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इस कर भार से बचने के लिए इन साधनों का प्रयोग गैर कर वाले उत्पादन कार्य में लगाया जाता है जो उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसके साथ साधनों पर विशिष्ट तथा मूल्यानुसार करारोपण भी उत्पादन को अलग-अलग रूप में प्रभावित करता है।
4. **उत्पादन तकनीकी पर प्रभाव :** करारोपण का उत्पादन की तकनीकी पर भी गहरा प्रभाव पाया गया है। करों की ऊँची दरें मुद्रा स्फीति की स्थिति पैदा करती हैं जिससे मजदूरी बढ़ने की स्थिति आती है। श्रम संघ तथा अन्य संस्थाएँ मजदूरी में वृद्धि के लिए आवश्यक मानती हैं। फलस्वरूप श्रम प्रधान तकनीकी से पूँजी प्रधान तकनीकी को अधिक वरीयता प्रदान की जाती है। यहाँ पर यह समझना अत्यन्त आवश्यक है कि श्रम की कीमतें किसी भी प्रकार के अधिक मात्रा में करारोपण से सीधे रूप से प्रभावित होती है। इसके साथ उत्पादन कर तथा अन्य प्रकार के करों से लागतें कम करने के लिए भी उत्पादन की तकनीकी में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है। लेकिन उत्पादन की तकनीकी पर करारोपण का प्रभाव करों की प्रकृति तथा सरकार की नीति दोनों का संयुक्त परिणाम होता है।
5. **उत्पादन पर अन्य प्रभाव :** करारोपण का एक अन्य उत्पादन पर प्रभाव यह पड़ता है कि कर अधिक मात्रा में लगाने से उत्पादन का रूप तथा डिजायन आदि में परिवर्तन आ जाता है। करारोपण की मात्रा उत्पादन की इकाइयों के आकार, वजन तथा गुणवत्ता को भी किसी न किसी दिशा में प्रभावित करता है। ऊँचे कर उत्पादन की इस दिशा में प्रतिकूल प्रभाव ही डालते हैं।

10.3.2 करारोपण का वृद्धि पर प्रभाव

प्रस्तुत खण्ड के अन्तर्गत करारोपण का वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया है जो वृद्धि के आकार एवं स्वरूप को निम्नवत प्रभावित करता है।

वृद्धि के आकार पर प्रभाव

करारोपण का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करके आप यह समझ सकेंगे कि वृद्धि के आकार पर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। करारोपण वृद्धि की दर को प्रत्यक्ष रूप से तथा परोक्ष रूप से भी प्रभावित करता है। वृद्धि दर को तीव्र बनाये रखने के लिए यह आवश्यक होता है कि देश में मुद्रा स्फीति की दर सामान्य स्तर पर बनी रहे। देश में मन्दी तथा तेजी की स्थितियाँ प्रतिकूल न हों। ऐसी स्थिति में वृद्धि की दर प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है। वृद्धि दर को तीव्र तथा निरन्तर बनाये रखने के लिए सरकार को करारोपण की नीति का सहारा लेना होता है। करों की दर अधिक होने पर प्रायः वस्तुओं की कीमतें बढ़ती हैं तथा जनता की क्रयशक्ति कम होती है और देश की अर्थव्यवस्था विकृत होती है। इसके विपरीत मन्दी की स्थिति में करारोपण की दर को कम करके जनता की क्रय शक्ति को बढ़ाया जाता है तथा उत्पादन की मांग बढ़ती है जिससे वृद्धि दर पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। किसी क्षेत्र विशेष में वृद्धि दर को बढ़ाने के लिए उत्पादकों को करों में राहत की व्यवस्था की जाती है। जिस क्षेत्र में करों की दर अधिक तथा जटिल होती है उन क्षेत्रों की वृद्धि दरें प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती हैं।

वृद्धि के स्वरूप पर प्रभाव

अर्थव्यवस्थाओं को अलग-अलग क्षेत्रों के रूप में बांटा जाता है जैसे प्राथमिक क्षेत्र, विनिर्माण क्षेत्र तथा सेवा क्षेत्र। सरकार की कोशिश रहती है कि सभी क्षेत्रों का समान रूप से विकास हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि सभी क्षेत्रों की वृद्धि दरों को बढ़ाने का प्रयास किया जाय। जिन क्षेत्रों में वृद्धि दर की अधिक आवश्यकता होती है उन क्षेत्रों में करारोपण की नीति को उदार बनाया जाता है तथा वृद्धि दर के अनुकूल रूप में समायोजित किये जाने का प्रयास किया जाता है। इसके साथ वृद्धि के स्वरूप को निरन्तरता प्रदान करने के लिए भी करारोपण का सहारा लिया जाता है जिससे वृद्धि दर की निरन्तरता का लाभ उत्पादक वर्ग को मिल सके। वृद्धि दर में होने वाले उच्चावचन उत्पादन की कीमत तथा पूर्ति को प्रभावित करता है जिसका उत्पादक वर्ग तथा उपभोक्ता वर्ग दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर अवरूद्ध होती है। करारोपण की सफल नीति देशों की वृद्धि दर को उच्च स्तर पर ले जाने में सहायक होती है। इसके साथ करारोपण से प्राप्त राजस्व का प्रयोग आवश्यक वृद्धि दर को बढ़ाने के लिए भी किया जाता है जिससे देश के विकास को बढ़ावा मिलता है। इस राजस्व का प्रयोग यदि उत्पादक कार्यों में नहीं होगा तो वृद्धि दर प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगी।

10.4 करारोपण का वितरण एवं संसाधनों के आवंटन पर प्रभाव

करारोपण के इन प्रभावों को निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है :

10.4.1 करारोपण का वितरण पर प्रभाव

करारोपण द्वारा किसी भी देश में वितरण पर प्रभावों को देखा जा सकता है। अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति के अनुसार कुछ देशों में करारोपण का आय के वितरण पर स्वतः प्रभाव पड़ता है तो कहीं पर इस वितरण पर प्रभाव डालने के लिए करारोपण की नीति तैयार की जाती है। जिन देशों में आय की वितरणात्मक समस्या कम पायी जाती है वहाँ पर करारोपण के वितरण पर बहुत कम ही प्रभाव पाया जाता है और इन प्रभावों पर ध्यान भी नहीं दिया जाता है। किन्तु अधिकांश देश पिछड़े तथा विकासशील देशों की श्रेणी में आते हैं जहाँ पर वितरण की समस्या को मुख्य समस्या के रूप में देखा जा रहा है और आम जनता पर इसका दुष्प्रभाव पड़ा है। इस समस्या को हल करने के लिए सरकार को करारोपण सहारा लेना होता है जिसके प्रभाव करारोपण के आकार, प्रकृति द्वारा निर्धारित होते हैं।

इसके साथ इस वितरण की समस्या को कम करने की आवश्यकता का स्तर भी करारोपण के प्रभावों को निश्चित करता है।

आपको यहाँ पर यह समझना अत्यन्त आवश्यक होगा कि सरकार के सामने केवल आय की वितरणात्मक समस्या को दूर करना ही विकास के लिए आवश्यक नहीं है बल्कि इस वितरण को कम करने के दुष्प्रभाव, बचत की क्षमता, इच्छा तथा निवेश का स्तर एवं दिशा आदि अलग-अलग रूपों में भी पाये जाते हैं। अतः सरकार को इस प्रकार की राजकोषीय नीति का सहारा लेना होता है कि देश में वितरणीय समस्याओं को भी कम किया जा सके तथा इसका धनी वर्ग पर बचत तथा निवेश के संदर्भ में प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़े। देश में करारोपण का ढाँचा वितरण को अलग-अलग रूपों में प्रभावित करता है। 'बेस्टेबिल' ने करारोपण तथा वितरण की समस्या पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, **“करारोपण को धन की असमानताओं को ठीक करने का एक साधन मानने की एक बड़ी दृढ़ धारणा है यह तो वित्तीय कला की शक्ति के अन्दर ही सम्भव है कि करों की दरों और रूपों को इस प्रकार चुना जाय कि बिना किसी वर्ग पर अनुचित दबाव के आवश्यक धन प्राप्त हो जाय परन्तु यदि धन के वितरण के प्रभावों की ओर ध्यान देना है और इस दिशा में कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कोई तरकीब करनी है तो इस कार्य में कठिनाइयाँ अत्यधिक हो जाती हैं। यदि उद्देश्य समाजवादी प्रणाली स्थापित करना है तो करारोपण में चालाकी से व्यवस्था करने की अपेक्षा अधिक प्रत्यक्ष और प्रभावशाली विधियाँ उपस्थित हैं।”**

इसी संदर्भ में प्रो० पीगू ने लिखा है कि, **“यदि राष्ट्रीय लाभांश की मात्रा में कमी न आये तो धन के वितरण में प्रत्येक ऐसा सुधार जिससे लाभांश में से निर्धनों के पास जाने वाली मात्रा में वृद्धि हो जाती हो, सामूहिक कल्याण की अभिवृद्धि करेगा।”**

इस प्रकार स्पष्ट है कि करारोपण का आय के वितरण पर अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों ही दिशाओं में प्रभाव पड़ता है जो अर्थव्यवस्था की स्थिति तथा आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होता है।

करों के प्रकारों के सम्बन्ध में आप समझेंगे कि प्रगतिशील कर आय की वितरणीय असमानताओं को कम करने में सहायक होता है जबकि अधोगामी या प्रतिगामी करों का वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जो एक अर्थव्यवस्था के लिए नुकसानदायक होता है।

इस प्रकार प्रगतिशील करारोपण द्वारा धनी वर्ग से धन का प्रवाह निर्धन तथा गरीब वर्ग की ओर हो जाता है। इसी प्रकार परोक्ष करों की अपेक्षा प्रत्यक्ष करों का वितरण पर अधिक अनुकूल प्रभाव पड़ता है। परोक्ष करों का वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि अन्ततः करारोपण का भार निम्न वर्ग तथा मध्यम वर्ग पर ही पड़ता है तथा धनी वर्ग इस प्रभाव से अलग रह जाता है। इसी प्रकार सबसे अच्छा कर आय कर है जो वितरण पर सबसे अधिक अनकूल प्रभाव डालता है।

इसी क्रम में सम्पत्ति कर का भी वितरण पर अनुकूल प्रभावों को देखा जा सकता है। धनी तथा अधिक सम्पत्ति के मालिकों से कर की वसूली करके निर्धनों के सामाजिक कल्याण पर व्यय किया जा सकता है तथा निर्धनों की स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया जा सकेगा। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि देश में पूँजी निवेश के लिये धनी वर्ग द्वारा ही बचतें काम आती हैं इसीलिए करारोपण से धनी वर्ग की उस राशि का ही प्रवाह निर्धनों की ओर किया जाना चाहिए जो देश के लिए निवेश या पूँजी के लिए सुरक्षित नहीं किया जा सकता है।

10.4.2 करारोपण का संसाधनों के आवंटन पर प्रभाव

उत्पादन कार्य में संसाधनों का आवंटन इस प्रकार से करने की समस्या पैदा होती है कि संसाधनों का कुशलतम रूप में प्रयोग हो तथा उत्पादन अधिकतम हो सके। इसके साथ सामाजिक लाभ में भी वृद्धि हो सके। देश में उत्पादन के स्वरूप, उपयोगिता तथा आकार के चलते संसाधनों के पुनः आवंटन की आवश्यकता पायी जाती है। इसी तथ्य के साथ करारोपण का सहारा लेकर इस समस्या को हल करने का प्रयास किया जाता है। करारोपण का संसाधनों के आवंटन पर पड़ने वाले प्रभाव अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों ही रूपों में हो सकते हैं जो कर तथा उत्पादन की प्रकृति पर निर्भर करता है। समाज के लिए हानिकारक वस्तुओं के उत्पादन पर अत्यधिक कर लगाकर इसकी कीमत बढ़ाने से उपभोग में कमी होगी जिससे इसके उत्पादन में लगे साधनों का स्थानान्तरण अधिक उपभोग वाली वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन की ओर होगा जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी तथा सामाजिक कल्याण भी बढ़ेगा। इस प्रकार करारोपण द्वारा जीवन के लिए घातक वस्तुओं के उत्पादन से श्रम व पूँजी व अन्य संसाधनों को हटाकर उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन में लगाया जाता है जो करारोपण का आवंटन पर अनुकूल प्रभाव कहा जायेगा जिससे अर्थव्यवस्था एवं सरकार दोनों को लाभ होगा।

इसके साथ यह भी पाया गया है कि सरकार कर राजस्व को अधिक मात्रा में जुटाने के लिए आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन एवं बिक्री कर अधिक कर लगाती है जिससे इन वस्तुओं की मांग कम होती है तथा समाज में उपभोग भी घटता है या निर्धन वर्ग को हानि होती है तो ऐसे उद्योगों से संसाधनों का स्थानान्तरण नुकसानदायक उद्योगों की ओर होने लगता है जो राष्ट्रीय हित के लिए घातक ही कहा जायेगा। इसके साथ देश में संसाधनों का आवंटन कुशलता के साथ नहीं हो पाता है तथा साधनों की आय की घटना प्रारम्भ हो जाती है और करारोपण का सहारा पुनः आवंटनात्मक कुशलता पैदा करने के लिए किया जाता है।

अत्यधिक करारोपण द्वारा उत्पादन के संसाधनों का प्रवाह अपने देश से विदेशों की ओर भी होने लगता है जो देश के लिए नुकसानदायक सिद्ध होता है और देश में पूँजी की कमी पैदा होती है जो आर्थिक विकास को अवरूद्ध करती है। सरकार विदेशी पूँजी को आकर्षित करने के लिए एक सफल करारोपण की नीति का सहारा लेती है तथा इसका क्रियान्वयन बड़ी सावधानीपूर्वक करती है। कभी-कभी करारोपण की ऊँची दर उपभोग को कुछ समय के लिये रोक देती है तथा उसको भविष्य के लिए सुरक्षित किया जाता है। ऐसी स्थिति में संसाधनों का आवंटन वर्तमान समय से भविष्य के उत्पादन के लिए किया जाता है।

10.4.3 करारोपण के प्रभाव एवं भारतीय अर्थव्यवस्था

करारोपण का उत्पादन, वृद्धि पर प्रभावों का अध्ययन करने के बाद आपने करारोपण का वितरण एवं संसाधनों के आवंटन पर प्रभावों का भी अध्ययन किया। प्रस्तुत बिन्दु के अन्तर्गत आप करारोपणके अलग अलग क्षेत्रों में पड़ने वाले प्रभावों के समग्र रूप से परिचित होंगे तथा भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ इन समग्र प्रभावों की प्रासंगिकता से भलीभांति परिचित हो सकेंगे।

इस तथ्य से आप शायद परिचित होंगे कि भारत में बहुकर प्रणाली का प्रचलन है। इसके साथ कुछ मदों पर केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से करारोपण का संयुक्त दबाव भी पाया जाता है। भारतीय कर

प्रणाली पर राजनैतिक प्रभावों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसके साथ भारत में यह तथ्य अत्यन्त परिवर्तनकारी एवं विचारणीय है कि विशाल भारत में राजनैतिक एकता एवं समरूपता का पाया जाना अत्यन्त कठिन है। कर्षण के आरोपण के सम्बन्ध में त्रिस्तरीय व्यवस्था राजनैतिक रूप में विद्यमान है - केन्द्र सरकार की कर प्रणाली, राज्य सरकारों की कर प्रणाली तथा स्थानीय सरकारों/संस्थाओं की कर प्रणाली।

भारत में करारोपण की प्रासंगिकता को प्रभावी बनाने के लिए समय-समय पर अनेक कमेटियों तथा मण्डलों का गठन किया गया लेकिन भारतीय कर प्रणाली सम्बन्धी गहन तथा विस्तृत नीतियों के चलते इन प्रभावों को एक दिशीय रूप नहीं दिया जा सका है। आपको विदित हो कि भारतीय अर्थव्यवस्था विकासशील होने के साथ-साथ मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषतायें रहती हैं जो करारोपण के प्रभावों को बहुदिशीय बना देती हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसी चुनौतियाँ हैं जो करारोपण के प्रभावों तथा सरकार की नीतियों में सामन्जस्य स्थापित होने में बाधक बन जाती हैं। आइये इन तथ्यों पर गहनता से विचार करें।

1. विकास की तीव्र दर एवं आय की वितरणीय असमानताओं को दूर करना
2. निजीकरण की प्रक्रिया एवं सामाजिक कल्याण
3. आर्थिक स्थिरता एवं निजी क्षेत्र में लाभ की दर
4. अन्तर्राष्ट्रीय साख एवं गरीबी-बेरोजगारी की समस्या
5. कर राजस्व एवं राजनैतिक लाभ की प्राप्ति
6. विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र के मध्य अच्छे सम्बन्धों की कमी।

ऊपर दिये गये छः बिन्दुओं पर गहराई से विचार दिया जाय तो भारतीय अर्थव्यवस्था वर्तमान कर प्रणाली तथा उसके प्रभावों के मध्य आपसी तालमेल न बना पाने की स्थिति में है और आये दिन सरकारों के सामने कर तथा मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने के प्रयास किये जाते रहते हैं। ऊपर दिये गये तथ्यों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने के लिये ही करारोपण प्रणाली को एक उपकरण के रूप में अपनाया जाता है। जहाँ तक अर्थव्यवस्था में तीव्र आर्थिक विकास की दर के लिये पूँजी का संकेन्द्रण तथा आय की वितरणीय असमानताओं को दूर करने के लिये पूँजी का प्रसरण के लिये प्रयास किये जाते हैं जिसके लिये करारोपण के प्रभावों के बंटवारे की अत्यन्त आवश्यकता महसूस की जाती है। करारोपण के एक दिशीय प्रभावों से इस कठिनाई को दूर नहीं किया जा सकता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के सामने सबसे बड़ी समस्या अर्थव्यवस्था के स्वरूप को परिवर्तित करने से सम्बन्धित है। तीव्र आर्थिक विकास की गति को आखिरकार कब तक प्राप्त किया जाता रहेगा। सामाजिक कल्याण की लागत पर आर्थिक विकास की बात करके करारोपण के प्रभावों के औचित्य को न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता। राजनैतिक दृष्टिकोण से करारोपण के प्रभावों के औचित्य को राजनेताओं तथा उद्योगपतियों के पक्ष में बनाये रखना करारोपण के अलग-अलग प्रभावों को धूमिल किया जाता है। अर्थव्यवस्था पर करारोपण के प्रभाव केवल इसके आकार पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि करारोपण के ढाँचे तथा संरचनात्मक व्यवस्था की भी महत्वपूर्ण भूमिका पायी जाती है। एक करारोपण की मद वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग की लोच को परिवर्तित करती है वही दूसरी मद क्रेताओं की रूचि तथा मांग के निर्धारकों को परिवर्तित करती है।

आपको ध्यान देने की आवश्यकता है कि वर्तमान में राजकोषीय नीति विकास, रोजगार तथा अर्थव्यवस्था नियंत्रण के साथ राजनैतिक नियंत्रण की भी उपकरण बन गयी है। करों में छूट तथा उदारपन की प्रवृत्ति तथा राजकोषीय घाटे की समस्या जैसा विरोधाभास करारोपण के प्रभावों को सीमित करता है। भारत में आर्थिक विषमता करारोपण के प्रभावों के आंकलन के लिए एक महत्वपूर्ण पैमाना बन गया है। अर्थव्यवस्था में करारोपण के प्रभावों की मदद सम्बन्धी पर्याप्त जानकारी प्राप्त किये बिना रोजकोषीय नीति के प्रभावों की अपेक्षा करना सरल कार्य नहीं है।

भारत जैसी अर्थव्यवस्था में कई प्रकार की नम्यताओं का अभाव पाया जाता है। कई क्षेत्रों में एकाधिकारात्मक अनियमिततायें भी पायी जाती हैं। ऐसी स्थिति में मंदी तथा मुद्रास्फीति जैसी परिस्थितियाँ एक साथ अस्तित्व में पायी जाती हैं। इसके समाधान के लिए केवल करों में कमी या वृद्धि करके काम नहीं चलाया जा सकता है। इसके लिए करारोपण प्रणाली में समय-समय पर आवश्यकतानुसार संशोधन की आवश्यकता पायी जाती है। कई बार सरकारों के कड़े उपायों को भी अपनाया जाता है। कड़े उपायों को यदि प्रारम्भ से ही अपनाया जाय तो शायद राजकोषीय नीति के प्रभावों से सम्बन्धित अनेक प्रकार की समस्याओं का समाधान भी सम्भव हो सकता है।

केन्द्र सरकार तथा केन्द्रीय बैंक की राजकोषीय नीति सम्बन्धी उपायों पर भले ही अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा प्रदान की जा सकती है किन्तु करारोपण व्यवस्था में राज्य सरकारों के हस्तक्षेप से भी करारोपण के प्रभावों में विरोधाभास की स्थिति पैदा हो जाती है। केन्द्र तथा विभिन्न राज्यों में अलग-अलग राजनैतिक दलों की सरकारों के अस्तित्व के कारण करारोपण के प्रभावों में समग्रता को नहीं देखा जा सकता। आपको यहाँ ध्यान देना आवश्यक है कि भारत में सभी राजनैतिक दलों के आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों में समरूपता का पाया जाना आवश्यक नहीं है। जिसके आधार पर कर प्रणाली एवं करारोपण के प्रभाव दोनों को अलग-अलग दिशाओं में देखा गया है।

करारोपण सम्बन्धी नीति निर्धारित करते समय सरकार द्वारा यह अपेक्षा की जाती है कि करारोपण के बाद एक विशेष क्षेत्र में यथास्थिति बनी रहे तथा एक दूसरे क्षेत्र में वांछित परिवर्तन परिलक्षित हो। लेकिन भले ही एक क्षेत्र में करारोपण के प्रभाव न हो लेकिन दूसरे क्षेत्र में परिलक्षित करारोपण के प्रभावों का भी प्रथम क्षेत्र में परोक्ष रूप से प्रभावों को देखा जाता है जिन्हें व्यक्तियों की जिज्ञासाओं, भावनाओं तथा मानसिकताओं के आधार पर और अधिक फैलाया जा सकता है। इस प्रकार करारोपण की प्रणाली के द्वारा सरकार द्वारा यह आशा करना अधिक औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता कि करारोपण का प्रभाव केवल वांछित क्षेत्र तक ही सीमित रह पायेगा। सरकार को कर प्रणाली का प्रयोग एक नीतिशास्त्र के रूप में करने की आवश्यकता पायी जाती है।

भारत में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों प्रकार की कर-प्रणाली को अपनाया गया है। प्रत्यक्ष करों के प्रभावों से बचने के लिये परोक्ष करारोपण के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिये हमेशा व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास किये जाते रहे हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था अनेक प्रकार की नैतिकता सम्बन्धी समस्याओं से भी भरी है जो करारोपण के प्रभावों को प्रभावहीन करने में महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। सरकार के कड़े नियम व उपाय करारोपण के प्रभावों को वांछित दिशा की ओर ले जाने में सहायता करते हैं।

जहाँ तक भारतीय अर्थव्यवस्था तथा करारोपण के प्रभावों के अन्तर्सम्बन्ध के सही दिशा में क्रियाशील होने का सवाल है, भारतीय अर्थव्यवस्था में करवंचना तथा कर-चोरी जैसी समस्या भी करारोपण के प्रभावों को उद्देश्यपूर्ण

होने से रोकती है। सामाजिक लाभ वाली करारोपण प्रणाली को नागरिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए प्रयोग करना चाहता है। भारतीय कर प्रणाली का लचीलापन इस करवंचना तथा कर की चोरी को प्रेरित करता है क्योंकि कर प्रणाली में होने वाले परिवर्तन व्यक्ति तथा संस्थानों एवं उद्यमों की भावी तथा वर्तमान नीतियों को अलग-अलग दिशाओं में मोड़ देने लगते हैं तथा सरकार की करारोपण व्यवस्था तथा करारोपण के प्रभावों को सीमित भी किया जाता है।

10.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्र.1 प्रत्यक्ष कर वितरणीय असमानताओं को दूर करने में किस दिशा में कार्य करता है?

प्र.2 आवश्यक वस्तुओं पर लगाये गये कर व्यक्ति की कार्यक्षमता को किस रूप में प्रभावित करते हैं?

प्र.3 ब्याज पर कर की ऊँची दर बचत करने की इच्छा पर कैसा प्रभाव डालती है?

प्र.4 सही या गलत का निषान लगाओ?

- (i) यदि कर की दरें प्रगतिशील हैं तो बचत की क्षमता दुष्प्रभावित होती हैं।
- (ii) कार्य क्षमता पर करारोपण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
- (iii) करारोपण के द्वारा वृद्धि दर को प्रभावित किया जाता है।
- (iv) करों की राहत वृद्धि दर को प्रतिकूल दिशा में प्रभावित करती हैं।

प्र.5 रिक्त पूर्ति करो?

- (i) करारोपण वितरणीय ---- को कम करने में सहायक सिद्ध हो सकता
 - (ii) करारोपण का संसाधनों के आवंटन पर ----- तथा ----- दोनों ही प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं।
 - (iii) करारोपण व्यक्ति की कार्य ---- एवं ----- को प्रभावित करता है।
- (असमानताओं, क्षमता-इच्छा, अनुकूल-प्रतिकूल)

10.6 सारांश (Summary)

अन्त में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि करारोपण अर्थव्यवस्था के समस्त मुख्य भागों को प्रभावित करता है। कार्य करने की क्षमता एवं इच्छा पर करारोपण का प्रभाव करारोपण की प्रकृति के आधार पर पड़ता है जो उसी दिशा में उत्पादन को प्रभावित करता है। बचत करने की क्षमता तथा इच्छा का उत्पादन से सीधा सम्बन्ध है। इसके साथ उत्पादन के संसाधनों द्वारा भी उत्पादन किसी न किसी दिशा में प्रभावित होता है। बचत तथा उत्पादन के संसाधन भी करारोपण से प्रभावित होते हैं। उत्पादन की तकनीकी भी किसी देश की कर प्रणाली से प्रभावित हुए नहीं रह सकती है। करारोपण देश में उत्पादन की वृद्धि को आकार तथा स्वरूप के संदर्भ में प्रभावित करता है। उच्च दर से लगाये गये करों का उत्पादन तथा वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। करों में छूट तथा निम्न दरें अनुकूल दिशा में प्रभावित करती है। करारोपण द्वारा समाज में आर्थिक विषमताओं को कम या अधिक भी किया जा सकता है। यह कर की प्रकृति पर निर्भर करता है। उत्पादन कार्य या उद्योगों में लगे संसाधनों को भी करारोपण

प्रभावित करता है। संसाधनों की गतिशीलता आदि करारोपण द्वारा प्रभावित होते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत करारोपण की लचीली प्रवृत्ति भी करारोपण के प्रभावों को अलग-अलग दिशाओं की ओर ले जाती है।

10.7 शब्दावली(Glossary)

- **उत्पादन** - किसी वस्तु/सेवा को और अधिक उपयोगी बनाना उत्पादन कहलाता है। या किसी वस्तु या सेवा में उपयोगिता का सृजन करना ही उत्पादन होता है।
- **वृद्धि** – किसी देश के अन्तर्गत उत्पादन में दीर्घकालीन वृद्धि।
- **विकास** - उत्पादन में दीर्घकालीन वृद्धि के साथ संस्थागत परिवर्तनों का योग विकास कहलाता है।
- **उत्पादन तकनीकी** – उत्पादन को प्राप्त करने के लिए साधनों को समायोजित करने का तरीका।
- **बचत** - आय का वह भाग जिसे उपभोग पर व्यय नहीं किया जाता है।
- **साधन** – उत्पादन में पाँच साधन – भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध, साहस।

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर(Answers for Practice Question)

10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- भाटिया एच0एल(2006) 0, लोकवित्त) Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा 0लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- वाष्णीय, जे0सी(2001) 0, राजस्व) Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा।
- पंत, जे0सी(2001) 0, राजस्व) Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- मिश्रा एवं पुरी(2010) , भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

10.9 सहायक/उपयोगी ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- रुद्र, दत्त एवं के0पी0एम 0सुन्दरम(2010) , भारतीय अर्थव्यवस्था, एस 0चन्द एण्ड कं 0लि0, रामनगर, नई दिल्ली।
- Agarwal, R.C. ((2006, Public Finance, Lakshmi Narayan Agarwal, Agra.
- सेठी, टी0टी(2001) 0, मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक विक्रेता एवं प्रकाशन, आगरा।

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay Type Questions)

प्र.1 करारोपण से आप क्या समझते हैं? करारोपण के सिद्धान्तों की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए?

प्र.2 करारोपण आय की वितरणीय असमानताओं को किस सीमा तक कम करने में सहायक होता है? स्पष्ट कीजिए

प्र.3 क्या करारोपण संसाधनों को कुशलतम प्रयोग को बढ़ावा देता है? इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए?

इकाई 11 करापात एवं कर-विवर्तन (Incidence and Shifting of Tax)

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3 करापात की अवधारणा
 - 11.3.1 करापात की परिभाषा
 - 11.3.2 करापात के रूप
 - 11.3.2 करापात एवं कराघात में अन्तर
- 11.4 कर विवर्तन की अवधारणा
 - 11.4.1 करापात एवं करविवर्तन के सिद्धान्त
 - 11.4.2 कर विवर्तन के प्रकार
 - 11.4.3 विभिन्न बाजारों में कर विवर्तन
- 11.5 महत्वपूर्ण करों की स्थिति में कर-विवर्तन
- 11.6 अभ्यास प्रश्न
- 11.7 सारांश
- 11.8 शब्दावली
- 11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 11.9 सहायक/ उपयोगी ग्रन्थ
- 11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना(Introduction)

प्रस्तुत करापात एवं कर विवर्तन से सम्बन्धित 'लोक राजस्व एवं बजटिंग' की ग्यारहवीं इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने करारोपण के प्रभावों का भली-भांति अध्ययन किया। करारोपण का प्रभाव अर्थव्यवस्था के किसी एक क्षेत्र विशेष पर नहीं पड़ता अपितु समस्त क्षेत्र प्रभावित होते हैं।

प्रस्तुत इकाई में करापात एवं कर विवर्तन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का आप अध्ययन कर सकेंगे। करापात की अवधारणा को स्पष्ट करने के साथ विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी करारोपण की परिभाषाओं को भी समझेंगे। करापात के विभिन्न रूपों का अध्ययन करने के बाद आप प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत कराघात एवं करापात के मध्य उत्तर को भी भली-भांति समझ सकेंगे कर विवर्तन के अन्तर्गत आप इसकी अवधारणा को समझेंगे। कर विवर्तन के सिद्धान्तों का अध्ययन करने के उपरान्त कर विवर्तन के प्रकारों को आप अच्छी तरह से समझ सकेंगे।

कर विवर्तन एक सामान्य अवधारणा नहीं है बल्कि यह अर्थव्यवस्था की प्रकृति तथा करों की स्थिति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। इसीलिए एक अर्थव्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण करों के सम्बन्ध में कर विवर्तन की स्थिति को भी आप प्रस्तुत इकाई के माध्यम से भलीभांति परिचित हो सकेंगे।

11.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन आपके लिए अत्यन्त ही उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध होगा क्योंकि:

- ✓ प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप करारोपण के उपरान्त करों को वास्तविक रूप से सहन करने की अवस्थाओं से भलीभांति परिचित हो सकेंगे जिससे आपको करापात की उपयोगिता तथा महत्व की जानकारी हो सकेगी।
- ✓ करापात जनता से किस रूप में वसूला जाता है तथा इसका वसूलने का वास्तविक मार्ग क्या है? इसके बारे में आप भलीभांति समझ सकेंगे।
- ✓ सरकार द्वारा जनता पर लगाया जाने वाले कर के बारे में उत्पन्न विभिन्न प्रकार की भ्रांतियों से आप परिचित हो सकेंगे।
- ✓ आप समझ सकेंगे कि सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के कर क्यों लगाये जाते हैं? तथा उनका जनता पर वास्तविक भार कहाँ तथा किस रूप में पड़ता है।

11.3 करापात की अवधारणा

सरकार किसी व्यक्ति या संस्था पर कर लगाती है तो वह व्यक्ति या संस्था उस कर की राशि को स्वयं वहन न करके दूसरों से बसूल कर सरकार को जमा करना चाहती है। ऐसा सम्भव भी हो सकता है और कभी-कभी ऐसा वह करने में असमर्थ रहता है। सामान्य रूप से सरकार द्वारा किये जाने वाले कर की राशि अन्तिम रूप से जिस व्यक्ति या संस्था के पास से निकाली जाती है उसका मौद्रिक भार ही करापात कहलाता है। इस प्रकार करापात कर की राशि को दूसरे से वसूलने का अन्तिम चरण होता है जिससे आगे किसी अन्य आर्थिक इकाई से इस राशि को वसूला नहीं जा सकता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि सरकार द्वारा करारोपण से कर की राशि का भुगतान अन्तिम से जिस आर्थिक इकाई को सहन करना होता है उस राशि के भार को करापात कहा जाता है।

11.3.1 करापात की परिभाषा

करापात को अनेक अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग रूप में परिभाषित किया है।

1. मसग्रेव के अनुसार : "करभार शब्द, जिसका साधारणतः प्रयोग किया जाता है, कर के अन्तिम या प्रत्यक्ष मौद्रिक भार के स्थान से सम्बन्धित होता है।"
2. डॉल्टन के शब्दों में : "कर के भार की समस्या इस बात से सम्बन्धित रहती है कि कौन उसका भुगतान करता है।"
3. प्रो० पीगू के अनुसार : "जो धन सरकारी कोष में पहुँचता है वह किसकी जेब से निकलता है अथवा किसकी जेब में वह धन सुरक्षित रहता, यदि कर के रूप में सरकार उसे न ले लेती।" अतः कर भार के अन्तर्गत यह ज्ञात किया जाता है कि कर-विवर्तन के क्या कारण हैं और यह किस सीमा तक किया जा सकता है। कर भार उस व्यक्ति पर होता है, जो इसे और किसी पर टाल ही नहीं सकता।"
4. वान मेरिंग के अनुसार : "कर भार वह बिन्दु है जहाँ पर कर का अन्तिम भार पड़ता है।"
5. प्रो० मेहता के अनुसार : "कर का भार एक कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है।"

11.3.2 करापात के रूप

करापात की अवधारणा एवं परिभाषाओं को समझने के बाद आप करापात के विभिन्न रूपों का अध्ययन इस उपखण्ड में कर सकेंगे। सामान्यतः करापात को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है।

1. **प्रत्यक्ष मौद्रिक भार** : करापात के इस रूप के अन्तर्गत उस मौद्रिक भार को शामिल किया जाता है जो करदाताओं द्वारा मुद्रा के रूप में सरकार के पास जमा करना पड़ता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष मौद्रिक भार कर राजस्व के बराबर होता है।
2. **प्रत्यक्ष गैर-मौद्रिक भार** : कर भार के प्रत्यक्ष गैर मौद्रिक भार से हमारा तात्पर्य उस भार से है जो जनता को करों के उपरान्त सहना पड़ता है लेकिन उसका परिमाण मुद्रा के रूप में नहीं किया जा सकता है। करापात के परिणाम स्वरूप होने वाली गैर मौद्रिक हानियों को इस श्रेणी में रखा जाता है।
3. **वास्तविक प्रत्यक्ष भार** : करापात के द्वारा जनता द्वारा सहन करने वाले प्रत्यक्ष मौद्रिक भार तथा प्रत्यक्ष गैर मौद्रिक भारों का योग वास्तविक प्रत्यक्ष भारों के बराबर होता है।
4. **अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार** : आपने प्रायः अनुभव किया होगा कि सरकार द्वारा कर की दरों में वृद्धि करने पर व्यापारी या विक्रेता द्वारा वस्तु के मूल्य में कर की दर की अपेक्षा अधिक वृद्धि कर दी जाती है तथा उसे कर राशि के बहाने वसूल लिया जाता है। इस प्रकार जनता पर पड़ने वाले मौद्रिक भार को अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार की संज्ञा दी जाती है। जैसे बिक्री कर दर में 2 प्रतिशत की वृद्धि होने पर उपभोक्ता से वस्तु की 3 प्रतिशत वृद्धि के साथ कीमत वसूली जाय तो वस्तु की कीमत में 1 प्रतिशत की वृद्धि को अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार कहा जायेगा।
5. **अप्रत्यक्ष गैर-मौद्रिक भार** : करारोपण के बाद होने वाली हानियों के बाद जनता पर पड़ने वाले ऐसे भारों को जो गैर-मौद्रिक होते हैं, अप्रत्यक्ष गैर-मौद्रिक भार के रूप में जाना जाता है।

6. **वास्तविक अप्रत्यक्ष भार :** करापात के इस रूप के अन्तर्गत अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार तथा अप्रत्यक्ष गैर मौद्रिक भारों के योग को शामिल किया जाता है। इस प्रभावों को प्रायः अर्थव्यवस्था में करापात के कारण उत्पन्न परिवर्तनों को शामिल किया जाता

11.3.3 करापात एवं कराघात में अन्तर

करापात की अवधारणा एवं इसके विभिन्न रूपों को आप भलीभांति समझ गये होंगे। इसके बाद आपको यह समझना भी अत्यन्त आवश्यक होगा कि करापात तथा कराघात के बीच पाया जाने वाला मूलभूत अन्तर क्या होता है? ताकि किसी भी प्रकार के भ्रम को दूर किया जा सके। करापात एवं कराघात में अन्तर को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. कराघात का सम्बन्ध उस व्यक्ति या आर्थिक इकाई से होता है जो कर को सरकार के कोष में जमा करता है। इस व्यक्ति की यह पूर्ण जिम्मेदारी होती है कि सरकार द्वारा जो धनराशि कर के रूप में जमा करने को कहा गया है वह उसे नियमित रूप से सरकार को जमा करे। यह व्यक्ति कर को जमा करने से अस्वीकृति नहीं दे सकता है और न ही अपनी असक्षमता को प्रकट कर सकता है। अर्थात् जिस व्यक्ति पर कर लगाया जाता है उस पर पड़ने वाले दायित्व को कराघात के रूप में कहा जाता है। कराघात का सम्बन्ध उस व्यक्ति से है जो सरकार द्वारा लगाये जाने वाले कर को अन्तिम रूप से वहन करता है तथा उससे अनिवार्य रूप से वसूल लिया जाता है। चाहे वह स्वयं कर को जमा करे या दूसरा व्यक्ति। करों की प्रकृति के अनुसार करापात की देयता का निर्धारण तय किया जाता है।
2. कराघात का सम्बन्ध सरकार द्वारा वसूले जाने वाले उस भार से है जो मौद्रिक रूप में होता है जबकि करापात का सम्बन्ध मौद्रिक होने के साथ गैर-मौद्रिक होता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कर को वहन करने वाले को सहना होता है।
3. सामान्य रूप से कहा जा तो यह अत्यन्त आसान एवं सरल होगा कि कराघात कर प्रणाली का प्रारम्भिक भाग है तो करापात कर प्रणाली का अन्तिम चरण होता है।
4. कराघात के बाद कर के भार का विवर्तन संभव होता है जबकि करापात स्वतः ही कर का विवर्तित रूप होता है।
5. सरकार को यह मालूम हो कि कर का विवर्तन किस दिशा में होगा तब ऐसी स्थिति में कराघात को कर प्रणाली का एक भाग माना जायेगा क्योंकि करारोपण के बिना कर का संग्रहण सम्भव नहीं हो सकता है। इसी क्रम में करापात सरकार की कर प्रणाली का उद्देश्य होता है जिससे सरकारी क्रियाकलापों का क्रियान्वयन एवं वित्तीय व्यवस्था प्रभावित होती है।
6. कराघात की एक वैधानिक अवधारणा है तथा कर देने वाले व्यक्ति या इकाई सरकार के प्रति जबावदेय होती है जबकि करापात का सम्बन्ध व्यक्तिगत रूप से होता है इसका सम्बन्ध सरकार के प्रति जबावदेयता से नहीं है।

11.4 कर-विवर्तन की अवधारणा

आप भलीभांति समझ गये होंगे कि कराघात एवं करापात के मध्य अन्तर किस प्रकार पैदा होता है। कर विवर्तन की अवधारणा मुख्य रूप से कराघात एवं करापात के मध्य अन्तर से सम्बन्धित है। सामान्य रूप से कर विवर्तन से हमारा आशय करक प्रणाली के उस भाग से लगाया जाता है जिसके अन्तर्गत करदाता कर के भार को दूसरे व्यक्ति या आर्थिक इकाई पर टालने में सफल हो जाता है। करदाता कर के भार के कितने अंश को दूसरे पर टालने में सफल हो पाता है यह कर की प्रकृति तथा वस्तु की कीमत लोच पर निर्भर करता है।

विवर्तन कराघात एवं कराभार (करापात) के बीच की एक कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। कराघात के द्वारा सरकार कर संग्रहण के लिए एक व्यक्ति या इकाई को आधार बनाती है वही करापात को अलग-अलग रूप में प्रसारण करने के लिए करदाता को कुछ ऐसी व्यवस्थाओं का सहारा दिया जाता है जिससे वह कर को सरकार को जमा करने की प्रतिबद्धता तो पूरी करता है लेकिन करके अन्तिम रूप से उगाही को स्वयं वहन नहीं करता है। इसके लिए वह उस वस्तु या इकाइयों से सम्बन्धित व्यक्तियों पर विवर्तित कर देता है। इस प्रकार जब कराघात एवं करापात अलग-अलग दो व्यक्तियों एवं संस्थाओं पर होता है तब कराघात एवं करापात को अलग-लग सहन करने की क्रिया कर विवर्तन कहलाती है। कुछ करों की स्थिति में कर का विवर्तन सम्भव होता है तथा कुछ करों की स्थिति में करापात को दूसरों पर टाला नहीं जा सकता है।

11.4.1 करापात एवं कर विवर्तन के सिद्धान्त

सामान्य रूप से कर विवर्तन को दो सिद्धान्तों के आधार पर समभव बनाया गया है।

1. केन्द्रीयकरण का सिद्धान्त : करापात का केन्द्रीयकरण सिद्धान्त के अनुसार सरकारक द्वारा किये जाने वाले करारोपण का भार अन्ततः एक ही स्थान पर आकर केन्द्रित हो जाता है। देश में किसी भी वस्तु या सेवा पर किसी भी प्रकार का कर लगाया जाय उसका समस्त भार अन्ततः भूमि/कृषि पर ही पड़ता है। करों का विवर्तन भी इसी प्रकार क्रियाशील होता है कि अन्तिम करापात भूमि पर ही पड़ता है।

2. कर-प्रसारण सिद्धान्त : इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांसीसी अर्थशास्त्री केनार्ड द्वारा किया गया। यह सिद्धान्त केन्द्रीयकरण सिद्धान्त के विपरीत तथ्य पर आधारित किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार करारोपण कहीं भी किया जाय परन्तु उसका प्रभाव अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों एवं भागों में फैल जाता है। अर्थात् करारोपण का भार समाज के प्रत्येक व्यक्ति को वहन करना होता है। सर हैमिल्टन के अनुसार, “प्रसार के सिद्धान्त में कदाचित आशावादी सिद्धान्त से भी अधिक सच्चाई है, और वह यह कि करों की प्रवृत्ति फैलने तथा समान होने की होती है और वे निश्चितता तथा एकसारिता से लगाये जायें तो प्रसारित होकर प्रत्येक सम्पत्ति पर ही अपना भार डालेंगे।” कर का विवर्तन इस प्रकार होता है कि समय के साथ-साथ कर का भार सम्पूर्ण समाज में फैल जाता है।

11.4.2 कर विवर्तन के प्रकार

कर विवर्तन की अवधारणा को आप भली-भांति समझ गये होंगे। इसके बाद अब यह समझना भी आपके लिए अत्यन्त आवश्यक होगा कि कर विवर्तन कितने प्रकार का होता है। कर विवर्तन के निम्नलिखित प्रकारों के बारे में आप अच्छी तरह से अध्ययन कर सकेंगे :

1. अग्रगामी कर-विवर्तन

2. पश्चगामी कर-विवर्तन

3. अग्रोन्मुखी कर-विवर्तन

अब आप कर विवर्तन के ऊपर लिखे प्रकारों के बारे में विस्तार से समझ सकेंगे।

1. **अग्रगामी कर विवर्तन** : अग्रगामी कर-विवर्तन से हमारा तात्पर्य सामान्य रूप से उस प्रक्रिया से है जिसके अन्तर्गत कर देने वाला व्यक्ति या संस्था कर का भार आगे वाले सम्बन्धित व्यक्ति पर टालने में सफल हो जाता है। उदाहरण के लिए आप बिक्री कर को लीजिए – माना सरकार द्वारा बिक्री कर लगा दिया गया तब उस कर को अदा तो वस्तु का विक्रेता करेगा लेकिन कर की धनराशि को वह अपनी जेब से नहीं करेगा। इस धनराशि के बराबर वह वस्तु की कीमत बढ़ा देगा तथा उसे क्रेता से बसल लेगा जिसे सामान्य रूप से उस वस्तु का उपभोक्ता ही कहा जायेगा। इस प्रकार इस प्रकार के कर विवर्तन में विक्रेता करके भार को वस्तु की कीमत बढ़ाकर वस्तु के उपभोक्ता पर टाल दिया जाता है तथा इस करभार को उपभोक्ता आगे और नहीं टाल सकता। इस प्रकार अग्रगामी कर विवर्तन में कराघात विक्रेता पर तथा करापात वस्तु के उपभोक्ता पर पड़ता है।
2. **पश्चगामी कर विवर्तन** : पश्चगामी कर विवर्तन ठीक अग्रगामी कर विवर्तन की उल्टी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत करदाता के भार को उस वस्तु या सेवा से सम्बन्धित पूर्ववर्ती व्यक्ति या इकाई पर टाला जाता है तथा कर का भार पूर्ववर्ती व्यक्ति या इकाई द्वारा ही सहन करना पड़ता है। इस प्रकार जब कर भार को पीरछे की ओर टाला जाता है तब उसे पश्चगामी कर विवर्तन की संज्ञा दी जाती है। इस एक उदाहरण द्वारा आसानी से समझाया जा सकता है। सरकार द्वारा उत्पादन कर लगाने की स्थिति में कर के भार को दो रूपों में टाला जा सकता है। प्रथमतः वह उत्पादन कर को उत्पादन की कीमत बढ़ाकर क्रेता से वसूल ले तथा द्वितीयतः वह उस उत्पादन में प्रयुक्त कच्चे माल की कीमतों में कर की धनराशि के बराबर कमी कर दे ताकि कर का भार कच्चे माल की आपूर्ति कर्ता को वहन करना पड़े। इस प्रकार पश्चगामी कर विवर्तन द्वितीय स्थिति की ओर इंगित करता है। इस प्रकार के कर विवर्तन में करापात को पीछे की प्रक्रिया में शामिल करते हुए टाल दिया जाता है तथा उसी से परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से बसूल लिया जाता है।
3. **अग्रोन्मुखी कर विवर्तन** : यह कर विवर्तन की वह अवस्था है जिसके अन्तर्गत करापात को आगे की ओर विक्रेता तथा उपभोक्ता के पूर्व के मध्यस्थों पर टाला जाता है। इस प्रक्रिया में कर भार को एक से अधिक क्रेताओं तथा छोटे विक्रेताओं पर टाला जाता है। इस प्रकार यह कर विवर्तन उपभोक्ता से पूर्व तक का अग्रगामी कर विवर्तन है।

11.4.3 विभिन्न बाजारों में कर विवर्तन

प्रस्तुत उपखण्ड के अन्तर्गत आप अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत विद्यमान विभिन्न बाजारों में कर-विवर्तन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अध्ययन कर सकेंगे। यहाँ पर हम सामान्य रूप से पूर्ण प्रतियोगी बाजार, एकाधिकार बाजार तथा अपूर्ण प्रतियोगी बाजार के अन्तर्गत व्यक्ति या संस्थाओं द्वारा किये जाने वाले कर-भार के विवर्तन की आलोचनात्मक व्याख्या करेंगे।

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कर-विवर्तन : जहाँ तक कर-विवर्तन की व्याख्या का सवाल है तब हम पूर्ण प्रतियोगी बाजार में यह जाँच पायेंगे कि कर का विवर्तन इस किस प्रकार तथा किस सीमा तक किया जा सकता है। जैसा कि आप जानते होंगे कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में समरूप वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है तथा विक्रेता एवं क्रेताओं की संख्या अधिक पायी जाती है। इसके साथ सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य पूर्ण प्रतियोगिता में यह पाया जाता है कि क्रेताओं को बाजार की पूर्ण जानकारी पायी जाती है तथा वस्तुओं की कीमतें समान बसूली जाती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार के अन्तर्गत क्रेता तथा विक्रेताओं का यह पूर्ण प्रयास होता है कि विक्रेता पर पड़ने वाले कराघात को क्रेता पर अधिकतम सीमा तक डाला जाय तथा क्रेता का पूर्ण प्रयास यह रहता है कि उस पर थोपा जाने वाला कर का भार विक्रेता तक ही सीमित रहे अर्थात् इस बाजार में क्रेता तथा विक्रेता कर के भार को कम से कम सहन करने का प्रयास करते हैं। लेकिन कर के विवर्तन बाजार की मांग की लोच तथा पूर्ण की लोच पर निर्भर करता है। आइये वस्तु की मांग तथा पूर्ण की अलग-अलग लोचों की स्थिति में कर का विवर्तन किस प्रकार तथा किस दिशा में होता है।

वस्तु की मांग की लोच एवं कर विवर्तन : पूर्ण प्रतियोगी बाजार के अन्तर्गत वस्तुओं पर लगाये जाने वाले कर को उसकी मांग की लोच एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करती है। सामान्य रूप से यह देखा जाता है कि लोचदान कीमत मांग की स्थिति में कर का विवर्तन कम तथा बेलोचदार कीमत मांग की स्थिति में कर का विवर्तन उपभोक्ताओं की ओर अधिक किया जाता है। यहाँ पर आप मांग की कीमत लोच की विभिन्न श्रेणियों में करके विवर्तन को समझ सकेंगे।

(i) **लोचदार कीमत लोच एवं कर विवर्तन :** लोचदार कीमत लोच की स्थिति में कर के भार के एक भाग को विक्रेता स्वयं सहन करता है तथा एक भाग को क्रेताओं पर टालने में सफल हो जाता है। लोचदार कीमत लोच की स्थिति में वस्तु की मांग में एकतरफा परिवर्तन सम्भव नहीं होता है। इसीलिये कर का विवर्तन एक निश्चित सीमा तक ही सम्भव होता है।

(ii) **अधिक लोचदार कीमत लोच एवं कर-विवर्तन :** इस स्थिति में कीमत में वृद्धि की अपेक्षा वस्तुओं की मांग मात्रा में आनुपातिक रूप से अधिक कमी आ जाती है। कर-विवर्तन के लिए ऐसी स्थिति विक्रेताओं के अनुकूल नहीं पायी जाती है। बाजार की इस स्थिति में कर का विवर्तन उपभोक्ताओं पर बहुत कम ही किया जा सकता है। कर का भार विक्रेताओं को ही वहन करना होता है।

(iii) **पूर्ण लोचदार कीमत लोच तथा कर विवर्तन :** कीमतों में बहुत कम या मामूली सी वृद्धि होने पर वस्तु की मांग में अत्यधिक गिरावट आ जाती है। तब कर का विवर्तन उपभोक्ताओं पर किया जाना सम्भव नहीं होता है। उपभोक्ता कर के भार को अपने ऊपर टालने से रोकने में सफल हो जाते हैं।

(iv) **बेलोचदार मांग तथा कीमत परिवर्तन :** पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बेलोचदार मांग वाली वस्तुओं की स्थिति में कर के भार का उपभोक्ताओं पर अत्यधिक सीमा तक टाला जा सकता है। उपभोक्ता कर के भार को सहन करने के लिए तैयार हो जाता है।

(v) **पूर्ण बेलोचदार मांग तथा कर-विवर्तन** : पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत यह वह स्थिति होती है जिसमें कीमतों में कर भार के परिणामस्वरूप कीमत वृद्धि का वस्तुओं की मांग मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। परिणामस्वरूप कर विवर्तन के प्रयासों की स्थिति में विक्रेता पूर्ण रूप से सफल हो जाता है और कर के विवर्तित भार को उपभोक्ताओं को ही सहन करना होता है।

पूर्ति की लोच एवं कर विवर्तन

वस्तुओं की मांग की कीमत लोच के कर विवर्तन पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने के बाद आप वस्तुओं की पूर्ति लोच के कर विवर्तन पर के आकार एवं दिशा पर पड़ने वाले प्रभावों को भलीभांति समझ सकेंगे। आपको ध्यान देना होगा कि अल्पकाल में पूर्ति की लोच बेलोचदार तथा दीर्घकाल में पूर्ति लोचदार स्थिति में पायी जाती है। क्योंकि दीर्घकाल में मांग की स्थिति के अनुसार पूर्ति में पर्याप्त तथा मांग के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कर के भार का विवर्तन समयानुसार कम या अधिक सीमा तक किया जा सकता है। यदि वस्तु की पूर्ति लोचदार या पूर्ण लोचदार है तब कर के भार का विवर्तन उपभोक्ताओं की ओर आसानी से किया जा सकता है तथा उपभोक्ता कर के नवीन भार को सहन करने में समर्थ होगा।

इसके विपरीत यदि पूर्ति की लोच बेलोचदार श्रेणी की है तब कर का भार उपभोक्ताओं की ओर विवर्तित नहीं किया जा सकता है तथा कर का नवीन भार की विक्रेताओं द्वारा ही वहन किया जायेगा। कर विवर्तन के सम्बन्ध में डॉल्टन ने स्पष्ट किया है कि, "विक्रेता पूर्ति को कम करके कर के भार को क्रेताओं पर ढकेलने का प्रयत्न करता है और क्रेता इसकी मांग कम करके विक्रेताओं पर विवर्तित करने का प्रयत्न करता है। इन दोनों की सफलता इनकी सापेक्षित शक्तियों पर निर्भर करती है।"

इस प्रकार मांग-पूर्ति की लोच सम्बन्धी शक्तियाँ कर विवर्तन को पूर्ण रूप से प्रभावित करने का कार्य करती है। मांग तथा पूर्ति की लोच सम्बन्धी विचार धारा के सम्बन्ध में डॉल्टन का यह कथन अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सिद्ध होता है - "किसी भी वस्तु पर लगाये गये कर का प्रत्यक्ष दायित्व भार विक्रेताओंके मध्य लगायी गयी वस्तु की मांग व पूर्ति की लचक के अनुपात पर निर्भर रहता है।"

अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में कर विवर्तन

आपको यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार तथा एकाधिकार बाजार को प्रायः काल्पनिक स्थितियाँ माना जाता है। व्यवहार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति ही पायी जाती है जो पूर्ण प्रतियोगिता तथा कर्णधिकार के बीच की स्थिति होती है। अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में वस्तु की कीमत, रंग एवं आकार (स्वरूप) तथा गुणवत्ता में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। अतः ऐसी स्थिति में कर का विवर्तन बाजार के निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करता है।

एकाधिकारी प्रतियोगी बाजार में उत्पादन की पूर्ति एवं कीमत सम्बन्धी नीतियों के कारण कर का विवर्तन अत्यन्त निम्न सीमा तक ही किया जाना सम्भव होता है। इसके साथ कर विवर्तन की सीमा एवं दिशा उत्पादकों के संयुक्त व्यवहार तथा उनकी नीतियों पर निर्भर करता है। फिर भी एक बड़ी सीमा तक उपभोक्ता कर भार से दूर रहने की स्थिति में रहता है। क्योंकि अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में उपभोक्ताओं के पास निकट की स्थानान्तरण वस्तुयें आसानी से पायी जाती है। वस्तुओं की गुणवत्ता तथा उत्पादकों का व्यवहार तथा विक्रय रणनीति कर-विवर्तन करने में

सहायक होती हैं। एकाधिकार के अन्तर्गत कर विवर्तन जैसा कि आपने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तुओं की मांग तथा पूर्ति की लोचों के आधार पर कर विवर्तन का अध्ययन किया। ठीक इसी प्रकार एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु की मांग तथा पूर्ति की लोच के आधार पर कर का विवर्तन किया जाता है। एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु का केवल एक ही उत्पादक तथा विक्रेता होता है इसीलिये ऐसी स्थिति में कर का विवर्तन अत्यधिक मात्रा में किया जा सकता है। इसके साथ एकाधिकार पूर्ति का निर्धारक भी होता है। इसलिये इस आधार पर भी कर का विवर्तन उपभोक्ताओं के ऊपर आसानी से किया जा सकता है।

एकाधिकारी बाजार में कर का विवर्तन कितना होगा यह कर की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। यदि कर एकमुश्त रूप में लगाया जाता है तो उत्पादक इस कर को स्थायी लागत के साथ समयोजित कर लिया जाता है तथा वस्तु की सीमान्त लागत में वृद्धि नहीं होती है। ऐसी स्थिति में करों के भार को विवर्तित नहीं किया जायेगा। कर विवर्तन से विक्रेता या एकाधिकार के लाभ में कमी आ जाती है। अतः कर की राशि का भुगतान एकाधिकारी द्वारा स्वयं किया जाता है।

इसके साथ एकाधिकार के अन्तर्गत कर मात्रा में आधार पर आरोपित किया जाता है तो उत्पादन की बिक्री की मात्रा के आधार पर कर की राशि घटती तथा बढ़ती रहती है। इस स्थिति में कर का विवर्तन उपभोक्ताओं की ओर होने लगता है। मात्रा के अनुसार कर लगने से वस्तु की सीमान्त लागत बढ़ती है जिससे पूर्ववत मूल्यों पर वस्तुएँ बेचने से उसके लाभ की मात्रा घट जाती है। इसीलिये वह वस्तुओं की कीमत में वृद्धि करके कर का विवर्तन किया जाता है।

एकाधिकारी बाजार में मात्रा के आधार पर करारोपण तथा कर विवर्तन के सम्बन्ध में टेलर का यह कथन अत्यधिक सार्थक सिद्ध होता है - *"दूसरे वर्ग के करों (वे कर जिनकी कुल मात्रा उत्पादन या विक्रय की मात्रा के अनुसार बदलती है परन्तु प्रति इकाई प्रमुख लागत में स्थायी वृद्धि होती है) को सामान्यतः आगे की ओर विवर्तित किया जा सकता है। क्योंकि सम्पूर्ण तालिका में एक ही दर से सीमान्त लागत बढ़ जाती है, जिससे सीमान्त लागत, लाभ व सीमान्त का नया सन्तुलन स्थापित होता है।"*

11.5 महत्वपूर्ण करों की स्थिति में कर विवर्तन

करापात एवं कर विवर्तन से सम्बन्धित विभिन्न महत्वपूर्ण तथ्यों का अध्ययन करने के बाद अब आप समझ सकेंगे कि कुछ महत्वपूर्ण करों की स्थिति में कर विवर्तन के द्वारा करापात की क्या स्थिति होती है। यहाँ पर कुछ महत्वपूर्ण करों के सम्बन्ध में कर विवर्तन एवं करापात की विवेचना करेंगे।

- 1. आय कर :** कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि विशेष स्थितियों में आय कर का विवर्तन किया जा सकता है परन्तु सामान्यतः आय कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता है। आय कर व्यक्तिगत आय पर लगाया जाता है तब उसके विवर्तन की कोई सम्भावना नहीं रहती है। इसके बाद व्यावसायिक आय कर की स्थिति में अर्थशास्त्री एक मत नहीं है। मुख्यतः दोनों प्रकार की आय कर की स्थिति में कर-विवर्तन को सम्भव नहीं बनाया जा सकता है।
- 2. बिक्रीकर एवं उत्पादन कर :** बिक्रीकर तथा उत्पादन कर की स्थिति में कर के विवर्तन को सम्भव किया गया है। इसके साथ कर को विवर्तन की मात्रा वस्तु एवं सेवा की मांग व पूर्ति लोच के आधार पर तय की

- जाती है। कर लगने से वस्तु या सेवा की कीमत वृद्धि होती है जिसे उपभोक्ताओं से वसूलने का प्रयास किया जाता है। यदि मांग की कीमत लोच बेलोचदार है तो कर का विवर्तन उपभोक्ताओं की ओर होगा और करापात उपभोक्ताओं पर ही पड़ेगा। लोचदार मांग की स्थिति में करापात का विवर्तन पूर्ण रूप से उपभोक्ताओं पर नहीं किया जा सकता है। इसके विपरीत पूर्ति लोच लोचदार है कर का विवर्तन उपभोक्ता की ओर होगा तथा पूर्ति लोच बेलोचदार होने पर का विवर्तन नहीं किया जा सकता है।
3. **गृह कर** : गृह कर की स्थिति में कर का विवर्तन हो सकता है और नहीं भी हो सकता। यदि घर में गृह मालिक का परिवार ही निवास करता है तो कर का भार गृह स्वामी को ही वहन करना होगा तथा कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता है। जब घर में मकान मालिक के साथ किरायेदार भी रहते हैं तो कर का भार मकान मालिक व किरायेदार पर संयुक्त रूप से पड़ेगा क्योंकि कर भार का एक अंश किराये के रूप में वृद्धि कर दी जायेगी। ठीक इसके विपरीत यदि मकान में केवल किरायेदार ही निवास करते हैं तो गृह कर का पूर्ण विवर्तन कर दिया जायेगा तथा करापात किरायेदार पर ही पड़ेगा।
 4. **सीमा शुल्क** : आयात एवं निर्यात किये जाने वाले माल एवं सेवाओं की कीमत लोच के आधार पर करों का विवर्तन किया जा सकता है। यदि आयात होने वाले सामान की मांग व पूर्ति बेलोचदार है तो कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार निर्यात होने वाली वस्तु की मांगलोच बेलोचदार है तो कर का विवर्तन किया जा सकता है। यदि निर्यात की स्थानान्पन्न वस्तुएँ उपलब्ध हैं तो कर का भार निर्यातक को ही करना होगा।
 5. **भूमि कर** : भूमि कर की स्थिति में कर का विवर्तन किया भी जा सकता है तथा नहीं भी किया जा सकता है। यदि कर की स्थिति में किसान अपनी फसल की कीमत बढ़ाने में सफल होता है तो कर का विवर्तन कृषि उत्पादन को खरीदने वालों पर किया जा सकता है। यदि कर को मात्रा का निर्धारण आर्थिक लगान पर लगाया जाता है तो कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता है तथा कर का भार भू-स्वामी को ही सहन करना होगा। इसके साथ कृषि उत्पादन की मांग की लोच के आधार कर का विवर्तन किया जा सकता है। यदि उत्पादन की मांग की लोच बेलोचदार है तो कर का विवर्तन आसानी से किया जा सकता है तथा उत्पादन की मांग लोच इकाई से अधिक है तो कर का भार किसानों को ही वहन करना होगा। कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता है।
 6. **सम्पत्ति कर** : सम्पत्ति कर की स्थिति में कर विवर्तन की स्थिति आसान नहीं है। सामान्य रूप से कर का भार सम्पत्ति मालिक को ही सहन करना पड़ता है। यदि सम्पत्ति का प्रत्यक्ष रूप से उपभोग किया जा सकता है तो सम्पत्ति कर का विवर्तन उपभोक्ताओं पर किया भी जा सकता है। इसके साथ यदि सम्पत्ति का प्रयोग उत्पादन कार्य में किया जाता है तो उत्पादन की मांग एवं पूर्ति की लोच के आधार पर कर का विवर्तन किया जा सकता है।
 7. **लाभ कर** : लाभ कर की स्थिति में भी करों का भार व्यावसायिक निगमों के मालिकों को ही सहन करना पड़ता है। क्योंकि यह कर आय कर के ही समकक्ष रखा जाता है। अतः लाभ कर का विवर्तन करना सम्भव नहीं होता है।

11.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्र.1 करापात को परिभाषित कीजिए?

प्र.2 "कर के भार की समस्या इस बात से सम्बन्धित रहती है कि कौन उसका भुगतान करता है?" यह कथन किस अर्थशास्त्री का है?

प्र.3 करापात के कितने रूप होते हैं?

प्र.4 सत्य तथा असत्य का चयन कीजिए?

(i) करापात एवं कराघात एक ही अवधारणा है।

(ii) वास्तविक प्रत्यक्ष भार प्रतयक्ष मौद्रिक तथा प्रत्यक्ष अमौद्रिक भार है।

(iii) कराघात एवं कानूनी दायित्व है।

(iv) कर विवर्तन सभी प्रकार के करों के लिए किया जाता है।

प्र.5 सही विकल्प का चयन कीजिए?

कर प्रसरण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया -

i) मार्शल द्वारा

(ii) केनार्ड द्वारा

(iii) हिक्स द्वारा

(iv) एडम स्मिथ द्वारा

प्र.6 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(i) प्रत्यक्ष करों में करापात एवं कराघात ---- ही व्यक्ति पर होता है।

(ii) कर विवर्तन वस्तु की मांग की ---- पर निर्भर करता है।

(iii) केन्द्रीयकरण सिद्धान्त में कर का अन्तिम भार ----- पर ही पड़ता है।

(iv) अग्रगामी कर विवर्तन में वस्तु की कीमतें ----- जाती हैं।

(v) आय कर के सम्बन्ध में कर विवर्तन ----- नहीं होता है।

(लोच, एक, भूमि/कृषि, समीचीव, बढ़)

प्र.7 मात्रा के आधार पर करारोपण में कर का विवर्तन किस दिशा में होता है?

11.7 सारांश (Summary)

सारांशतः करारोपण के द्वारा एकत्रित की जाने वाली राशि को अन्ततः जिस व्यक्ति या संस्था से बसूला या निकाला जाता है उसके मौद्रिक भार को करापात के रूप में जाना जाता है। मसग्रेव, डॉल्टन, पीगू, प्रो0 मेहता आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा करापात को उचित रूप में परिभाषित किया है। इसके साथ करापात अनेक रूपों में देखने को मिलता है जो मौद्रिक रूप में होने के साथ गैर-मौद्रिक रूप में भी अन्तिम व्यक्ति या संस्था को प्रभावित करता है। इसी आधार पर करापात को अलग-अलग रूपों में देखा जाता है। करापात एवं कराघात के मध्य अन्तर स्पष्ट करने का मुख्य आधार कर विवर्तन ही है। करापात एवं कराघात में कानूनी दायित्वों को भी शामिल किया गया है जो कर विवर्तन के स्वरूप को प्रभावित करता है।

कर विवर्तन के औचित्य को स्पष्ट करने के लिए केन्द्रीयकरण सिद्धान्त तथा कर प्रसरण सिद्धान्तों का भी सहारा लिया जाता है। कर विवर्तन की प्रकृति एवं स्वरूप के आधार पर कर विवर्तन किसी भी दिशा में क्रियाशील हो सकता है। कर विवर्तन तथा करों की प्रकृति के मध्य एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध पाया जाता है।

11.8 शब्दावली (Glossary)

- अवधारणा - संकल्पना मौद्रिक - मुद्रा के रूप में।
- पूर्ववर्ती – पहले वाला।
- लोचदार माँग – कीमत की अपेक्षा माँग में आनुपातिक रूप से अधिक परिवर्तन।
- बेलोचदार माँग - कीमत की अपेक्षा माँग में आनुपातिक रूप में कम परिवर्तन।
- बाजार – अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत वह क्षेत्र जहाँ तक किसी वस्तु को क्रय तथा विक्रय करने वाली शक्तियाँ फैली होती हैं।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Question)

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- पंत, जे0सी(2005) 0, राजस्व) Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- भाटिया एच0एल(2006) 0, लोकवित्त) Public Finance), विकास पब्लिपिंग हाउस प्रा 0लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- वाष्णीय, जे0सी(1997) 0, राजस्व) Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेशन, हास्पीटल रोड, आगरा।
- मिश्र, जगदीश नारायण(2011) , भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महन पब्लिषर्स, हरिसदन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

11.11 सहायक/ उपयोगी ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- भारतीय अर्थव्यवस्था, मासिक पत्रिका, उपकार प्रकाशन, आगरा।
- पुरी एवं मिश्रा(2011) , भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिपिंग हाउस, नई दिल्ली।
- दत्त एवं सुन्दरम(2010) , भारतीय अर्थव्यवस्था, एस०चन्द एण्ड कलि0, नई दिल्ली।
- सेठी, टी0टी(2008) 0, मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक विक्रेता एवं प्रकाशन, आगरा।

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

- प्र.1 करापात से आप क्या समझते हैं? कराघात एवं करापात में अन्तर को स्पष्ट करो? ।
- प्र.2 कर विवर्तन से आप क्या समझते हैं तथा कर विवर्तन के विभिन्न रूपों को समझाइये?
- प्र.3 करापात एवं कर विवर्तन के मुख्य सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए? तथा विभिन्न करों के सम्बन्ध में कर विवर्तन किस दिशा में होता है? स्पष्ट कीजिए?
- प्र.4 मांग तथा पूर्ति की लोच की विभिन्न श्रेणियाँ कर विवर्तन को किस प्रकार प्रभावित करती हैं?
- प्र.5 अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में कर विवर्तन की विवेचना कीजिए?

इकाई 12 लोक उद्यमों के प्रकार, महत्व एवं उपयोगिता (Types, Importance and Uses of Public Enterprises)

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 लोक उद्यमों की अवधारणा
 - 12.3.1 लोक उद्यमों के प्रकार
- 12.4 लोक उद्यम
 - 12.4.1 लोक उद्यमों का महत्व
 - 12.4.2 लोक उद्यमों की उपयोगिता
- 12.5 भारत में लोक उद्यम
- 12.6 अभ्यास प्रश्न
- 12.7 सारांश
- 12.8 शब्दावली
- 12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 12.11 सहायक/उपयोगी ग्रन्थ
- 12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

लोक उद्यम खण्ड के अन्तर्गत यह तेरहवीं इकाई है जो लोक उद्यमों के प्रकार, महत्व एवं उपयोगिता से सम्बन्धित की गयी है। लोक उद्यम की अवधारणा का सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लोक सत्ताओं की आर्थिक व्यवस्थाओं से है जो किसी अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी समझा गया है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत सर्वप्रथम आपको लोक उद्यम की अवधारणा से परिचित कराया जायेगा जिसके आधार पर इसके प्रकारों एवं महत्व सम्बन्धी विभिन्न तथ्यों को आप भली-भांति समझने का प्रयास करेंगे। विभिन्न आधारों पर लोक उद्यमों को अलग-अलग प्रकारों में विभाजित किया गया है जिसके आधार पर ही इन लोक उद्यमों के महत्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अलग-अलग स्वरूप तथा आकार वाली अर्थव्यवस्थाओं के लिये लोक उद्यमों का महत्व भी अलग-अलग स्तर पर निर्धारित किया गया है। जहाँ तक लोक उद्यमों की उपयोगिता की बात है लोक उद्यमों की उपयोगिता को देशों की सरकारों द्वारा अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखा तथा पहचाना गया है और इसी दृष्टिकोण के आधार पर लोक उद्यमों का संचालन एवं क्रियान्वयन सरकारों द्वारा किया जा सकता है। लोक उद्यमों की उपयोगिता का वास्तविक सम्बन्ध इन उद्यमों में निहित क्षमताओं का उद्देश्य पूर्ण प्रयोग करने से जोड़ा जा सकता है। समान आकार तथा स्वरूप वाले लोक उद्यमों की उपयोगिता अलग-अलग सरकारों के लिए अलग-अलग स्तर पर आंकलित की गयी है। आइये इन सभी तथ्यों का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

12.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप भली-भांति समझ सकते हैं कि

- ✓ लोक उद्यम क्या होते हैं तथा ये कितने प्रकार के होते हैं? इसके साथ आप विभिन्न प्रकार के लोक उद्यमों की मूलभूत विशेषताओं से भी आप भलीभांति परिचित हो सकेंगे।
- ✓ किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये लोक उद्यम कितने महत्वपूर्ण हैं तथा इनकी उपयोगिता के आधार पर इन देशों का विकास किस दिशा की ओर होगा।
- ✓ भारत में लोक उद्यमों की क्या उपयोगिता है तथा अर्थव्यवस्था में इनका क्या स्थान निर्धारित किया गया है?

12.3 लोक उद्यमों की अवधारणा

सामान्य रूप से विचार किया जाय तो लोक उद्यमों से हमारा तात्पर्य ऐसे उद्यमों से है जिन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष से सरकार या लोक सत्ताओं का हस्तक्षेप विद्यमान पाया जाता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि जिन उद्यमों पर सार्वजनिक सत्ताओं या सरकारों, नगर पालिका या निगम अथवा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है उन्हें लोक उद्यमों की श्रेणी में रखा जाता है।

लोक उद्यम की अवधारणा समाजवादी अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार ऐसे उद्यम, लोक उद्यम कहलाते हैं जिनका नियन्त्रण एवं प्रबन्ध तथा संचालन का उद्देश्य सामान्य जनता से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा होता है। आपको यह ध्यान देना भी अत्यन्त आवश्यक है कि इन उद्यमों पर नियंत्रण एवं स्वामित्व दोनों की अनिवार्यता नहीं पायी जा सकती है। नियंत्रण एवं स्वामित्व अलग-अलग संस्थाएँ कर

सकती हैं लेकिन एक का प्रत्यक्ष रूप से सरकार या लोक सत्ताओं के हाथ में पाया जाना अति आवश्यक हो जाता है। दोनों की वास्तविक शक्ति अन्तः सरकाकर के अधीन ही पायी जाती है, चाहे तो सरकार इन उद्यमों की स्थापना, संचालन आदि के लिए निजी एवं अर्द्धसरकारी संस्थाओं का सहयोग ले सकती है।

12.3.1 लोक उद्यमों के प्रकार

लोक उद्यमों की अवधारणा को स्पष्ट करने के बाद अब आप लोक उद्यमों के प्रकारों से परिचित हो सकेंगे। विभिन्न आधारों पर लोक उद्यमों को अलग-अलग श्रेणियों में विभक्त किया गया है, जिनको निम्न रूप में समझाया जा सकता है।

अ. स्वामित्व एवं नियंत्रण के आधार पर लोक उद्यम

ब. उद्देश्यों के आधार पर लोक उद्यम

स. विभागीय आधार पर लोक उद्यम

द. प्रकृति के आधार पर लोक उद्यम

य. शासकीय आधार पर लोक उद्यम

अ. स्वामित्व एवं नियंत्रण के आधार पर नियंत्रण : लोक उद्यमों पर स्वामित्व एवं नियंत्रण के आधार पर ये निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं -

1. पूर्ण स्वामित्व एवं नियंत्रण वाले लोक उद्यम : ये लोक उद्यम वे उद्यम हैं जिस पर सरकार या सरकारी संस्थाओं का पूर्ण स्वामित्व तथा नियंत्रण होता है। इन उद्यमों को संचालन करने की पूर्ण जिम्मेदारी सरकार की ही होती है। ये उद्यम सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों एवं कार्यक्रमों के आधार पर संचालित किये जाते हैं।

2. अपूर्ण स्वामित्व एवं नियंत्रण वाले लोक उद्यम : इन उद्यमों पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण एवं स्वामित्व नहीं पाया जाता है। स्वामित्व एवं नियंत्रण का एक भाग अन्य निगम या संगठन के हाथ में होता है। लेकिन अन्तिम रूप से सरकार की प्रभावी मानी जाती है।

ब. उद्देश्यों के आधार पर लोक उद्यम : लोक उद्यमों को उनके उद्देश्यों के आधार पर वाणिज्यिक लोक उद्यम तथा गैर-वाणिज्यिक लोक उद्यम दो भागों में रखा गया है।

1. वाणिज्यिक लोक उद्यम : वाणिज्यिक लोक उद्यमों से हमारा तात्पर्य ऐसे उद्यमों से है जो वाणिज्यिक / व्यापारिक क्रियाकलापों, कार्यक्रमों एवं नीतियों से सम्बन्धित होते हैं। इन लोक उद्यमों की स्थापना एवं संचालन वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिये किया जाता है तथा लाभ अर्जन को महत्व दिया जाता है।

2. गैर-वाणिज्यिक लोक उद्यम : इस श्रेणी में ऐसे लोक उद्यमों को शामिल किया जाता है जिनका उद्देश्य लाभ अर्जन न करके सार्वजनिक कार्यों के अन्तर्गत लोक-कल्याण को रखा गया है। शिक्षण संस्थाएँ, स्वास्थ्य संस्थाएँ, जल संस्थाएँ आदि को गैर-वाणिज्यिक लोक उद्यम की श्रेणी में रखा जाता है।

स. विभागीय आधार पर लोक उद्यम : विभागीय हस्तक्षेप के आधार पर लोक उद्यमों को निम्नलिखित दो भागों में रखा गया है।

1. विभागीय लोक उद्यम : विभागीय लोक उद्यमों से हमारा तात्पर्य ऐसे उद्यमों से है जो सरकारी विभागों के अधीन संचालित होते हैं तथा इन सम्बन्धित विभागों की जबाबदेयता सीधे सराकर के प्रति होती है। जो लोक उद्यम जिस क्षेत्र से सम्बन्धित होता है उस पर उसी कार्यक्षेत्र के सरकारी विभाग का स्वामित्व एवं नियंत्रण पाया जायेगा। ये विभागीय लोक उपक्रम पूर्ण रूप से सरकारी कानून एवं नियमों के अधीन ही क्रियान्वित होते हैं। सम्बन्धित विभाग स्वयं की रणनीति एवं योजना बनाने एवं उसे क्रियान्वित करने के लिये स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसीलिये विभागीय लोक उद्यमों के संचालन में अधिकारी एवं कर्मचारी किसी भी जिम्मेदारी से बचना चाहता है।

2. गैर-विभागीय लोक उद्यम : सरकारी विभागों में व्याप्त अनियमितताओं एवं बुराइयों से बचने के लिए सरकार जब लोक उद्यमों की स्थापना, संचालन एवं स्वामित्व किसी अन्य निगम, सार्वजनिक संस्था या बोर्ड को सौंप देती है तब उन उद्यमों को गैर विभागीय लोक उद्यम की संज्ञा दी जाती है। इन उद्यमों के संचालन के लिये सम्बन्धित निगम, संस्था या बोर्ड स्वतंत्रता के साथ कार्य कर सकता है तथा उद्यमों के विस्तार एवं विास के लिए रणनीति एवं योजनायें बना सकता है। सरकार एवं सरकारी विभाग का सीधा हस्तक्षेप नहीं पाया जाता है।

द. प्रकृति के आधार पर लोक उद्यम : लोक उद्यमों की प्रकृति के आधार पर सेवा उद्यमों तथा विनिर्माण उद्यमों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

1. सेवा उद्यम : इस प्रकार के लोक उद्यमों में वे उद्यम शामिल किये जाते हैं जिनकी स्थापना जनता को आवश्यक सेवायें उपलब्ध कराने के लिये की जाती हैं। रेल, सड़क, परिवहन, ऊर्जा, बैंकिंग, स्वास्थ्य संस्थायें, शिक्षण संस्थायें, पर्यावरण संस्थायें, जल निगम आदि उद्यम इस श्रेणी में शामिल किये जाते हैं। इन उद्यमों के अन्तर्गत पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन नहीं किया जाता है। सामान्य रूप से ये उद्यम सामाजिक व आर्थिक सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं।

2. विनिर्माण उद्यम : विनिर्माण लोक उद्यम से तात्पर्य ऐसे उद्यमों से लगाया जाता है जिसके द्वारा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है चाहे उन वस्तुओं का प्रयोग सार्वजनिक कार्यों में हो या निजी कार्यों में। लोहा, कोयला, सुरक्षा सामग्री, खनन, कपड़ा, कागज, घड़ी, कार तथा अन्य वस्तुओं का सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत उत्पादन करने वाले उद्यम इस श्रेणी में रखे जाते हैं।

य. शासकीय आधार पर लोक उद्यम : शासकीय आधार पर लोक उद्यमों को निम्नलिखित दो प्रकारों के उद्यमों के अन्तर्गत रखा गया है।

1. आरक्षित लोक उद्यम : आरक्षित लोक उद्यमों के अन्तर्गत वे लोक उद्यम शामिल किये जाते हैं जो सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आरक्षित वस्तुओं एवं सेवाओं का ही उत्पादन कर सकते हैं जैसे सुरक्षा सामग्री, रेल, परमाणु ऊर्जा आदि के क्षेत्र में संचालित उद्यम इस श्रेणी में रखे जाते हैं। इन क्षेत्रों में निजी क्षेत्र वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन नहीं कर सकता है।

2. गैर-आरक्षित लोक उद्यम : गैर-आरक्षित लोक उद्यमों से हमारा तात्पर्य ऐसे उद्यमों से है जो ऐसे क्षेत्रों में वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करते हैं जिन क्षेत्रों में निजी क्षेत्र की वस्तुओं एवं सेवाओं का

उत्पादन कर सकता है। ऐसा सरकार द्वारा निजी क्षेत्र के एकाधिकार को रोकने एवं उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिये किया जाता है।

12.4 लोक उद्यम

इस खण्ड के अन्तर्गत लोक उद्यमों के महत्व एवं उपयोगिता को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

12.4.1 लोक उद्यमों का महत्व

लोक उद्यमों की अवधारणा एवं इनके विभिन्न प्रकारों को आप भलीभांति समझ गये होंगे। इसके उपरान्त इस उपखण्ड के अन्तर्गत आप लोक उद्यमों के महत्व को आसानी से समझ सकेंगे। लोक उद्यम का महत्व किसी भी देश या अर्थव्यवस्था के लिये एक अलग रूप में ही देखा गया है। इसे निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

1. अर्थव्यवस्था पर वास्तविक नियंत्रण : लोक उद्यम तथा अर्थव्यवस्था पर वास्तविक नियंत्रण दोनों का अन्तर्सम्बन्ध अत्यन्त सीधा तथा जटिल भी है। सामान्य रूप से लोक उद्यम किसी अर्थव्यवस्था में होने वाले आर्थिक उतार चढ़ावों तथा अन्य मूल्यात्मक अप्रत्याशित परिवर्तनों पर पूर्ण नियंत्रण करने में अत्यन्त ही सार्थक सिद्ध हुए हैं। प्रायः निजी उद्यमों का उद्देश्य भी जनता को सामान्य रूप से जीवन यापन करने की व्यवस्थाओं से जुड़ा हुआ है। लोक उद्यमों का उत्पादन किसी भी स्तर पर अर्थव्यवस्था में आर्थिक अस्थिरता उत्पन्न नहीं कर सकता जब तक कि निजी क्षेत्र द्वारा किसी भी प्रकार की अवरोधात्मक स्थितियाँ पैदा न की जायें।

अर्थव्यवस्थाओं के मध्य निजी उद्यमियों एवं सरकार के मध्य आर्थिक स्तर पर सामंजस्य स्थापित हो सकता है लेकिन दोनों क्षेत्रों के उद्यमों के अन्तर्गत उद्देश्यों के मध्य एकरूपता पैदा नहीं की जा सकती। इसी लिये निजी क्षेत्र द्वारा पैदा होने वाली विकृतियों को लोक उद्यमों के द्वारा ही नियंत्रित किया जा सकता है। जिसे आप सभी अर्थव्यवस्थाओं के मध्य सामान्य रूप से देख सकते हैं।

2. सामरिक दृष्टि से औचित्यपूर्ण : सामरिक सुरक्षा सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति के लिये लोक उद्यमों के महत्व को औचित्यपूर्ण ठहराया जाता है। देशों की आन्तरिक तथा बाह्य सुरक्षा की जिम्मेदारी एवं सम्बन्धित उद्योगों का संचालन प्राचीनकाल से ही सरकारों के नियंत्रण में रहा है। निजी क्षेत्र की लाभदयकता की लालसा तथा अति महत्वाकांक्षी प्रवृत्ति होने के कारण सामरिक सम्बन्धी क्षेत्र में इसका प्रवेश उचित नहीं ठहराया जा सकता है। इसके साथ किसी भी देश की सरकार युद्ध सामग्री, जैसे अस्त्र, शस्त्र, टैंक, वायुयान, जलयान, गोलाबारूद आदि के लिये निजी क्षेत्र के उद्यमों पर निर्भर रहकर राष्ट्र की सुरक्षा सम्बन्धी क्रियाकलापों का उचित संचालन नहीं कर सकती। देश की सुरक्षा सम्बन्धी नीतियों एवं कार्यक्रमों में गोपनीयता बनाये रखना भी अति महत्वपूर्ण है जो सार्वजनिक उद्यमों द्वारा ही सम्भव हो सकती है।

इसके साथ यह भी तर्क दिया जा सकता है कि देश की सुरक्षा सम्बन्धी उपक्रमों पर भारी मात्रा में धनराशि व्यय तथा निवेश करनी पड़ती है तथा उसका प्रतिफल व्यक्तिगत हितों के लिये नहीं किया जा सकता है। इसीलिये इतनी बड़ी राशि का निवेश निजी क्षेत्र के उद्यमों में करना सामर्थ्य के अन्तर्गत नहीं आता है तथा

सरकारी नीयतों की गोपनीयता भी भंग होती है। आपको विदित हो कि पिछले गत वर्षों में सामरिक दृष्टि की रक्षा सामग्री के विक्रय-क्रय में निजी क्षेत्र की सहभागिता के प्रयासों के कारण अनेक प्रकार की वित्तीय अनियमितता

पैदा हुई। इसके साथ सामरिक मामलों में गुणवत्ता का भी हास हुआ है। अतः सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के अन्तर्गत ऐसे उत्पादन का औचित्य ठहराया जा सकता है। देश की सुरक्षा का सम्बन्ध व्यक्तिगत न होकर आम जनता के हितों की रक्षा से है। अतः यहाँ पर आर्थिक लाभदायकता का तर्क भी नहीं दिया जा सकता है।

3. प्राकृतिक सुरक्षा सम्बन्धी महत्व : किसी भी देश के अन्दर लोक उद्यमों का महत्व इसलिये और बढ़ जाता है कि ये उद्यम प्राकृतिक दृष्टि से भी सुरक्षात्मक माने गये हैं। देश के अन्दर निर्मित एवं संचालित होने वाली नीतियों एवं कार्यक्रमों के अन्तर्गत देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा एवं प्राकृतिक वातावरण की अभिरक्षा को प्राथमिकता दी जाती है। यहाँ तक कि सरकारों के अनेक उपक्रम प्राकृतिक सुरक्षा सम्बन्धी उद्देश्यों के लिये ही स्थापित किये गये हैं तथा उनका संचालन पूर्ण रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत है। आपको यहाँ पर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि निजी क्षेत्र के उद्यमों के सम्बन्ध में प्राकृतिक सुरक्षा के तर्क को प्राथमिकता नहीं दी जाती है। प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन निजी क्षेत्र द्वारा जनता के हितों को देखकर नहीं किया जा सकता है। यहाँ पर केवल लाभ की दर तथा न्यूनतम लागत की अवधारणाओं को महत्व दिया जाता है।

देश के अन्तर्गत प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध खनिज, वन, जल, मृदा आदि प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर सरकारी नियंत्रण को उचित ठहराया गया है ताकि इनका प्रयोग देश के हित में तथा दीर्घकालीन परिणामों को ध्यान में रखकर किया जा सके। देश में प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता को देखते हुए यह भी अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि इन संसाधनों का प्रयोग मितव्ययतापूर्ण ही किया जाय। इन प्राकृतिक संसाधनों पर व्यक्तिगत नियंत्रण प्रदान किया जाय तो इनका संरक्षण अत्यन्त ही कठिन होगा तथा इनका दुरुपयोग व्यक्तिगत हितों के लिये किया जायेगा जिससे इसका लाभ आम जनता को एवं सार्वजनिक रूप से नहीं मिल सकेगा।

4. आर्थिक असमानता कम करने में सहायक : जहाँ एक ओर लोक उद्यम समाजवाद की ओर इंगित करता है वहीं आर्थिक असमानताओं को कम करने में लोक उद्यम महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। पूंजीवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं के अन्तर्गत निजी क्षेत्र निरन्तर विस्तार की ओर बढ़ा है जिससे पूंजीवादी ताकतों के पक्ष में धन या पूँजी का केन्द्रीयकरण हुआ है जिससे गरीबों तथा अमीरों के बीच अन्तर बढ़ा है। लोक उद्यम इस अन्तर को कम करने का एक साक्त माध्यम के रूप में देखा गया है। लोक उद्यमों का संचालन सामाजिक हितों अथवा कल्याण की भावना पर आधारित किया गया है। इसके संचालन में गरीब एवं अमीर सभी वर्गों के सहयोग की आवश्यकता को महसूस किया गया है। इसके साथ लोक उद्यमों के संचालन से गरीब तथा निर्धन वर्ग को अनेक सुविधाएँ तथा वस्तुएँ उचित मूल्य पर रियायतों के साथ उपलब्ध सम्भव हो सकती हैं। लोक उद्यमों की उपस्थिति में वस्तुओं एवं सेवाओं का कृत्रिम अभाव पैदा नहीं किया जा सकता है।

आपको पूर्व में विदित हो कि पूंजीवादी ताकतें अर्थव्यवस्था में एकाधिकाकर की प्रवृत्ति को बढ़ाती हैं जिससे अर्थव्यवस्था में अनेक प्रकार की बनावटी समस्याएँ पैदा की जाती हैं जिससे गरीब तथा मध्यम वर्ग के साथ शोषणात्मक अन्याय किया जाता है। एकाधिकारी शक्तियों पर नियंत्रण करके लोक उद्यम एक देश की जनता के हितों की रक्षा करने में सक्षम हो सकते हैं। वर्तमान में विकासशील तथा पिछड़े देश आर्थिक असमानताओं का शिकार हैं जिससे इन देशों के सभी वर्गों के कल्याण के लिये लोक उद्यम की भूमिका महत्वपूर्ण रूप में अंकित की गयी है।

5. निजी उद्यम की पहुंच से बाहर वाले क्षेत्रों में महत्व : लोक उद्यमों का महत्व ऐसी स्थिति में और अधिक बढ़ जाता है जब कुछ क्षेत्रों में निजी क्षेत्र के उद्यमों का प्रवेश किसी भी स्थिति में न तो सम्भव है और न ही इसके प्रवेश की इजाजत दी जा सकती है। करेंसी, सिक्का निर्माण और टकसाल अनिवार्य रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत ही सम्भव है। इसी प्रकार रक्षा सम्बन्धी शोध कार्य एवं विकास सम्बन्धी कार्य को सार्वजनिक उद्यमों के अन्तर्गत ही कार्यशील किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत हानिकारक पदार्थों के उत्पादन एवं वितरण पर भी लोक उद्यमों का नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

भारत के संदर्भ में आप देखते हैं कि सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली विकृतियाँ लोक उद्यमों के स्थान पर निजी उद्यमों के विस्तार एवं अनावश्यक महत्व देने का परिणाम ही है। दूसरी ओर निजी उद्यम किसी भी सामाजिक हानियों की परवाह किये बिना लाभ अर्जन में पीछे नहीं रह सकता है। इसके साथ प्रशासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था तथा कानून व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में लोक उद्यमों की महत्ता को कम करके नहीं आंका जा सकता है। इन क्षेत्रों में निजी उद्यमों को बढ़ावा देने या महत्व देने से राष्ट्रीय सम्पत्ति या हितों की हानि की पूर्ण सम्भावना व्यक्त की गयी है।

6. राजस्व प्राप्ति के तरीके : यद्यपि लोक उद्यमों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये किया गया है लेकिन वृहद स्तर तथा कुछ विशेष स्तर के उद्यमों से सरकार को राजस्व की भी प्राप्ति होती है जिससे सरकार को सार्वजनिक कार्यों के क्रियान्वयन में सहायता मिलती है। यद्यपि भारत के संदर्भ में देखा जाय तो कुछ लोक उद्यम लाभ की स्थिति में हैं तथा कुछ का संचालन घाटे में है। रेलवे, बैंकिंग आदि लोक उद्यम सरकार को राजस्व प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं जबकि परिवहन तथा सामाजिक सेवा सम्बन्धी उद्यम घाटे का सामना कर रहे हैं। सरकार को बजट के अन्तर्गत कर राजस्व तथा गैर कर राजस्व की प्राप्ति अनेक स्रोतों से करती है। लोक उद्यमों के द्वारा गैर-कर राजस्व मुख्यतः प्राप्त किया जाता है इसके साथ इन उद्यमों से सम्बन्धित उद्यमों तथा सेवाओं पर कर लगाकर कर राजस्व की भी प्राप्ति करती है।

7. आर्थिक विकास के लिये आधार : आपको यहाँ पर यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि किसी भी देश के संतुलित एवं संतुलित विकास के लिये लोक उद्यम अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस प्रकार लोक उद्यमों / उपक्रमों को आर्थिक विकास का आधार कहा जा सकता है। लोक उद्यमों की स्थापना एवं संचालन उन क्षेत्रों में भी सम्भव है जहाँ पर निजी क्षेत्र की सुविधाओं का पहुँचना असम्भव है। निजी क्षेत्र में उद्यमों की स्थापना एवं संचालन में लागत तथा आधारभूत सुविधाओं का ध्यान रखना होता है जबकि सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना में उस क्षेत्र के निवासियों एवं क्षेत्र के भौतिक विकास के उद्देश्य को प्राथमिकता दी जाती है। वर्तमान में यह देखा जा सकता है कि निजी क्षेत्र के उद्यमों के विकास में लोक उद्यमों की सुविधाओं का प्रयोग एक बड़े स्तर पर किया जा रहा है। इस प्रकार लोक उद्यम देश के सर्वांगीण एवं संतुलित विकास के साथ निजी उद्यमों के लिये भी आधार का कार्य करता है। सड़क परिवहन, रेलपरिवहन, शुद्ध पानी, पर्यावरण तथा अन्य महत्वपूर्ण सुविधाएँ सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा निजी उद्यमों के लिये उपलब्ध करायी गयी हैं।

12.4.2 लोक उद्यमों की उपयोगिता

आपको यह भी स्पष्ट होना अत्यन्त आवश्यक समझा गया है कि लोक उद्यमों की क्या उपयोगिता है। लोक उद्यमों की उपयोगिता को निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर आसानी से समझाया जा सकता है।

1. जहाँ तक लोक उद्यमों की उपयोगिता का सम्बन्ध है, इन उद्यमों की उपयोगिता का पूर्ण एवं सही रूप में आंकलन करना इतना आसान नहीं है। इन उद्यमों की उपयोगिता का आंकलन इन उद्यमों की कार्यक्षमता तथा उत्पादन क्षमता की मात्रा पर निर्भर किया जाता है। यदि लोक उद्यमों का संचालन पूर्ण कुशलता के साथ किया जाये तो समाज के कल्याण को एक बड़ी सीमा तक बढ़ाया जा सकता है तथा समाज इन उद्यमों के वास्तविक उद्देश्यों के नजदीक पहुँच सकता है। यहाँ पर आपको यह समझना अत्यन्त आवश्यक होगा कि लोक उद्यमों की उपयोगिता का सम्बन्धकेवल वर्तमान समयावधि तक ही सीमित नहीं किया जा सकता बल्कि सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों की प्रकृति के आधार पर इन उद्यमों का क्रियान्वयन भविष्य के लिये भी सामाजिक एवं आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। इसके विपरीत इन उद्यमों को सरकार की गलत नीतियों के साथ जोड़ा जाय तो राष्ट्रीय हितों के लिये उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते।
2. लोक उद्यमों की उपयोगिता का अनमान इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि इन उद्यमों का विभिन्न अवधियों में किसी देश के अन्दर जनता का किस रूप में विकास हुआ है। एक ओर इन उद्यमों के भौतिक निष्पादन के साथ इनकी उपयोगिता को जोड़ा जाता है वहीं अनेक ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं जो लोक उद्यमों के बिल्कुल विपरीत होने पर भी उनकी सफलता लोक उद्यमों की उपयोगिता पर निर्भर करती है।
3. लोक उद्यमों की उपयोगिता का आंकलन इस बात से भी लगाया जा सकता है कि इनके उपयोगिता का प्रभाव प्रसरणात्मक होता है जिससे निजी क्षेत्र के उद्यम भी इन लोक उद्यमों की उपयोगिताओं का उपयोग करने में पीछे नहीं हैं। विकासशील तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में भी लोक उद्यमों की उपयोगिता का उपयोग जनता के साथ पूंजीवादी वर्ग द्वारा भी सामान्य तथा अनिवार्य रूप से किया जा रहा है।
4. एक बार लोक उद्यमों की उपयोगिता का उपयोग करने के बाद नये विकसित सार्वजनिक तथा निजी उद्यमों को लोक उद्यमों के महत्व के विपरीत नहीं देखा जा सकता। भारत में पूंजीवादी ताकतों द्वारा न्याय, शान्ति, सुरक्षा एवं अन्य महत्वपूर्ण सुविधाओं का लाभ लेते हुए ही विदेशी एवं स्वदेशी पूंजीवादियों ने विभिन्न क्षेत्रों में सफलतायें प्राप्त की हैं।
5. सामान्य रूप से यह देखा गया कि लोक उद्यमों की उपयोगिता का प्रयोग उसी देश के लिये अधिक महत्वपूर्ण है। लोक उद्यमों की उपयोगिताओं का उच्च स्तर सरकार के आर्थिक तथा सामाजिक दवि को भी इंगित करता है। वर्तमान में विकसित तथा पिछड़े देशों में अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं को देखा जा रहा है। लोक उद्यमों की उपयोगिता का अलग-अलग तथा विभिन्न दिशाओं में जो आंकलन किया गया है उसी के परिणाम स्वरूप अलग-अलग राष्ट्रों में विभिन्न प्रकार की समस्यायें विद्यमान हैं।

12.5 भारत में लोक उद्यम

भारत में लोक उद्यम की स्थिति को स्वतंत्रता के बाद से विस्तारात्मक रूप दिया गया है। 1956 की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत लोक उद्यमों के विकास एवं विस्तार के सार्थक प्रयास किये गये। प्रारम्भ में निजी क्षेत्र की उद्यम स्थापित करने एवं संचालित करने की क्षमता कम थी। इसके साथ जनता की आवश्यकताओं के आधार पर लोक उद्यम की महत्ता और बढ़ गयी थी। 1980 के दशक में लोक उद्यमों में पनपी बुराइयों ने लोक उद्यमों को एक झटका दिया तथा सरकार का ध्यान निजी क्षेत्र की सहभागिता की ओर गया। 1990-91 में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के अन्तर्गत लोक उद्यमों के क्षेत्र, प्रकृति एवं दिशा को ही परिवर्तित कर दिया। स्वतंत्रता के बाद से सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की संख्या तथा विनियोग की मात्रा में निरन्तर वृद्धि हुई। लेकिन सन् 90 के दशक में लोक उद्यमों का विनिवेश प्रारम्भ किया गया। वर्तमान में सुरक्षा, परमाणु जैसे महत्वपूर्ण 5 मर्दों को लोक उद्यमों के लिये आरक्षित किया गया है तथा अन्य अनारक्षित क्षेत्रों के अन्तर्गत लोक उद्यम संचालित हैं। जिन्हें निजी क्षेत्र के साथ स्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है, वहीं दूसरी ओर ये लोक उद्यम निजी क्षेत्र की एकाधिकारी शक्तियों को पनपने में सहायक सिद्ध हुए हैं। इसके साथ गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, क्षेत्रीय असन्तुलन जैसी समस्याओं के निराकरण के लिये भी भारत में लोक उद्यमों की महत्ता वर्तमान में बनी हुई है।

लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास की जिम्मेदारी वहन करते हुए केन्द्रीय सरकार ने इन उद्यमों के विकास के लिए एक अलग विभाग की स्थापना की है। इस विभाग के निर्देशन और परामर्श के लिए एक अखिल भारतीय कुटीर उद्योग बोर्ड स्थापित किया गया है। इसके अतिरिक्त सरकार ने इन उद्योगों को सरकारी सहायता और प्रोत्साहन सुलभ कराने के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना की है। इनमें प्रमुख हैं - अखिल भारतीय हथकरघा एवं दस्तकारी बोर्ड, अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, लघु उद्योग विकास बोर्ड, जिला उद्योग केन्द्र आदि। ये संस्थाएँ लघु एवं कुटीर उद्योगों की विविध तथा विशिष्ट जरूरतों को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ एवं दिशा निर्देश प्रदान करती हैं। प्रान्तीय सरकारों ने भी अपने-अपने क्षेत्रों में इन उद्योगों के विकास हेतु अनेक संस्थाओं की स्थापना की है। लघु एवं कुटीर उद्योगों को पूँजी तथा अन्य आर्थिक सहायता प्रदान करने के क्षेत्र में भी सरकार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राज्य सरकारों ने राज्य उद्योग सहायता अधिनियमों के अन्तर्गत इन उद्योगों के लिए ऋण सुविधाओं को काफी बढ़ा दिया है। अब इन उद्योगों को अपेक्षाकृत अधिक आसान शर्तों पर सहजता से राज्य सरकारों द्वारा ऋण उपलब्ध कराया जाने लगा है। आजकल इन संस्थाओं को स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, राष्ट्रीय लघु उद्योग

निगम, राज्य वित्त निगम, सहकारी एवं व्यापारिक बैंकों तथा राज्य सरकारों द्वारा वित्तीय सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। 1 जुलाई, 1990 से रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा भी गारण्टी योजना लागू की गई है। इसके अतिरिक्त कुटीर एवं लघु उद्योगों को ऋण प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना की गई है।

कुटीर एवं लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं के विपणन में भी सरकार सहायता करती है। केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों द्वारा विशिष्ट निगमों द्वारा कुटीर एवं लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं की बिक्री के लिए स्थान-स्थान पर शोरूम अथवा इम्पोरियम स्थापित किये गये हैं। इनके माध्यम से देशी एवं विदेशी बाजारों में माल बेचे जाते हैं। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में सरकारी विपणन समितियों एवं विपणन संघों की स्थापना की गई है। एक

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना की गई है जो इन उद्योगों से माल प्राप्त करके सरकार एवं अन्य सरकारी विभागों तथा समितियों को बेचती हैं। इससे उचित मूल्य पर वस्तुएँ उपभोक्ताओं तक पहुँच जाती हैं। 401 ऐसी वस्तुएँ हैं जिन्हें सरकार केवल लघु उद्योगों से ही खरीदती है। इसके साथ ही यह राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम विदेशों से भी ऑर्डर प्राप्त करने का प्रयास करता है। देश-विदेश में लघु उद्योगों द्वारा तैयार किये गये माल की खपत बढ़ाने के अतिरिक्त यह निगम ऑर्डर के अनुसार माल बनाने के लिये लघु उद्योगों को पूँजी व तकनीकी सहायता देने की व्यवस्था करता है। यह लघु उद्योगों को सुविधाजनक एवं उदार शर्तों पर मशीनें एवं अन्य साज-सामान दिलाने का भी प्रबन्ध करता है। इसके साथ निगम प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करता है।

सरकार द्वारा लघु उद्योगों को पर्याप्त तकनीकी सहायता प्रदान की जाती है। इसके लिये वर्ष 1954 में लघु उद्योग विकास संगठन की स्थापना की गई है जिसके अन्तर्गत 30 लघु उद्योग सेवा संस्थान, 28 शाखा संस्थान तथा 4 क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र, 7 फील्ड परीक्षक केन्द्र, 6 प्रक्रिया एवं उत्पाद विकास केन्द्र, 2 विशिष्ट प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गये हैं। सरकार द्वारा विदेशों में प्रशिक्षण हेतु उद्यमियों को भेजा जाता है तथा विदेशी विशेषज्ञों को भी भारत में प्रशिक्षण देने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। केन्द्रीय लघु उद्योग संगठन द्वारा नियमित रूप से विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाते हैं। इस संगठन ने लघु उद्योगों को विभिन्न औद्योगिक कार्यों के लिये वर्कशाप तथा माल की जांच के लिये प्रयोगशाला की सुविधायें देने का प्रबन्ध किया है।

12.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए?

- लोक उद्यम किसे कहते हैं?
- लोक उद्यम कितने प्रकार के होते हैं?
- लोक उद्यम की चार उपयोगिता बताओ?
- भारत में लोक उद्यमों के प्रमुख क्षेत्रों के नाम बताओ?

प्र.2 निम्नलिखित वाक्यों में से 'सत्य' अथवा 'असत्य' का चयन कीजिए?

- लोक उद्यम पूँजीवाद के प्रतीक हैं।
- भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए लोक उद्यम उपयोगी हैं।
- लोक उद्यमों पर सार्वजनिक नियंत्रण पाया जाता है।
- भारत के अधिकांश लोक उद्यम घाटे का शिकार रहे हैं।

प्र.3 निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त पूर्ति कीजिए?

- आरक्षित उद्योग ही ---- के पूर्ण अधीन होते हैं। (सरकार/पूँजीपति)
- वाणिज्यिक उद्यमों का सम्बन्ध ---- से है। (लोकसत्ता/लाभार्जन)
- लोक उद्योग सामरिक दृष्टि से ----- हैं। (औचित्यपूर्ण/अर्थहीन)
- लोक उद्यम आर्थिक --- को कम करते हैं। (समानता/असमानता)

प्र.4 नीचे दिये गये सूची स्तम्भों में सही जोड़ों का मिलान कीजिए?

क

ख

(i) आर्थिक सुधार	लोक सत्तायें
(ii) युद्धसामग्री	सेवा उद्यम
(iii) पर्यावरण सुरक्षा	आरक्षित
(iv) शिक्षण संस्था	1990-91

प्र.5 भारत में लोक उद्यम तथा निजी उद्यमों की अलग-अलग सूचियाँ बनाइये?

12.7 सारांश (Summary)

प्रस्तुत इकाई लोक उद्यमों के प्रकारों, महत्व तथा उनकी उपयोगिता को भलीभांति समझाने के लिये अत्यन्त ही सार्थक रही है। लोक उद्यमों का तात्पर्य ऐसे उद्यमों से है जिन पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सरकार का स्वामित्व एवं नियंत्रण पाया जाता है। लोक उद्यमों को स्वामित्व एवं नियन्त्रण, उद्देश्य, विभाग, प्रकृति तथा शासकीय आधार पर अनेक प्रकारों में विभाजित किया गया है। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में लोक उद्यमों का महत्वपूर्ण स्थान है। पूँजीवादी देशों में वृहद आकार के लोक उद्यम सफलतापूर्वक संचालित हैं। लोक उद्यम अर्थव्यवस्था पर वास्तविक नियंत्रण करने तथा सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माने गये हैं। प्राकृतिक सुरक्षा तथा आर्थिक असमानता की समस्या का समाधान करने में भी लोक उद्यमों की भूमिका को कम नहीं आंका जा सकता है। ऐसे क्षेत्रों में भी लोक उद्यम महत्वपूर्ण भूमिका में हैं जहाँ निजी क्षेत्र की पहुँच दुर्लभ है। देश के सन्तुलित विकास एवं राजस्व प्राप्ति में भी लोक उद्यम महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में लोक उद्यमों की उपयोगिता का आंकलन एवं उसका प्रयोग अलग-अलग स्तर पर किया गया है। भारत में लोक उद्यमों का विकास क्रमिक हुआ तथा कुछ महत्वपूर्ण कमजोरियों के आधार पर लोक उद्यमों के क्षेत्र तथा स्वरूप को सीमित किया गया है जिसे भारतीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकता समझा गया है।

12.8 शब्दावली (Glossary)

- समाजवादी अर्थव्यवस्था - वह अर्थव्यवस्था जिसमें उत्पत्ति के साधनों पर सरकार या लोकसत्ताओं का स्वामित्व होता है।
- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था - वह अर्थव्यवस्था जिसमें साधनों पर व्यक्तियों का निजी स्वामित्व होता है।
- उपयोगिता - वस्तु एवं सेवा में निहित क्षमता जिससे व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति होती है।
- आर्थिक अस्थिरता - अर्थव्यवस्था में आने वाले आर्थिक उतार-चढ़ाव।
- सामरिक - युद्ध सम्बन्धी।
- प्राकृतिक संसाधन - प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधन जैसे - वायु, जल, मिट्टी, वृक्ष आदि।
- एकाधिकार - उत्पादन पर एक फर्म या उत्पादक का अधिकार।

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers For Practice Questions)

प्रश्न संख्या 01 के हल के लिए बिन्दु संख्या 12.3 तथा 12.3.1 का अवलोकन करें।

प्रश्न संख्या 02 के हल के लिए बिन्दु संख्या 12.4.1 का अवलोकन करें।

प्रश्न संख्या 03 के हल के लिए बिन्दु संख्या 12.4.2 का अवलोकन करें।

प्रश्न संख्या 04 के हल के लिए बिन्दु संख्या 12.5 का अवलोकन करें।

12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- दत्त, रुद्र एवं के0पी0एम 0सुन्दरम(2010) , भारतीय अर्थव्यवस्था, एस 0चन्द एण्ड कं 0लिमिटेड, नई दिल्ली। भाटिया एच0एल(2006) 0, लोकवित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा 0 लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे0सी(2005) 0, राजस्व (Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वार्ष्णेय, जे0सी(1997) 0, राजस्व (Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, हास्पिटल रोड, आगरा।

12.1 1 सहायक/उपयोगी ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- पुरी एवं मिश्रा(2011) , भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- सेठी, टी0टी(2005) 0, मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक विक्रेता एवं प्रकाशक, आगरा।
- मिश्र, जगदीश नारायण(2010) , भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

- प्र 1.लोक उद्यमों से आपका क्या आशय है तथा ये कितने प्रकार के हो सकते हैं?
- प्र 2.लोक उद्यमों का किसी अर्थव्यवस्था में क्या महत्व है? स्पष्ट कीजिए?
- प्र 3.लोक उद्यम किस सीमा तक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं? स्पष्टीकरण दीजिए?
- प्र 4.भारत में लोक उद्यमों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए?

इकाई 13 लोक उद्यमों की कीमत नीति, प्रबन्धित कीमते एवं आधिक्य सृजन (Public Policy of Public Enterprises, Restricted and Excess Buoyancy)

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 लोक उद्यमों की कीमत नीति
 - 13.3.1 कीमत नीति के आधारभूत तत्व
 - 13.3.2 कीमत नीति के मुख्य सिद्धान्त
- 13.4 लोक उद्यम एवं प्रबन्धित कीमते
 - 13.4.1 प्रबन्धित कीमत सम्बन्धी समस्याएँ
- 13.5 लोक उद्यम एवं आधिक्य सृजन
- 13.6 अभ्यास प्रश्न
- 13.7 सारांश
- 13.8 शब्दावली
- 13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 13.11 सहायक/ उपयोगी ग्रन्थ
- 13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

लोक उद्यम खण्ड के अन्तर्गत यह चौदहवीं इकाई है जो 'लोक उद्यमों की कीमत, नीति, प्रबन्धित कीमतें एवं आधिक्य सृजन' पर आधारित की गयी है। इससे पूर्व की इकाई के अन्तर्गत आपने लोक उद्यमों के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन किया है। सामान्यतः यह देखा गया है कि अर्थव्यवस्था में लोक उद्यम तथा निजी उद्यम के सहअस्तित्व में दोनों ही प्रकार के उद्यमों के सामने कीमत सम्बन्धी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। इसके पीछे मुख्य तथ्य यह है कि दोनों ही प्रकारों के उद्यमों की स्थापना के उद्देश्यों में आधारभूत अन्तर पाया जाता है।

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत लोक उद्यमों की कीमत नीति को स्पष्ट किया गया है जो मुख्य रूप से अनेक प्रकार के सिद्धान्तों पर आधारित की जा सकती है। लोक उद्यमों को आवश्यकतानुसार लोक उद्यम वाली वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों को निर्धारित करने के साथ प्रबन्धित भी करना होता है जो सामाजिक न्याय एवं कल्याण के लिये अत्यन्त आवश्यक होती है। लोक उद्यमों की कीमतें प्रबन्धित करने के लिये अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके साथ प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत लोक उद्यमों के अन्तर्गत आधिक्य सृजन को भी स्पष्ट किया गया है जो इन उद्यमों के आकार एवं प्रकृति पर निर्भर करती है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन आप आगे अलग-अलग खण्डों एवं उपखण्डों के अन्तर्गत कर सकेंगे।

13.2 उद्देश्य(Objectives)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन आपके लिये अत्यन्त ही लाभदायक सिद्ध होगा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि:

- ✓ लोक उद्यमों की कीमत नीतियाँ क्या हैं तथा ये किस प्रकार निर्धारित की जाती हैं। लोक उद्यमों की कीमत नीति के निर्धारण में किन तत्त्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- ✓ लोक उद्यमों की कीमत नीति से सम्बन्धित मुख्य रूप से कौन-कौन से सिद्धान्त हैं जो इन उद्यमों की कीमत नीति का आधार बनाये जाते हैं।
- ✓ लोक उद्यमों की प्रबन्धित कीमतें क्या हैं तथा इनकी क्या आवश्यकता होती है एवं इनके निर्धारण में क्या कठिनाइयाँ हैं जो सरकार को सहन करनी होती हैं।
- ✓ लोक उद्यमों में आधिक्य सृजन किस प्रकार उत्पन्न होता है तथा इसकी अर्थव्यवस्था के लिये क्या प्रासंगिकता मानी गयी है।

13.3 लोक उद्यमों की कीमत नीति

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि लोक उद्यमों तथा निजी उद्यमों के उद्देश्यों में पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है। इसीलिये लोक उद्यमों को अपनी वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों का निर्धारण करते समय निजी क्षेत्र की कीमतों को भी ध्यान में रखना होता है।

लोक उद्यमों की कीमत नीति के अन्तर्गत इस तथ्य को स्वीकार किया जाता है कि लोक वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों का निर्धारण किस स्तर पर किया जाय ताकि लोक उद्यमों के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता मिल सके। इसके साथ कीमत नीति में सरकार के उस प्रयास को भी शामिल किया जाता है कि लोक उद्यमों की

वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों का स्तर समाज को न्यूनतम त्याग का अनुभव कराये तथा निजी क्षेत्र की कीमत नीति के साथ भी किसी भी प्रकार का सामंजस्य स्थापित करने में सहायता मिल सके। सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों का निर्धारण एक समय पर निजी वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों के समान भी हो सकता है तथा किसी समय विशेष या परिस्थिति में निजी क्षेत्र की शोषणात्मक कीमत नीति के प्रभाव को कम करने के लिए भी किया जा सकता है। सामान्यतः लोक उद्यमों की कीमत नीति का निर्धारण करना कोई साधारण कार्य नहीं है। इसके निर्धारण में अनेक महत्वपूर्ण कारकों एवं तथ्यों को शामिल किया जा सकता

13.3.1 कीमत नीति के आधारभूत तत्त्व

लोक उद्यमों की कीमत नीति का निर्धारण करते समय जिन मुख्य आधारभूत तत्त्वों को ध्यान में रखा जाता है। उनके बारे में भी आपको पर्याप्त जानकारी होना आवश्यक है। लोक उद्यमों की कीमत नीति के निर्माण के आधारभूत तत्त्व निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किये जा सकते हैं :

1. लोक उद्यमों कीमत नीति का आधारभूत मुख्य तत्त्व उस देश की बाजार व्यवस्था है। सम्बन्धित अर्थ व्यवस्था की प्रकृति कैसी है? विकसित देशों के अन्दर लोक उद्यमों कीमतें, विकासशील देशों के लोक उद्यमों की कीमत नीति में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। इसके साथ इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि उस अर्थव्यवस्था में निजी उद्यमों की क्या स्थिति है। सरकार का रवैया निजी उद्यमों के प्रति कैसा है तथा लोक उद्यमों की निजी उद्यमों से क्या समानतायें एवं असमानतायें हैं? यदि लोक उद्यम तथा निजी उद्यम में अधिक समानतायें हैं तो कीमत नीति निजी उद्यमों की कीमत नीति से काफी नजदीक होगी। यदि अर्थव्यवस्था में लोक उद्यमों की एकाधिकार की प्रवृत्ति है तो लोक उद्यमों की कीमत नीति स्वतंत्र रूप में निर्मित होगी जो निजी क्षेत्र की कीमत नीति से काफी भिन्न होगी। सामान्य रूप से माँग व पूर्ति को ध्यान में रखकर सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये ही लोक उद्यमों की कीमत का निर्धारण किया जाता है।
2. लोक उद्यमों की कीमत नीति के निर्धारण में लोक उद्यमों की कार्यकुशलता का भी पर्याप्त ध्यान रखा जाता है। सामान्य रूप से यह मान्यता दी जाती है कि लोक उद्यमों की अपेक्षा निजी उद्यमों की कार्यकुशलता अधिक होती है। लेकिन दोनों प्रकार के उद्देश्यों में अन्तर होने के कारण ऐसा पाया जाना सम्भव होता है। लोक उद्यम के अन्तर्गत कार्यरत कर्मचारियों एवं अधिकारियों की सामाजिक सुरक्षा एवं अन्य वित्तीय सुविधाओं एवं उनके शोषण उन्मूलन आदि का भी पर्याप्त ध्यान रखा जाता है जिसका लोक उद्यमों की कीमत नीति पर पर्याप्त प्रभाव होता है। इसके साथ इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि लोक उद्यमों से प्राप्त आय का प्रयोग किस सरकारी कार्य में किया जायेगा। सामाजिक व आर्थिक सेवाओं के क्षेत्र में स्थापित लोक उद्यम की कीमत नीति तथा व्यापारिक एवं वाणिज्यिक उद्देश्यों से स्थापित लोक उद्यमों की कीमत नीति में पर्याप्त अन्तर पाया जायेगा।
3. लोक उद्यम नीति का एक अन्य महत्वपूर्ण आधार यह भी पाया गया कि वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग का सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा अनुमान लगाया जाता है तथा इसी अनुमान पर कीमत नीति का निर्धारण किया जाता है। इसके विपरीत निजी उद्यम द्वारा मांग का अनुमान लगाने के साथ मांग को पैदा करने का भी

प्रयास किया जाता है। ऐसी स्थिति में दोनों क्षेत्रों के उद्यमों की कीमत नीति की तुलना करना एक निरर्थक प्रयास ही कहा जायेगा।

4. राजनैतिक सरकारों की प्राथमिकताएँ एवं लक्ष्य भी लोक उद्यमों की कीमत नीतियों के एक भाग ही कहे जा सकते हैं। सरकारों की प्राथमिकताओं एवं लक्ष्यों में परिस्थितियों एवं समयानुसार आवश्यकत परिवर्तन होते रहते हैं जैसे राष्ट्रीय सुरक्षा, चुनावी वातावरण, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक गतिविधियाँ आदि की स्थितियाँ। इस प्रकार की गतिविधियों का लोक उद्यमों की कीमत नीति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है जिसके कारण इन तथ्यों को कीमत नीति का आधार बनाया जाता है।
5. देश की सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं की दशाओं के आधार पर भी लोक उद्यमों की कीमत नीति को निर्धारित करने का प्रयास किया जाता है। भारत जैसे देश में गरीब तथा बेरोजगार एवं मध्यमवर्ग को आवश्यक सुविधायें मुहैया कराने के लिये लोक उद्यमों की कीमत नीति को लचीला बनाया जाता है।
6. अर्थशास्त्रियों द्वारा लोक उद्यमों की कीमत नीति के निर्धारण में वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग-पूर्ति की लोच का भी ध्यान रखा जाता है। इसके साथ जनता में सन्तोष तथा असन्तोष आदि को भी प्राथमिकता के स्तर पर रखा जाता है। कीमत नीति में लचीलेपन के अभाव के कारण जनता में आन्दोलन तथा अविश्वास की भावना भी पैदा होने का डर रहता है। ये तत्त्व कीमत नीति को सीधे रूप से प्रभावित करते हैं।

13.3.2 कीमत नीति के मुख्य सिद्धान्त

लोक उद्यमों की कीमत नीति के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने के बाद आप प्रो० डाल्टन द्वारा दिये गये कीमत नीति के मुख्य सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे। सामान्यतः डॉल्टन के तीन सिद्धान्तों को लोक उद्यमों की कीमत नीति का आधार माना जाता है।

1. **अनिवार्य सेवा लागत सिद्धान्त** : अनिवार्य सेवा लागत सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित किया गया है कि लोक उद्यमों द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं पर उठायी गयी लागत को अनिवार्य रूप से उपभोक्ताओं द्वारा बसूल लेना चाहिये। इस सिद्धान्त में यह मान्यता की गयी है कि वस्तुओं एवं सेवाओं का उपयोग करने वाले उपभोक्ताओं के बारे में सरकार को पूर्ण जानकारी होती है। इसीलिये इन पहचान किये गये उपभोक्ताओं से सेवा की लागत को बसूल लिया जाता है। भले ही उपभोक्ता इस सेवा एवं वस्तुओं के उपभोग से दूर रहने की भले ही कोशिश करें। सरकार का तर्क यह रहता है कि सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं से जो व्यक्ति लाभान्वित होंगे उनको किसी भी आधार पर इन वस्तुओं एवं सेवाओं से अलग नहीं माना जा सकेगा। जैसे गली में रोशनी की व्यवस्था एवं सड़क पर प्रकाश की व्यवस्था के लिये वहाँ के निवासियों से उस पर आने वाले खर्च को बसूल लिया जाता है। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार द्वारा सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग करने के लिये बाध्य किया जाता है।
2. **सामान्य कराधान सिद्धान्त** : डॉल्टन के सामान्य कराधान सिद्धान्त के अनुसार सरकार द्वारा जनता को वस्तुएँ एवं सेवायें निःशुल्क उपलब्ध करायी जाती हैं जिसके बदले सरकार द्वारा सामान्य रूप से

करारोपण करके कर की बसूली की जाती है। यह सिद्धान्त यह मान्यता करता है कि सरकार द्वारा लाभान्वित व्यक्तियों की पहचान कर ली गयी है लेकिन कर की बसूली करने के कारण वस्तुओं एवं सेवाओं की लागत को बसूल लिया गया होता है। इसीलिए पुनः सेवाओं की लागत को बसूलने की व्यवस्था सरकार द्वारा नहीं की जाती है। इस सिद्धान्त को सामान्य रूप से शुद्ध सार्वजनिक वस्तुओं पर ही लागू किया जाता है।

3. **ऐच्छिक कीमत सिद्धान्त** : इस सिद्धान्त को मुख्य रूप से कीमत नीति के साथ सम्बन्धित किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं के उपभोग के लिये उपभोक्ताओं को स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। सरकार द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग करने वालों से कीमत बसूल कर ली जाती है तथा जो उपभोग नहीं करते उन्हें कीमत बसूली के बाहर रखा जाता है। सरकार द्वारा कीमत निर्धारित करने में सरकार को अनेक तथ्यों पर विचार करना होता है।

13.4 लोक उद्यम एवं प्रबन्धित कीमतें

प्रबन्धित कीमतों से हमारा तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं की ऐसी कीमतों से है जिन्हें सरकार अथवा सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रबन्धित किया जाता है। अर्थव्यवस्था को स्थिरता प्रदान करने एवं सट्टेबाजी जैसी क्रियाओं पर नियंत्रण करने के लिये अपने स्तर पर सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों को नियंत्रित एवं नियमित करती हैं। सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों को नियंत्रित एवं प्रबन्धित करने से निजी उद्यमों की वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों पर भी प्रभाव पड़ता है। प्रबन्धित कीमतों का निर्धारण वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति में सरकारी स्तर पर वृद्धि एवं नियमन करके भी किया जाता है। यह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में वृद्धि के लिये कौन से तत्त्व या कारक जिम्मेदार हैं।

सामान्यतः रूप से जनोपयोगी वस्तुओं एवं सेवाओं जैसे- गैस आपूर्ति, बिजली, रेल परिवहन, डाक तथा जलापूर्ति जैसे क्रियाओं के सम्बन्ध में प्रबन्धित कीमतों की उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है। प्रबन्धित कीमतों के निर्धारण में सरकार स्वयं कीमतों का निर्धारण करती है अथवा कीमत सम्बन्धी किसी प्राधिकरण का गठन करती है। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसी अर्थव्यवस्थाओं में कीमत अभिकरणों का सहारा बड़े स्तर पर लिया गया है। भारत जैसी अर्थव्यवस्थाओं में दोनों प्रकार के उपायों को अपनाया जाता रहा है।

आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति के सम्बन्ध में निजी क्षेत्र के एकाधिकार की आवश्यकता नहीं है। इसके साथ सरकारी हस्तक्षेप की निजी उद्यम के समान कीमत का निर्धारण भी नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में सरकार द्वारा प्रबन्धित कीमतों का सहारा लेना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

सरकार कतिपय वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों का निर्धारण बाजार की शक्तियों - मांग पूर्ति के आधार पर नहीं कर सकती। इसीलिये इन वस्तुओं एवं सेवाओं की अधिकतम कीमतें निर्धारित करके कीमतों को प्रबन्धित किया जाता है। सामान्य रूप से खुले बाजार द्वारा निर्धारित कीमतों में वृद्धि को रोकने के लिये सरकार उच्चतम मूल्य/कीमत तथा न्यूनतम कीमतों के निर्धारण के लिये बाध्य हो जाती है।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि कीमत-नियंत्रण एवं सरकार द्वारा कीमत-निर्धारण में अन्तर होता है। बिजली, परिवहन, तेल इत्यादि जैसे एकाधिकारात्मक एवं अल्पाधिकारात्मक उद्योगों में उपभोक्ताओं को शोषण से बचाने

हेतु सरकार अक्सर कीमतें निर्धारित कर देती है। यह कीमत-निर्धारण कहलाता है। लेकिन कीमत-नियन्त्रण का अर्थ थोड़ा इससे भिन्न होता है। कीमत-नियन्त्रण के अन्तर्गत सरकार कतिपय वस्तुओं की निश्चित कीमतें निर्धारित नहीं करती। व्यवहार में कीमत-नियन्त्रण से अभिप्राय यह होता है कि सरकार कुछ वस्तुओं की अधिकतम अथवा न्यूनतम कीमतें निर्धारित कर देती है। उपभोक्ताओं को ऊँची कीमतों से संरक्षण देने हेतु सरकार अधिकतम कीमतें निश्चित कर देती है। कीमत-नियन्त्रण से अभिप्राय अधिकतम कीमतों के निर्धारण से होता है। जब सरकार न्यूनतम कीमतें निर्धारित करती है तो उसे 'कीमत-समर्थन' कहा जाता है। इस प्रकार 'कीमत-नियन्त्रण' का अर्थ सरकार द्वारा अधिकतम कीमतें निर्धारित करना होता है, और 'कीमत-समर्थन' से अभिप्राय सरकार द्वारा न्यूनतम कीमतें निश्चित करने से होता है। लेकिन हम यहाँ पर 'कीमत-नियन्त्रण' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में करेंगे। दूसरे शब्दों में, हम यहाँ पर कीमत-नियन्त्रण के अन्तर्गत अधिकतम तथा न्यूनतम दोनों ही प्रकार की कीमतों का अध्ययन करेंगे।

सरकार द्वारा अधिकतम कीमतें प्रायः युद्धकाल में निर्धारित की जाती हैं। इसका कारण यह है कि यदि युद्धकाल में कीमतों का नियन्त्रण न किया जाय तो वस्तुओं के अभाव के कारण वे आकाश को चूमने लगेंगी। न्यूनतम कीमतें प्रायः मन्दीकाल में निर्धारित की जाती हैं। इसका कारण यह है कि मन्दीकाल में यदि न्यूनतम कीमतें निर्धारित न की जायें तो वस्तुओं की अत्यधिक पूर्ति के कारण कीमतें पाता तक नीचे गिर जायें। इस अर्थ में बहुत-से देशों में सन् 1930 की महान मन्दी के दौरान कीमत-नियन्त्रण लागू किया गया था।

अधिकतम कीमतें : किसी वस्तु की अधिकतम कीमत (maximum price) प्रायः उसकी सन्तुलन-कीमत (equilibrium price) से नीचे निर्धारित की जाती है। अधिकतम कीमत को निर्धारित करने की एक सामान्य विधि यह है कि किसी विशेष दिन बाजार में प्रचलित कीमत को ही अधिकतम कीमत घोषित कर दिया जाय। अधिकतम निर्धारित कीमत से अधिक कीमत देना अथवा वसूल करना सरकार द्वारा अपराध घोषित कर दिया जाता है।

आपको विदित हो कि युद्धकाल में वस्तुओं एवं सेवाओं की अधिकतम कीमतें इसलिए निर्धारित की जाती हैं क्योंकि देश में इनका भारी अभाव उत्पन्न हो जाता है। किसी वस्तु की अधिकतम कीमत निर्धारित करते समय सरकार को चाहिए कि वह उस वस्तु का उपभोक्ताओं में राशन कर दे। यदि सरकार ऐसा नहीं करती है तो उसके द्वारा निर्धारित अधिकतम कीमत प्रभावपूर्ण नहीं होगी। राशन-व्यवस्था के अभाव में इस बात की बहुत सम्भावना है कि उस दुर्लभ वस्तु का अधिकांश भाग धनी उपभोक्ताओं द्वारा खरीद लिया जायेगा और गरीब उपभोक्ताओं के लिए उसकी बहुत कम पूर्ति बच रहेगी। अधिकतम कीमतों का निर्धारण तथा राशनिंग व्यवस्था प्रायः साथ-साथ चलते हैं।

यदि राशनिंग व्यवस्था द्वारा सरकार इस दुर्लभता को दूर करने का कोई प्रयास नहीं करती तो कीमत नियन्त्रण असफल हो जायेगा और सरकार द्वारा निर्धारित अधिकतम कीमत अप्रभावी हो जायेगी। यही नहीं, उस वस्तु में काला बाजार उत्पन्न हो जायेगा।

प्रायः देखा जाता है कि उद्योग के लिये विभिन्न अधिकतम कीमतें निर्धारित की जाती हैं। कम लागत वाले उत्पादकों के लिये कम कीमत तथा उच्च लागत वाले उत्पादकों के लिये ऊँची कीमत निर्धारित की जाती है। यह

नीति प्रायः सरकार द्वारा तब अपनायी जाती है जब वह वस्तु का बड़े पैमाने पर उत्पादन करवाना चाहती है। यहाँ तक कि उच्च-लागत वाले उत्पादकों की कम उत्पादन मात्रा को भी उपभोक्ताओं के लिये अनिवार्य समझती है। दो अधिकतम कीमतों को निर्धारित करते समय सरकार का उद्देश्य कम लागत वाले उत्पादकों को अत्यधिक लाभ कमाने से रोकना होता है।

न्यूनतम कीमतें : न्यूनतम कीमतों सरकार द्वारा प्रायः मन्दीकाल में निर्धारित की जाती हैं जबकि बाजार में कीमतें बहुत ही निम्न स्तर तक नीचे गिर जाती हैं। सरकार द्वारा वस्तु की निर्धारित की गयी न्यूनतम कीमत प्रायः सन्तुलित कीमत से ऊँची होती है। सन्तुलन कीमत से अधिक कमत निर्धारित करने का प्राकृतिक परिणाम यह होता है कि उस वस्तु की पूर्ति में आधिक्य उत्पन्न हो जाता है। इस आधिक्य को प्रायः अति-उत्पादन कहा जाता है। वास्तव में, यह अति-उत्पादन न्यूनतम कीमत पर पूर्ति का माँग के ऊपर आधिक्य होता है। यह आधिक्यक न्यूनतम एवं सन्तुलन-कीमतों के अन्तराल एवं माँग तथा पूर्ति की लोच पर निर्भर करता है। कृषि-फसलों की न्यूनतम कीमतें निर्धारित करने की प्रथा सन् 1930 से पश्चिमी देशों में निरन्तर चली आ रही है।

किसी वस्तु की न्यूनतम कीमत निर्धारित करते समय सरकार को चाहिए कि वह उसकी अतिरिक्त पूर्ति अथवा उसके आधिक्य को बाजार से दूर ही रखे अन्यथा न्यूनतम कीमत प्रभावपूर्ण सिद्ध नहीं होगी। एक उपाय तो यह है कि सरकार वस्तुओं को खरीदकर उनकी अतिरिक्त पूर्ति को अपने गोदामों में संचित कर ले। दूसरा उपाय यह है कि सरकार वस्तुओं के अतिरिक्त स्टॉक को खरीदकर उनका विदेशों को निर्यात कर दे। कभी-कभी तो सरकार अतिरिक्त स्टॉक को नष्ट कर देती है।

डॉ० अभिजीत सेन ने उल्लेख किया : 'जो प्रमाण हमें प्राप्त हुए हैं वे पूर्णतया निश्चित नहीं हैं। आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर न तो यह कहना संभव है कि कृषि-वस्तुओं में वायदा बाजार के परिणामस्वरूप तत्क्षण बाजार (Spot market) या भौतिक बाजार में कीमतों में वृद्धि होती है, न ही यह कहना सम्भव है कि इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। समिति को इससे कुछ निष्कर्ष निकालना चाहिए था, परन्तु इसने एक तटस्थ दृष्टि अपनाने को तरजीह दी है। अभिजीत सेन समिति के विचारार्थ विषयों में उल्लेख किया गया, "वायदा बाजार के वस्तुओं की कीमतों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना और इस प्रभाव को न्यूनतम करने के लिए उपायों का सुझाव देना। इस विचारार्थ विषय के आधीन अनिवार्य वस्तुओं के वायदा बाजार पर प्रतिबन्ध पर अपनी राय व्यक्त की जा सकती है कि क्या यह उपाय वायदा बाजार के अनिवार्य वस्तुओं की कीमतों पर पड़ने वाले प्रभावों को कम-से-कम कर सकता है।

सरकारी विभाग अनिवार्य तुरुओं की कीमतों के नियंत्रण के बारे में अल-अलग विचार रखते हैं। सरकार की नीति तभी प्रभावी बन सकती है यदि कीमतों के नियंत्रण के लिए सरकार एक स्पष्ट नीति तय कर ले। इसे आम आदमी की मुश्किलों को ध्यान में रखते हुए एक अल्पकालीन नीति तैयार करनी होगी और दीर्घकालीन उपायों पर भी विचार करना होगा ताकि अनिवार्य वस्तुओं विशेषकर खाद्य पदार्थों की आपूर्ति में वृद्धि हो सके। देश के लिये अत्यन्त आवश्यक है कि एक बाजार सूचना प्रणाली का निर्माण किया जाय जो अनिवार्य वस्तुओं की कीमतों के बारे में फौरी जानकारी देती रहें, जो कि निम्न आय वर्गों के कुल व्यय का लगभग 60 प्रतिशत है। इसके लिये विभिन्न समितियों की सिफारिशों पर विचार करने के बाद कीमत सूचकांकों में संशोधन करना अनिवार्य है।

सरकार को कृषि के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी। सरकार को ऐसे उपाय करने होंगे कि बहु-फसल भूमि का प्रयोग गैर-कृषि उद्देश्यों जैसे विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिये न किया जाय। अन्तिम, परन्तु कम महत्वपूर्ण नहीं, दूसरी हरी क्रान्ति के प्रारम्भ करने के प्रयास करने होंगे और इसका केन्द्र कृषि की दृष्टि से पिछड़े राज्य होने चाहिये।

इस सम्बन्ध में श्री प्रशान्त गोयल यह निष्कर्ष निकालते हैं, “वर्तमान अव्यवस्था से बाहर निकलने का टिकाऊ मार्ग खाद्यान्न उत्पादन और उत्पादिता को बढ़ाना है जो बिना सही कीमतों से सफल नहीं हो सकता। यदि किसान को अपनी उपज के लिये लाभकारी कीमत (Remunerative price) प्राप्त नहीं होती तब ऋण माफी पैकेट भी अपना उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सकता। देश में कृषि योग्य भूमि के बड़े पैमाने पर उपलब्ध होने के साथ अनुकूल जलवायु के होते हुए और वैश्विक खाद्य कीमतों की वृद्धि को दृष्टि में रखकर, एक उचित नीति सम्बन्धी ढांचे द्वारा भारत को विश्व खाद्य भण्डार बनाना सुनिश्चित किया जा सकता है।”

भारतीय रिजर्व बैंक अपनी मौद्रिक नीति का प्रयोग उत्पादन में वृद्धि और सामान्य कीमत स्तर के नियंत्रण के बीच संतुलन बनाने के लिये करता है। सामान्यतः भारतीय रिजर्व बैंक रोक-आरक्षण अनुपात (Cash Reserve Ratio), कानूनी तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio) और खुले बाजार की क्रियाओं द्वारा व्यापारिक प्रतिसार (Recession) के समय बैंक उधार और व्यापार-क्रिया का विस्तार करता है, परन्तु स्फीति के समय रिजर्व बैंक उधार का संकुचन करता है और व्यापार एवं सट्टेबाजी की क्रियाओं पर रोक लगाता है।

संभरण व्यवस्था का सम्बन्ध संभरण की मात्रा और इसकी वितरण प्रणाली से होता है। वस्तुओं के स्तर पर सरकार ने चावल, गेहूँ, चीनी, गुड़ और जनोपभोग (Mass Consumption) की अन्य वस्तुओं के मूल्य नियंत्रित करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

सरकार ने चीनी, सीमेंट और कागज जैसे वस्तुओं के लिये द्वैध कीमत-प्रणाली (Dual Pricing System) लागू की ताकि कमजोर वर्गों को इन वस्तुओं की एक निश्चित मात्रा नियंत्रित कीमतों पर उपलब्ध कराई जा सके। अन्य वर्ग इन वस्तुओं को खुले बाजार में ऊँची कीमत में क्रय कर सकते हैं। द्वैध कीमत प्रणाली अपने उद्देश्य में विफल रही, इससे बाजार में भ्रम पैदा हुआ और कीमत की गतिविधि में खलबली पैदा हो गईं द्वैध कीमत प्रणाली अब लगभग समान कर दी गयी है।

13.4.1 प्रबन्धित कीमत सम्बन्धी समस्याएँ

यद्यपि सरकार सामाजिक कल्याण के लिये ही प्रबन्धित कीमतों का सहारा लेती है फिर भी इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। निजीकरण के समय में प्रबन्धित कीमतों का निजी क्षेत्र की कीमतों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे निजी उद्योगपति सरकार का विरोध करते हैं या दबाव बनाने लगते हैं। प्रबन्धित कीमतों में ठीक देने पर जनता को कष्ट होता है तथा गरीब वर्ग अपनी आवश्यकताओं को आसानी से पूरा नहीं कर पाता जिससे जनता में सरकार की छवि का प्रतिकूल प्रभाव होता है। इसके साथ प्रबन्धित कीमतों का सरकार के राजस्व पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे सार्वजनिक कार्यों के लिये अन्य उपायों से राजस्व की प्राप्ति का रास्ता निकाला जाता है। प्रबन्धित कीमतों के सहारे निजी उद्यमियों एवं जनता द्वारा भी अनुचित लाभ उठाने का प्रयास किया जाता है जो अर्थव्यवस्था के कुशल संचालन में कठिनाई होती है। साथ में बाजार की शक्तियाँ

स्वतंत्रता पूर्वक कार्य नहीं कर पाती जिसका उत्पादन तथा वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना बनी रहती है। लालफीताशाही के कारण भी प्रबन्धित कीमतों का निर्धारण उचित रूप में नहीं किया जाता है।

13.5 लोक उद्यम एवं आधिक्य सृजन

इस बिन्दु के अन्तर्गत आप लोक उद्यमों में आधिक्य सृजन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे। लोक उद्यमों में आधिक्य सृजन की विवेचना करने से पूर्व आधिक्य सृजन की अवधारणा को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। आधिक्य सृजन की धारणा का सम्बन्ध दीर्घकालीन एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के साथ लगाया जाता है। आधिक्य सृजन का भिन्नाय दीर्घकाल में आवश्यक उत्पादन तथा वास्तविक उत्पादन के मध्य किये गये उत्पादन से लगाया जाता है लेकिन यह उत्पादन धनात्मक रूप में ही होना चाहिये। आवश्यकता से कम उत्पादन की स्थिति को आधिक्य सृजन नहीं कहा जायेगा केवल इष्टतम उत्पादन पर वास्तविक उत्पादन की अधिकता को ही आधिक्य सृजन कहा जायेगा।

अब आपको इस आधिक्य सृजन को लोक उद्यमों के सम्बन्ध में देखना होगा। सामान्य रूप से कुछ वस्तुओं एवं सेवाओं पर सरकार का एकाधिकार पाया जाता है तथा कुछ सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं के लिये निजी क्षेत्र से एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का सामना करना होता है। प्रायः सरकारों का प्रयास रहता है कि समय रहते जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति कर ली जाय। सामान्य सन्तुलन की स्थिति में यदि किसी भी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न हुआ तो अर्थव्यवस्था के लिये कठिनाई पैदा होगी। इसीलिये एकाधिकार स्थिति में आधिक्य सृजन की स्थिति का पाया जाना कोई प्रतिकूल बात नहीं है। लेकिन एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत जनता के पास वस्तुओं एवं सेवाओं के अन्य विकल्प मौजूद रहते हैं जो आधिक्य सृजन की आवश्यकता को कम करते हैं।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत जैसे देश में बढ़ती जनसंख्या के कारण सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की बढ़ती मांग का ठीक-ठीक अनुमान लगाना भी सरकार के लिये आसान कार्य नहीं कहा जा सकता। ठीक इसके साथ यह भी तथ्य सामने रखना होगा कि क्या सार्वजनिक उद्यमों में आधिक्य सृजन न होने पर जनता की मांग की पूर्ति सरकार निजी उद्यमों से वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदकर कर सकती है लेकिन ऐसी स्थिति में सरकार की कीमत नीति किसी न किसी दिशा में प्रभावित होगी।

आधिक्य सृजन का एक उदाहरण रेल परिवहन एवं सड़क परिवहन द्वारा अच्छी तरह से दिया जा सकता है। भीषण गर्मी या सर्दी तथा असामान्य स्थितियों में रेलगाड़ी या बसों में सीटें खाली रहती हैं तथा हनरी न्यूनतम लागत को भी निकालना मुश्किल होता है। लेकिन इस क्षमता का प्रयोग सामान्य मौसम या विशेष पर्वों पर पूर्ण कर लिया जाता है तथा आधिक्य सृजन से भी अधिक मांग उत्पन्न हो जाती है। गली एवं सड़कों पर दिन के समय में भी लाइंटें चालू रहती हैं। सार्वजनिक गोदामों में गेहूँ सड़ने लगता है। सरकारी शिक्षण संस्थानों में कम प्रवेश के कारण सीटें रिक्त रह जाती हैं, आदि ऐसे उदाहरण हैं जो लोक उद्यमों की आधिक्य सृजन को भली-भाँति प्रकट करते हैं। एक अन्य अच्छा उदाहरण राजकीय नलकूप का लिया जा सकता है कि बिजली की व्यवस्था के होने पर भी इस नलकूप की पूर्ण क्षमता का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसी प्रकार आधार संरचना – सड़क, नहरें, आदि के सम्बन्ध में भी आधिक्य सृजन की स्थिति देखने को मिलती है।

13.6 अभ्यास प्रश्न(Practice Questions)

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए -

- (i) कीमत नीति से आप क्या समझते हैं?
- (ii) कीमत नीति के दो आधारभूत तत्त्व बताओ?
- (iii) लोक उद्यम तथा निजी उद्यमों की कीमत नीति में एक अन्तर बताओ?
- (iv) लोक उद्यमों में आधिक्य सृजन क्या है?

प्र.2 निम्नलिखित कथनों में से सत्य तथा असत्य का चयन कीजिए?

- (i) लोक उद्यमों पर सरकार का नियंत्रण होता है।
- (ii) लोक उद्यमों की कीमत बाजार की शक्तियों द्वारा तय होती हैं।
- (iii) लोक उद्यमों में प्रबन्धित कीमतें पायी जाती हैं।
- (iv) सार्वजनिक कउद्यमों में आधिक्य सृजन नहीं होता है।
- (v) प्रो0 डाल्टन ने कीमत नीति पर तीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं।

प्र.3 नीचे दिये गये 'क' तथा 'ख' स्तम्भों का सही मिलान कीजिए?

क

- (i) सरकार
- (ii) बाजार कीमत
- (iii) रेल परिवहन
- (iv) समाज कल्याण

ख

- निजी उद्यम
- लोक उद्यम
- मांग पूर्ति
- अधिकतम कीमत

प्र.4 लोक तथा निजी उद्यमों की कीमत नीति में क्या अन्तर पाया जाता है?

प्र.5 डॉल्टन के अनिवार्य सेवा लागत सिद्धान्त को संक्षेप में स्पष्ट करो?

प्र.6 शुद्ध सार्वजनिक वस्तुएँ एवं सेवाओं से क्या तात्पर्य है?

प्र.7 प्रबन्धित कीमतों का मुख्य उद्देश्य बताओ?

प्र.8 नीचे दिये वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

- (i) लोक वस्तुओं एवं सेवाओं की बढ़ती मांग का सही-सही ---- लगाना कठिन है।
- (ii) रेल परिवहन ----- की श्रेणी में आता है।
- (iii) लोक उद्यमों में ---- पाया भी जाता है।
- (iv) लोक उद्यम की कीमत नीति बाजार शक्तियों से ----- होती है।

(प्रभावित, लोक उद्यम, आधिक्य सृजन, अनुमान)

13.7 सारांश (Summary)

सरकार द्वारा लोक उद्यमों से सम्बन्धित कीमत, नीति का निर्धारण करना कोई सरल कार्य नहीं है। इसके लिये जनता के हितों के साथ निजी क्षेत्र की बाजार कीमतों को भी ध्यान में रखना होता है। लोक उद्यमों की कीमत नीति अर्थव्यवस्था की प्रकृति, जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि, लोक वस्तुओं एवं सेवाओं की प्रकृति, मांग की कीमत,

लोच, सरकार की प्राथमिकतायें तथा देश की आन्तरिक व बाह्य परिस्थितियों द्वारा एक बड़ी सीमा तक प्रभावित होती हैं। अतः सरकार द्वारा कीमत नीति के निर्धारण में इन तत्वों को ध्यान में रखना होता है। जिन पर कीमत नीति की सफलता निर्भर करती है। सरकार को आवश्यकता पड़ने पर लोक वस्तुओं एवं सेवाओं के लिये कीमतों पर नियंत्रण भी करना होता है तथा सरकारें अपने स्तर से इन वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण करती हैं। प्रबन्धित कीमतों के सामने भी अनेक प्रकार की समस्यायें पैदा होती हैं जिन्हें सरकार द्वारा दूर करने का प्रयास किया जाता है। जहाँ तक लोक उद्यमों में आधिक्य सृजन का सवाल है वस्तुओं की प्रकृति तथा जनता की रुचि एवं स्वभाव आदि के कारण लोक उद्यमों में आधिक्य सृजन किया जाता है तथा इस आधिक्य सृजन की पूर्ति भी कर दी जाती है। सरकार के सामने मुख्य समस्या जनता की मांग एवं इस आधिक्य सृजन के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने की होती है।

लोक उद्यमों के अन्तर्गत आधिक्य सृजन की क्षमता लोक उद्यमों की प्रकृति, आकार एवं सरकार की नीति पर निर्भर करती है। कुछ विशेष लोक उद्यमों के अन्तर्गत आधिक्य सृजन क्षमता समयानुसार बदलती रहती है जैसे सड़क परिवहन तथा रेल परिवहन व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ विशेष अवसरों पर सवारियों की न्यूनता तथा अन्य विशेष अवसरों पर सवारियों की अधिकता का बने रहना आधिक्य सृजन की समस्या पैदा करता है। वांछित मांग तथा इष्टतम उत्पादन का स्तर अर्थव्यवस्था के लिये एक आवश्यक एवं उपयोगी तथ्य है। अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत विद्यमान आर्थिक तत्वों के साथ-साथ सामाजिक तत्व भी आधिक्य सृजन को प्रभावित एवं निर्धारित करते हैं। जनसंख्या की वृद्धि, व्यक्तियों का स्वभाव एवं रुचि, व्यापारियों का मानसिकता आदि तत्व सीधे तौर पर आधिक्य सृजन को निर्धारित करते हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि आधिक्य सृजन के माध्यम से जहाँ अर्थव्यवस्था प्रतिकूल रूप में प्रभावित होती है वही अचानक अत्यधिक मांग वृद्धि सम्बन्धी समस्याओं को भी हल करने में सरकार को सहायता मिलती है।

13.8 शब्दावली (Glossary)

- सह-अस्तित्व – निजी उद्यम तथा सार्वजनिक/लोक उद्यमों का किसी अर्थव्यवस्था में एक साथ क्रियान्वित किया जाना।
- नीतियाँ – किसी मद या विषय के सम्बन्ध में क्या होना चाहिए? इसके लिए कार्यक्रम बनाना।
- आधिक्य - आवश्यकता से अधिक।
- सामन्जस्य – तालमेल पैदा करने की प्रक्रिया।
- सामाजिक सुरक्षा – बीमा, पेंशन, भत्ता आदि की सुविधायें।
- आर्थिक विषमतायें - जनता के मध्य धन का असमान वितरण।
- लचीलापन – किसी वस्तु या मद के सम्बन्ध में संशोधन करने की प्रवृत्ति या नम्यता प्रवृत्ति।
- सृजन – पैदा करना या उत्पन्न करना।

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

प्रश्न संख्या 01 के हल के लिए बिन्दु संख्या 13.3 तथा 13.3.2 का अवलोकन करें।

प्रश्न संख्या 02 के हल के लिए बिन्दु संख्या 13.4 को देखें।

प्रश्नसंख्या 03 के हल के लिए बिन्दुसंख्या 13.5 का अवलोकन

13.10 सन्दर्भग्रन्थसूची(References/Bibliography)

- भाटिया एच0एल(2006) 0, लोकवित्त) Public Finance), विकास पब्लिपिंग हाउस प्रा 0लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे0सी(2007) 0, राजस्व) Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- दत्त, रुद्र एवं के0पी0एम 0सुन्दरम(2010) , भारतीय अर्थव्यवस्था, एस 0चन्द एण्ड कं 0लिमिटेड, नई दिल्ली।

13.11 सहायक/उपयोगी ग्रन्थ(Useful/Helpful Text)

- वार्षेय, जे0सी(2007) 0, राजस्व, साहित्य भवन पब्लिकेपन्स, हॉस्पिटल रोड, आगरा।
- पुरी एवं मिश्रा(2011) , भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिपिंग हाउस, नई दिल्ली
- सेठ, एम0एल(2006) 0, माइक्रो अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक विक्रेता एवं प्रकाशक, आगरा।

13.12 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay Type Questions)

प्र.1 लोक उद्यमों की कीमत नीति को स्पष्ट कीजिए तथा इसके मुख्य सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए?

प्र.2 लोक उद्यमों की प्रबन्धित कीमतों पर एक विस्तृत लेख लिखिए?

प्र.3 लोक उद्यमों की आधिक्य सृजन की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए?

इकाई 14 लोक उद्यमों का कल्याणकारी प्रभाव एवं चुनौतियाँ
(Welfare Effects of Challenges of Public Enterprises)

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 लोक उद्यमों के कल्याणकारी प्रभाव
 - 14.3.1 व्यक्तिगत प्रभाव
 - 14.3.2 सामूहिक प्रभाव
- 14.4 लोक उद्यमों की चुनौतियाँ
 - 14.4.1 लोक उम एवं सरकारी नीतियाँ
- 14.5 अभ्यास प्रश्न
- 14.6 सारांश
- 14.7 शब्दावली
- 14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 14.10 सहायक/ उपयोगी ग्रन्थ
- 14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

इससे पूर्व की इकाई के अन्तर्गत आप लोक उद्यमों की कीमत नीति तथा प्रबन्धित कीमतों के बारे में अच्छी तरह से समझ गये होंगे। इसके साथ आपने लोक उद्यमों द्वारा आधिक्य सृजन का भी भली-भांति अध्ययन किया होगा। प्रस्तुत इकाई लोक उद्यम ब्लाक की पन्द्रहवीं इकाई है जो लोक उद्यमों के कल्याणकारी प्रभावों एवं चुनौतियों से सम्बन्धित है। लोक उद्यमों के कल्याणकारी प्रभावों का अध्ययन व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रभावों के अन्तर्गत किया गया है जो रोजगार संरक्षण, उपभोग स्तर, श्रम शोषण पर रोक, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय तथा जीवन सुरक्षा से सम्बन्धित किये गये हैं।

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत लोक उद्यमों की चुनौतियों का भी विश्लेषण किया गया है जो इन उद्यमों की नवीन स्थापना, कुशल संचालन तथा पर्याप्त निष्पादन के मार्ग में बाधक के रूप में पाये गये हैं। लोक उद्यमों की चुनौतियाँ श्रमिकों की अकुशलता, अधिकारियों का गैर जिम्मेदाराना व्यवहार तथा वैश्वीकरण से सम्बन्धित की गयी हैं। लोक उद्यमों के कल्याणकारी प्रभावों एवं चुनौतियों से सम्बन्धित सरकारी नीतियों का भी विप्लेषण किया गया है।

14.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई 'लोक उद्यमों का कल्याणकारी प्रभाव एवं चुनौतियाँ' का अध्ययन करने के बाद आप भलीभांति समझ सकेंगे कि :

- ✓ लोक उद्यमों द्वारा किसी देश की अर्थव्यवस्था पर सामूहिक रूप से तथा देश की जनता पर पड़ने वाले व्यक्तिगत प्रभाव किस सीमा तक कल्याणकारी हैं? इन कल्याणकारी प्रभावों से व्यक्तियों का जीवन स्तर किस दिशा में तथा किस स्तर तक प्रभावित हुआ है?
- ✓ लोक उद्यम जनता के जीवन स्तर में सुधार एवं कल्याण में वृद्धि के साथ-साथ व्यक्तियों की जीवन रक्षा एवं सुरक्षा को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
- ✓ लोक उद्यमों की स्थापना तथा पहले से स्थापित उद्यमों के कुशल संचालन एवं निष्पादन में क्या कठिनाइयाँ आती हैं तथा ये कठिनाई क्यों तथा किस प्रकार उत्पन्न होती हैं, इसके साथ में कठिनाइयाँ लोक उद्यमों को किस प्रकार नकारात्मक या प्रतिकूल रूप में प्रभावित करती हैं?
- ✓ लोक उद्यमों के कल्याणकारी प्रभावों में सरकारी नीतियों की क्या भूमिका रही है तथा इन नीतियों का किस दिशा में प्रभाव पड़ रहे हैं?

14.3 लोक उद्यमों के कल्याणकारी प्रभाव

लोक उद्यम किसी देश की अर्थव्यवस्था को विभिन्न पक्षों को अनेक रूपों में प्रभावित करते हैं, वहीं इन उद्यमों का जनता पर ऐसा प्रभाव भी पड़ता है जो जनता के कल्याण में वृद्धि करता है। लोक उद्यमों के कल्याणकारी प्रभावों का अध्ययन दो भागों में बाँटकर करेंगे।

- (i) व्यक्तिगत कल्याणकारी प्रभाव
- (ii) सामूहिक कल्याणकारी प्रभाव

14.3.1 व्यक्तिगत कल्याणकारी प्रभाव

लोक उद्यमों द्वारा पड़ने वाले व्यक्तिगत कल्याणकारी प्रभावों की विवेचना निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर की जा सकती है :

- i. **उपभोग स्तर में वृद्धि एवं परिवर्तन** : लोक उद्यमों को सामान्यतः लोकसत्ताओं के स्वामित्व एवं नियंत्रण से जोड़ा जाता है लेकिन इसके आन्तरिक पक्ष को गहराई से देखा जाय तो लोक उद्यम व्यक्ति के उपभोग स्तर को अनुकूल दिशा में प्रभावित करता है जिससे उसके उपभोग में वृद्धि होती है। लोक उद्यम व्यक्ति को उचित कीमत पर उपभाग की गुणवत्तापूर्ण वस्तुओं एवं सेवाओं को उपलब्ध कराने की क्षमता रखता है। गुणवत्तापूर्ण वस्तुएँ एवं उचित कीमत निजी उद्यम द्वारा एक साथ सम्भव नहीं हो सकती है। आपको यहाँ यह ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है कि लोक उद्यम अपने उत्पादन पर अनेक प्रकार की रियायतें देने में समर्थ हैं ताकि गरीब तथा मध्यम वर्ग आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं का आवश्यकतानुसार उपभोग कर सकें। सामान्यतः मिश्रित अर्थव्यवस्था में व्यक्ति के उपभोग पर लोक उद्यमों का प्रभाव और अधिक महत्वपूर्ण होता है।
- ii. **आत्मनिर्भरता** : आत्मनिर्भरता को भी लोक उद्यमों के कल्याणकारी प्रभावों के रूप में देखा गया है। लोक उद्यमों की स्थापना एवं संचालन के पीछे यह तर्क बड़े आसानी से दिया जा सकता है कि लोक उद्यमों के द्वारा गरीब तथा मध्यमवर्ग व्यक्ति को आत्मनिर्भरता प्रदान की जाती है ताकि वह अपना तथा परिवार का जीवन आसानी से जी सके। शिक्षण तथा प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रभावों को आत्मनिर्भरता के संदर्भ में देखा गया है। सार्वजनिक क्षेत्र में संचालित तथा निजी क्षेत्र में संचालित शिक्षण एवं प्रशिक्षण उद्यमों के मध्य इस आधार पर भी अन्तर दर्शाया गया है कि लोक उद्यम कम कीमत पर व्यक्ति को रोजगार परक शिक्षा एवं प्रशिक्षण देने में समर्थ है वही निजी क्षेत्र का उद्यम स्वयं के लाभ-अर्जन के साथ उच्च कीमत पर ही आत्मनिर्भरता प्रदान कर सकता है जो गरीब तथा मध्यम वर्ग के व्यक्ति की सीमा से बाहर हो जाता है। आपको यह बड़े आसानी से देखने को मिलेगा कि निजी उद्यम स्थापित करने का क्षेत्र वह होता है जहाँ मांग की अधिकता हो तथा उनकी आय अर्जन की अधिक सम्भावना हो। जब कि लोक उद्यमों की स्थापना का क्षेत्र आत्मनिर्भरता प्रदान करने वाली सेवाओं से अभावग्रस्त क्षेत्र होता है। इसी प्रकार वित्तीय क्षेत्र के लोक उद्यम भी शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता प्रदान करने के लिये प्रयासरत हैं। सरकार द्वारा ग्रामीण तथा शहरी विकास विभागों के अन्तर्गत संचालित अनेक कार्यक्रम आत्मनिर्भरता प्रदान करने के क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रहे हैं। सामान्य रूप से विकासशील तथा पिछड़े देशों में लोक उद्यम लोगों की आत्मनिर्भरता को विकसित करने का सशक्त माध्यम है।
- iii. **श्रम के शोषण पर रोक** : लोक उद्यमों के व्यक्तिगत कल्याणकारी प्रभावों के अन्तर्गत श्रम के शोषण को रोकने के प्रयासों को भी शामिल किया गया है। भारत जैसे विकासशील देशों के संदर्भ में आप देखते होंगे कि गैर सरकारी क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों का अनेक प्रकार से शोषण किया जाता है। महिला तथा पुरुषों की मजदूरी में अन्तर, सामान्यस्तर से कम मजदूरी, कार्य के अधिक घण्टे, नैतिक तथा मानसिक

2. शोषण तथा सामाजिक स्तर या श्रमिक का बड़े स्तर पर शोषण किया जाता है। सरकार द्वारा संचालित लोक उद्यमों द्वारा इसके विरुद्ध पहल करते हुये सार्थक प्रयास किये हैं। लोक उद्यमों की स्थापना एवं विस्तार के माध्यम से निजी क्षेत्र द्वारा शोषित श्रम को लोक उद्यमों में सुरक्षा प्रदान की जाती है। इसके साथ लोक उद्यमों में कार्यरत श्रमिक एवं कर्मचारियों का किसी भी प्रकार का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर शोषण किया जाना सम्भव नहीं है।

आपने भारत में सामान्य रूप से देखा होगा कि कुछ लोक उद्यम श्रमिकों के शोषण को रोकने के लिए ही स्थापित किये गये हैं या उन श्रमिकों को निजी उद्यमों से लोक उद्यमों की ओर लाया गया है। कहीं-कहीं निजी उद्यमों का ही राष्ट्रीयकरण करके लोक उद्यमों का दर्जा प्रदान किया गया जिससे उनके शोषण को रोका जा सका है।

14.3.2 सामूहिक कल्याणकारी प्रभाव

लोक उद्यमों के पड़ने वाले कल्याणकारी प्रभाव व्यक्तिगत जीवन के साथ सामूहिक रूप से भी प्रभावी होते हैं जिनको निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है :

- (i) **सामाजिक न्याय एवं विकास** : लोक उद्यमों का सामाजिक न्याय एवं विकास के रूप में कल्याणकारी प्रभाव देखने को मिलता है। लोक उद्यम बिना किसी सामाजिक भेद भाव के अपने प्रभावों को डालते हैं जो समाज के सभी व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं। न्यायालयों की स्थापना एवं उनका सफलतापूर्वक संचालन सामाजिक न्याय दिलाने का सबसे महत्वपूर्ण प्रयास माना जा सकता है। इसके साथ अनेक विभागों के अन्तर्गत न्यायालय के समकक्ष अधिकारियों की नियुक्ति एवं बोर्डों का गठन करके समाज को सामाजिक न्याय दिलाया गया है। सामाजिक न्याय विकास के लिए एक आधार का कार्य करता है। सामान्य रूप से जिन क्षेत्रों में सामाजिक न्याय की उचित व्यवस्था नहीं है वहाँ पर उद्यमी अपना उद्यम स्थापित करने से पीछे रहता है। इस प्रकार सामाजिक न्याय प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से आर्थिक विकास को प्रभावित करता है। लोक उद्यमों से प्राप्त आय का प्रयोग तो उसी लोक उद्यम के विस्तार में किया जाता है या देश के विकास सम्बन्धी योजनाओं के लिए किया जाता है। इस प्रकार लोक उद्यमों से प्राप्त आय का पुनः निवेश करके देश के आर्थिक विकास को बढ़ाया जाता
- (ii) **रोजगार संरक्षण एवं सृजन** : लोक उद्यमों का रोजगार के संरक्षण एवं सृजन पर प्रभाव पड़ता है। प्रथमतः रोजगार संरक्षण पर बात करें सार्वजनिक उद्यमों के अन्तर्गत कार्यरत श्रमिकों, कर्मचारियों एवं अधिकारियों के रोजगार को संरक्षित किया गया है। लोक उद्यमों के अन्तर्गत रोजगार पर अनेक प्रकार के सरकारी नियम तथा उपनियम लागू होते हैं जो रोजगार को संरक्षित करते हैं। निजी उद्यम रोजगार संरक्षण के बारे में कहीं पीछे नजर आते हैं। उद्यमियों को अधिक स्वायत्तता एवं अधिकार प्रदान करना तथा श्रमिकों को सरकारी कानूनों से बाहर रखकर रोजगार को पूर्ण रूप से संरक्षित नहीं किया जा सकता है। आपने सामान्य रूप से देखा होगा कि एक उच्चवर्ग का परिवार भी सरकारी नौकरी को येन केन प्रकारेण प्राप्त करने का प्रयास करता है। निजी क्षेत्र में आये दिन रोजगार छंटनी, श्रमिकों का शोषण के कारण कार्य छोड़ना जैसी घटनायें पायी जाती हैं। रोजगार सृजन के प्रभावों को देखें तो आप पायेंगे कि लोक उद्यमों की स्थापना ही बेरोजगारी, गरीबी जैसी समस्याओं के निराकरण के लिये की जाती है। चाहे लोगों को

सीधे रोजगार दिया जाय चाहे उन्हें स्वरोजगार के लिये आत्मनिर्भर बनाया जाय। इस प्रकार लोक उद्यम रोजगार संरक्षण एवं सृजन का महत्वपूर्ण साधन है। भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य, अनुसन्धान, विकास विभाग, विनिर्माण क्षेत्र आदि उद्यम बड़े स्तर पर रोजगार सृजन करते हैं तथा इन उद्यमों में रोजगार पूर्ण रूप से संरक्षित भी किया गया है।

(iii) **सामाजिक एवं जीवन सुरक्षा :** लोक उद्यमों का अन्य सबसे महत्वपूर्ण कल्याणकारी प्रभाव समाज की सामाजिक एवं जीवन सुरक्षा पर पाया गया है। भारत जैसे विकासशील देश में तो सामाजिक एवं जीवन सुरक्षा के आधार पर लोक उद्यमों का एक बड़ा वर्ग संचालित किया जा रहा है। स्वास्थ्य संस्थाएँ समाज के जीवन को सुरक्षित ही नहीं करती बल्कि समाज के जीवन को एक नई दिशा भी प्रदान करती हैं। आये दिन सरकार स्वास्थ्य संस्थाओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि कर रही है ताकि भारत की जनता स्वस्थ रूप से जीवन यापन कर सके। व्यस्ततापूर्ण जीवन में आये दिन तमाम ऐसी घटनाएँ होती हैं जो मानव जीवन के लिए खतरनाक हैं लेकिन उच्च स्तर की स्वास्थ्य संस्थाओं द्वारा उन्नत स्तर की चिकित्सा सुविधाओं द्वारा मानव जीवन को इस खतरे से बचाया जा सकता है। लोक उद्यमों द्वारा नई-नई चिकित्सा पद्धतियों को अपनाया जा रहा है। निजी क्षेत्र की स्वास्थ्य संस्थाएँ भी जीवन की सुरक्षा के लिए कार्यरत हैं लेकिन गरीब तथा मध्यम वर्ग लोक स्वास्थ्य उद्यमों का पूर्ण लाभ ले रहा है। भारत सहित तमाम देशों में लोक उद्यमों की स्थापना सामाजिक सुरक्षा के लिए की गयी है। सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी बोर्ड, विभाग तथा सार्वजनिक क्षेत्र की बीमा कम्पनियाँ इस दिशा में सार्थक प्रयास कर रही हैं।

(iv) **अन्य प्रभाव :** स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के तीन दशकों के काल में हए द्रत औद्योगीकरण का मुख्य श्रेय सरकारी क्षेत्र को ही है। सरकार के औद्योगिक नीति प्रस्तावों में कुछ उद्योग-अणुशक्ति, अस्त्रशस्त्र एवं विस्फोटार, वायुयान आदि राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में सरकार के लिये रिजर्व कर दिये गये। सरकार ने कुँजी उद्योग अर्थात् कोयला, लौह एवं इस्पात, वायुयान, पोत-निर्माण आदि के विकास की भी जिम्मेदारी ली, शेष उद्योगों को गैर-सरकारी क्षेत्र के लिये छोड़ दिया गया। परन्तु चार योजनाओं के अनुभव से साफ जाहिर होता है कि गैर-सरकार क्षेत्र में कुछ अन्तर्निहित कठिनाइयाँ हैं और यह तेज औद्योगिक विकास भारतीय अर्थव्यवस्था को स्वयं स्फूर्त बनाने के लिए आवश्यक है। इसी कारण तो सरकार को मूल एवं सामरिक उद्योगों, पूँजी उद्योगों और कुछ हद तक उपभोग-वस्तुओं के विकास के लिए एक भारी कार्यक्रम तैयार करना पड़ा। इस उपलब्धि के लिए सार्वजनिक कक्षेत्र को श्रेय देना ही होगा। आर्थिक सुधारों को चालू करने के पश्चात भी यह अनुमान किया गया कि गैर-सरकारी क्षेत्र के निवेश में प्रत्याशित वृद्धि प्राप्त नहीं की जा सकी और यह सुझाव दिया जाता है कि आधारसंरचना के विकास के लिए तो सार्वजनिक क्षेत्र को ही दायित्व संभालना होगा।

सरकार क्षेत्र बहुत से विभिन्न प्रकार के उद्योगों एवं वस्तुओं में प्रवेश कर गया है। इसकी क्रियाएँ एक ओर तो मूल तथा पूँजी वस्तु उद्योगों अर्थात् इस्पात, कोयला, तांबा, जस्ता एवं अन्य खनिजों तथा भारी मशीनरी तक फैली हुई है और दूसरी ओर इसका कार्यक्षेत्र है औषधियाँ एवं रसायन, खाद, उपभोग वस्तुएँ जैसे सूती वस्त्र, होटल सेवाएँ, घड़ियाँ, डबल रोटी आदि। इसमें से अधिकतर उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए क्रांतिक महत्व रखते हैं

क्योंकि उनके अन्य उद्योगों के साथ गहरे सम्बन्ध हैं। कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे तांबा, सीसा, कोयला, पेट्रोलियम उत्पाद, जल एवं भाप टरबाइन, इंजन, रेलवे कोच आदि में सरकारी क्षेत्र का भाग 100 प्रतिशत है। बहुत-सी अन्य वस्तुओं में यह भाग 50 से 95 प्रतिशत के बीच है।

14.4 लोक उद्यमों की चुनौतियाँ

लोक उद्यमों के पड़ने वाले कल्याणकारी प्रभावों का अध्ययन करने के बाद आप लोक उद्यमों की स्थापना, संचालन एवं कुशल निष्पादन में आने वाली चुनौतियों की विवेचना कर सकेंगे। लोक उद्यमों की मुख्य चुनौतियों को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर विवेचना की जा सकती है :

1. **राजनैतिक दुरुपयोग** : प्रायः सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में लोक उद्यमों के सामने मुख्य चुनौतियाँ राजनैतिक दृष्टि से इन उद्यमों का दुरुपयोग करने की रही है। प्रायः देशों में राजनैतिक सत्तार्यें बदलती रहती हैं। प्रत्येक सरकार अपने स्वार्थपूर्ति एवं निहित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लोक उद्यमों से सम्बन्धित नीतियाँ एवं दिशानिर्देश तय करती हैं जिससे पिछली सरकारों की नीतियों एवं दिशा निर्देशों में सामन्जस्य स्थापित नहीं हो पाता और लोक उद्यमों का कुशलतम संचालन एवं निष्पादन प्राप्त नहीं किया जा सकता। भारत जैसे देश में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मध्य प्रायः मतभेदों की स्थितियाँ कायम रही है इसीलिए अधिकांश लोक उद्यमों का संचालन केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के मतभेदों का शिकार हो गये हैं। स्वतंत्रता के प्रारम्भ में लोक उद्यमों का अत्यधिक विस्तार किया गया लेकिन राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए लोक उद्यमों का विनिवेश की प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी जिसका सामाजिक रूप से जनता पर अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ सका। वर्तमान में निजीकरण का बोलबाला चरम सीमा पर है।
2. **कार्य अकुशलता** : जब सरकार जनता के विकास एवं उत्थान के लिए प्रयास करे लेकिन जनता सरकारी तंत्र का दुरुपयोग करने की सोच रखे तब ऐसी स्थिति में क्षेत् परिणामों को प्राप्त करना सम्भव नहीं हो सकता है। रोजगार सृजन, शोषण से सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा देने वाले लोक उद्यम के अन्तर्गत कार्यरत कर्मचारी कुशलता के साथ कार्य नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में लोक उद्यमों का क्रियान्वयन उचित स्तर पर नहीं किया जा सकता है। लोक उद्यमों के सामने दो प्रकार की कार्य अकुशलता सम्बन्धी चुनौतियाँ पायी गयी हैं। प्रथमतः जब कर्मचारी पूर्ण कुशल है लेकिन वह जानबूझकर कुशलता के साथ कार्य नहीं करता है ऐसी स्थिति भी लोक उद्यम के लिये खतरनाक साबित होती है। द्वितीयतः जब लोक उद्यम में अकुशल कर्मचारी की ही भर्ती की गयी है तब उसे कुशल बनाने के लिये अतिरिक्त समय एवं धन की आवश्यकता होगी। इसके साथ वह कुशल बनने की क्षमता रखता है या नहीं यहाँ भी एक समस्या पैदा होती है। भारतीय लोक उद्यमों में दोनों प्रकार की कार्य अकुशलता विद्यमान है जिसके कारण ही लोक उद्यमों का निष्पादन उच्च स्तर का प्राप्त नहीं किया जा रहा है। जिन उद्यमों में कार्यकुशलता को प्राथमिकता दी गयी है वह उद्यम सफलतापूर्वक संचालित है जैसे भारतीय रेलवे।
3. **अधिकारी एवं कर्मचारियों की गैर जिम्मेदारी** : भारत जैसे देशों में लोक उद्यमों के घाटे में जाने का मुख्य कारण इन उद्यमों में नियुक्त अधिकारी एवं कर्मचारी जिम्मेदारीपूर्वक अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों का निर्वहन न करना पाया गया है। आपने शायद देखा या सुना होगा कि सरकारी विभाग का अधिकारी अपने

दायित्व का उचित निर्वहन करने की अपेक्षा अपने तबादले/ट्रान्सफर को वरीयता देने लगता है। पूर्व बिन्दुओं में हमने यह भी स्पष्ट किया है कि लोक उद्यम रोजगार का संरक्षण होता है। इसी क्रम में, लोक उद्यम में कार्यरत कर्मचारी या अधिकारी रोजगार के संरक्षण का नाजायज फायदा उठाते हैं। अधिकारियों एवं कर्मचारियों की लापरवाही लोक उद्यमों के सफल संचालन में बाधक हैं। उचित नीतियों का निर्धारण न होना, शासन के आदेशों का समयानुसार लागू न करना, कर्मचारियों में सामन्जस्य की कमी, समय से कार्यालय न आना, आवश्यकतानुसार कार्यक्षेत्र की उपेक्षा करना, उद्यमों की परिसम्पत्तियों की सही रूप में देखभाल न करना आदि ऐसे कार्य हैं जो गैर-जिम्मेदारी पूर्ण व्यवहार को प्रकट करते हैं जिससे लोक उद्यमों का उचित क्रियान्वयन नहीं किया जा सकता है। इसके पीछे एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह छिपा है कि अच्छे तथा जिम्मेदारीपूर्वक कार्य करने वाले अधिकारियों का तबादला भी राजनैतिक व्यक्तियों द्वारा अनुचित लाभ लेने के लिए करा दिया जाता है जिससे वह अधिकारी अपने ही जिम्मेदारी के प्रति घृणित होता है।

4. **प्रतिस्पर्धात्मक प्रभाव :** वैश्विक परिदृश्य के चलते भी लोक उद्यमों को अनेक प्रकार की प्रतिस्पर्धात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। विश्व के देशों के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध उदारीकरण एवं निजीकरण से प्रेरित है। विकसित देशों के लोक उद्यम, विकासशील एवं पिछड़े देशों के लोक उद्यमों के लिए प्रतिस्पर्धात्मक चुनौतियाँ दे रहे हैं। लोक उद्यम समाजिक तथा आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। विकासशील तथा पिछड़े देशों में लोक उद्यमों को व्यावसायिक तथा लाभ अर्जन करने के रूप में नहीं देखा जा रहा है विदेशी वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रति जनता की बढ़ती लुभावनी प्रवृत्तियाँ अपने ही देश के लोक उद्यमों के घातक बन गयी हैं। आर्थिक विश्लेषण के आधार पर उच्च स्तर का निष्पादन प्राप्त न हो लेकिन उद्यम संचालन एवं क्रियान्वयन के लिये न्यूनतम निष्पादन की प्राप्ति तो आवश्यक ही है। लोक उद्यमों के सामने विदेशी लोक उद्यम तथा निजी एवं स्वदेशी निजी उद्यम भी इस दिशा में प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे हैं। वैश्वीकरण के दौर में उद्यमों के मध्य प्रतिस्पर्धाओं के साथ उपभोक्ताओं के मध्य भी प्रदर्शन प्रभावों के मध्य स्पर्धा का दौर प्रारम्भ हो गया है। उनकी रुचियों एवं आवश्यकताओं में व्यापक परिवर्तन हुआ है जिसकी पूर्ति के लिए भारत जैसे देश के लोक उद्यमों में अचानक या अल्पकाल में पर्याप्त परिवर्तन करना सम्भव नहीं हो सकता है।
5. **नियंत्रणात्मक कठिनाइयाँ :** लोक उद्यमों से सम्बन्धित कुछ चुनौतियों का अवलोकन करने के बाद अब आप इन उद्यमों में नियंत्रण से सम्बन्धित आने वाली कठिनाइयों को स्पष्ट कर सकेंगे। स्वतंत्रता के बाद भारत में लोक उद्यमों का तेजी से विस्तार एवं विकास हुआ। यह विस्तार इतना हुआ कि इन उद्यमों पर सरकार या सम्बन्धित संस्थाएँ कुशलतापूर्वक नियंत्रण नहीं कर सकीं। श्रम संघों की हड़ताले, प्रबन्धकीय अनियन्त्रण, अनावश्यक बाहरी नियंत्रण एवं आन्तरिक आसमन्जस्य आदि के कारण नियंत्रणात्मक कठिनाइयाँ पैदा हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि 1988 के दशक में लोक उद्यमों को आर्थिक सुधारों की परिधि में लाकर निजीकरण की प्रक्रिया में शामिल किया गया। हमारे देश की राजनैतिक व्यवस्थाएँ एक दूसरी सरकार को सहयोग करने की बजाय गलत रास्ते पर चलने को उचित

मानती है ताकि उसका लाभ आगामी चुनाव में मिल कसे। लोक उद्यमों के विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों में अन्तर है जिससे इनके क्रियान्वयन में अन्तर पाया जाता है।

6. **लागत लाभ विश्लेषण सम्बन्धी मतभेद :** भारतीय संविधान में समाजवादी अर्थव्यवस्था को महत्व दिया गया ताकि देश के विकास में सभी वर्ग की सहभागिता सुनिश्चित की जा सके तथा सभी को समान रूप से सामाजिक व आर्थिक लाभ उपलब्ध हो सके। लोक उद्यम की अवधारणा समाजवादी व्यवस्थाओं के अनुकूल ही मानी जाती है। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि लोक उद्यमों के निष्पादन का आंकलन लागत-लाभ विश्लेषण के आधार पर होना चाहिए तथा कुछ अर्थशास्त्री इस मत से सहमत नहीं हैं। लागत-लाभ विश्लेषण पूँजीवाद का द्योतक है। इससे आम जनता के कल्याण की बात नहीं कही जा सकती है। लोक उद्यमों के विनिवेश का निजीकरण की पहल इसी मतभेद का परिणाम है। इसी मतभेद के आधार पर भारत में लोक उद्यमों के विकास की उचित नीतियों का निर्धारण नहीं हो सका। परिणामस्वरूप आर्थिक घाटे के आधार पर लोक उद्यमों के विरुद्ध बड़ी संख्या में वितर्क दिये गये। वर्तमान में भी लोक उद्यमों की नीतियों में लागत-लाभ विश्लेषण सम्बन्धी मतभेद स्पष्ट दिखाई देते हैं जो हमारे देश के लोक उद्यमों के लिए खतरनाक सिद्ध होंगे।
7. **पूँजीवाद की ओर झुकाव :** आपको यहाँ ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि दुनिया के सभी देश वृद्धि दर को उच्च स्तर पर ले जाने की बात करते हैं जिसके लिए भारी मात्रा में पूँजी का निवेश, बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा विदेशी पूँजी का प्रयोग आदि की दशाओं को आवश्यक माना गया है। ये सभी दशाएँ सामान्य रूप से पूँजीवाद की ओर इशारा करती हैं। पूँजीवादी ताकतों का यह हमेशा से ही प्रयास रहता है कि निजी क्षेत्र के विकास के लिए सरकारी सहायता का प्रयोग करो तथा सरकारी उद्यमों एवं संस्थाओं के विकास एवं संचालन में बाधा डालो जो भारत जैसी मिश्रित अर्थव्यवस्था के लोक उद्यमों के लिए अत्यन्त ही घातक सिद्ध होती है। दूसरी ओर पूँजीवादी ताकतों का सरकारों में प्रतिनिधित्व एवं हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है जिससे लोक उद्यमों की नीतियाँ प्रतिकूल दिशा में प्रभावित हुई हैं। भविष्य में भी पूँजीवादी ताकतें लोक उद्यमों के सफल संचालन में बाधक बनेगी।

14.4.1 लोक उद्यम एवं सरकारी नीतियाँ

6 अप्रैल, 1949 को तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा में भारत की पहली औद्योगिक नीति की घोषणा की जिसमें कहा गया कि देश की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत विदेशी एवं देशी उपक्रमों के बीच भेदभाव नहीं किया जायेगा। विदेशी विनियोजकों द्वारा लगायी गयी पूँजी पर प्राप्त होने वाले लाभों को अपने देश में भेजने के लिए सभी आवश्यक सुविधाएँ दी जायेंगी। जो विदेशी उपक्रम इस समय देश में चल रहे हैं उन पर सरकार कोई भी ऐसा प्रतिबन्ध नहीं लगायेगी जो भारतीय उपक्रम पर नहीं लगाया गया है। सरकार की इच्छा विदेशी उपक्रमों को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने की नहीं है, लेकिन यदि किसी कारण से किसी भी विदेशी उपक्रम का राष्ट्रीयकरण किया गया तो विदेशी उद्योगपतियों को उचित एवं न्यायपूर्ण क्षतिपूर्ति की जायेगी। विदेशी पूँजी पर नियंत्रण रखा जायेगा। इस नियन्त्रण का उद्देश्य इसका इस प्रकार उपयोग करना होगा कि देश के

लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। विदेशी उपक्रमों का नियन्त्रण भारतीय हाथों में होना चाहिए। धीरे-धीरे विदेशी विशेषज्ञों के द्वारा भारतीय कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण देने के लिये व्यवस्था की जायेगी।

1956 की औद्योगिक नीति में कहा गया कि सरकार देशी व विदेशी प्रतिष्ठानों में कोई मतभेद नहीं बरतेगी। उन्हें लाभ व पूँजी ले जाने की छूट होगी, लेकिन यदि राष्ट्रीयकरण किया जायेगा तो उन्हें न्यायपूर्ण मुआवजा दिया जायेगा।

1991 के पश्चात उदार औद्योगिक नीति अपनाने पर उद्योगों के निजीकरण के संदर्भ में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। हाल के वर्षों में भारत के अनेक औद्योगिक क्षेत्रों के लिए विदेशी कम्पनियों को प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई है। विदेशी कम्पनियाँ भारतीय कम्पनियों के साथ मलकरक संयुक्त रूप से अनेक औद्योगिक क्षेत्रों में संयुक्त निवेश के समझौते सम्पन्न करती हैं। कुछ दशक पहले तक भारतीय कम्पनियों की इक्विटी-पूँजी में विदेशी कम्पनियों की भागीदारी केवल 40 प्रतिशत के आस-पास तक ही सीमित थी, जिसे अब विनिर्दिष्ट उद्योगों के लिए बढ़ाया जाता रहा है। औद्योगिक विकास को आगे बढ़ाने की दिशा में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अहम भूमिका को स्वीकार कर लिया गया है। आर्थिक विकास की ऊँची दर प्राप्त करने के उद्देश्य से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को प्रोत्साहन देना सर्वोत्तम उपाय माना जाने लगा है। पिछले बीस वर्षों में निजी औद्योगिक क्षेत्रों में अनेक नये उद्योग इसी आधार पर स्थापित एवं विकसित किये गये हैं। इसने अनेक प्रकार की सुविधाएँ देश के उद्योगों को प्रदान की हैं जैसे उन्नत प्रौद्योगिकी, विश्व स्तर की प्रबन्ध कुशलताएँ, प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों के अनुकूलतम उपयोग के अवसर, निर्यात के नए बाजारों की खोज तथा उत्पादित माल एवं सेवाओं के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की गुणवत्ता, आदि। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए उदारतापूर्वक प्रदान की गई सुविधाओं ने देश में उद्योगों के निजीकरण के लिए नए आयाम प्रदान किये हैं ऐसेविनिर्धारित उद्योगों (जिनमें विदेशी पक्ष की पूँजी की भागीदारी 51 से 74 प्रतिशत से अधिक नहीं हो) के लिए स्वतः अनुमोदन प्रदान करने का प्रावधान किया गया है।

निर्णय करने में स्वायत्ता का अभाव, निजी स्वार्थों को बढ़ाने के लिए सार्वजनिक उद्यमों का प्रयोग, मंत्रियों एवं बड़े अफसरों द्वारा राशियों की हेराफेरी के लिए सार्वजनिक उद्यमों का इस्तेमाल, निम्न कार्यनिष्ठा के परिणामस्वरूप कुशलता का निम्न स्तर, इन सभी कारणों के नतीजे के तौर पर ऐसी परिस्थितियाँ कायम हो गयीं जिसमें सार्वजनिक उद्यमों की प्रत्याग दर बहुत ही कम थी या कुछ हालतों में नकारात्मक हो गयी। परिणामतः उदारीकरण के आन्दोलन को औचित्य प्राप्त हो गया और इस कारण भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने उल्लेख किया : “सार्वजनिक क्षेत्र? बहुत से ऐसे क्षेत्रों में फैल गया है जहाँ इसे नहीं होना चाहिए। हम अपने सार्वजनिक क्षेत्र का विकास उन कार्यों के लिए करेंगे जो निजी क्षेत्र नहीं रह सकता। परन्तु हम निजी क्षेत्र के लिए बहुत से बन्द क्षेत्रों को खोल देंगे ताकि इसका विस्तार हो सके और अर्थव्यवस्था अधिक स्वतन्त्र रूप में विकसित हो सके।”

अतः भारत सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यभाग को कम करने पर विचार किया और निजी क्षेत्र के लिए बहुत से क्षेत्र खोल देने की प्रक्रिया चालू कर दी। 1991 की औद्योगिक नीति ने औद्योगिक लाइसेंस हटाने की प्रक्रिया चालू की और 18 उद्योगों को छोड़ अन्य सबसे औद्योगिक लाइसेंस हटा दिये गये। नयी औद्योगिक नीति बाजार-प्रक्रिया पर अधिक निर्भर करना चाहती थी। इस कारण इसके आधीन-विनियमन की प्रक्रिया आरम्भ की गयी

ताकि प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिले और नई फर्मों को बाजार में प्रवेश करने के अवसर प्राप्त हो सकें। इसका मुख्य उद्देश्य लाइसेंस-परमिट राज को समाप्त करना था ताकि बाजार का शासन स्थापित हो सके। न केवल देशीय उद्यमकर्ताओं अथवा उद्योगपतियों के लिये बाजार को खोला गया बल्कि विदेशी पूंजी को भी 51 प्रतिशत हिस्सा-पूँजी तक बेरोकटोक प्रवेश की अनुमति दी गयी।

बाजार प्रक्रिया प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करती है और इस प्रकार यह कुशलता को बढ़ाती है जिससे उत्पादिता में वृद्धि होती है, परन्तु कई परिस्थितियों में बाजार-विफलता भी अनुभव की जाती है :

सार्वजनिक वस्तुओं अर्थात् शिक्षा और स्वास्थ्य में भी बाजार-विफलता अनुभव की जाती है। इन क्षेत्रों में जब तक राज्य सरकार स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और हस्पताल स्थापित नहीं करती, तब तक कमजोर वर्ग की देखभाल करनी सम्भव नहीं।

बाजार विफलता आधार-संरचना के क्षेत्रों अर्थात् सिंचाई, सड़कों, रेलों, टेलीसंचार आदि में भी देखी जाती है। निजी क्षेत्र आधारसंरचना का प्रयोग तो करना चाहता है, परन्तु आधारसंरचना में विनियोग करना नहीं चाहता, विशेषकर दूरदराज के इलाकों में, जहाँ इसकी प्रत्यादा बहुत ही कम है। अतः सामान्यतः सार्वजनिक क्षेत्र से ही यह आशा की जाती है कि वह आधार-संरचना कायम कर ऐसा वातावरण स्थापित करें जिसमें प्रत्यक्ष विनियोग नक रूप से किया जा सके। बाजार-विफलताएँ राज्य हस्तक्षेप को अनिवार्य बना देती हैं ताकि बाजार प्रक्रिया की अपूर्णताएँ ठीक की जा सकें।

14.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए -

- (i) कल्याणकारी प्रभाव क्या है?
- (ii) लोक उद्यमों के दो कल्याणकारी प्रभाव बताओ?
- (iii) लोक उद्यमों की तीन चुनौतियाँ कौन-कौन सी हैं?
- (iv) लोक उद्यम के दो सामूहिक प्रभाव बताओ?
- (v) जीवन रक्षा से सम्बन्धित किसी एक लोक उद्यम का नाम बताओ?

प्र.2 निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

- (i) लोक उद्यम रोजगार का ----- करता है।
- (ii) लोक उद्यम से ---- का षोषण रूकता है।
- (iii) भारत में लोक उद्यमों का ---- किया गया।
- (iv) लोक उद्यम ---- में सहायक हैं।
(विकास, श्रम, संरक्षण, निजीकरण)

प्र.3 निम्न कथनों में से सत्य अथवा असत्य की पहचान करो?

- (i) लोक उद्यमों में अनावश्यक राजनैतिक हस्तक्षेप पाया जाता है।
- (ii) लोक उद्यम सरकार द्वारा नियंत्रित होते हैं।
- (iii) शिक्षा तथा चिकित्सा सम्बन्धी लोक उपक्रम भारत में नहीं पाये जाते हैं।

(iv) लोक उद्यम समाजवाद के प्रतिकूल हैं।

प्र.4 सही जोड़ों का चयन करो।

क	ख
(i) पूंजीवाद	कल्याणकारी
(ii) भारत	पूंजीवादी
(iii) लोक उद्यम	मिश्रित अर्थव्यवस्था
(iv) कार्य अकुशलता	निजी उद्यम

प्र.5 भारत में आर्थिक सुधारों की लहर कब से प्रारम्भ हुई?

प्र.6 भारत में प्रथम औद्योगिक नीति कब घोषित की गयी थी?

प्र.7 लोक उद्यमों के सामने आने वाली नीतिगत दो चुनौतियाँ बताओ?

14.6 सारांश (Summary)

लोक उद्यमों के कल्याणकारी प्रभावों एवं चुनौतियों का अध्ययन करने के बाद पाया गया कि लोक उद्यमों का कल्याणकारी प्रभाव समाज को व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों ही रूप में पाया जाता है। व्यक्तिगत जीवन भी लोक उद्यमों के संचालन से प्रभावित हुआ है। लोक उद्यमों से लोगों का जीवन स्तर उचित दिशा में सुधरा है तथा उनके रोजगार की दिशा में भी सार्थक प्रयास किये गये हैं। उनके शोषण को कम करने में सहायता मिली है। विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों से व्यक्तियों को आत्मनिर्भर बनाया गया है तथा सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर न्याय भी दिलाया गया है। लोक उद्यम व्यक्तियों के जीवन को सुरक्षित करने में पर्याप्त सीमा तक सफल रहे हैं।

लोक उद्यमों के अनेक कल्याणकारी प्रभावों के बाद भी अनेक प्रकार की चुनौतियाँ इन उद्यमों के मार्ग में हैं जो इनके इन कल्याणकारी प्रभावों को कम करती है। ये चुनौतियाँ इन उद्यमों में आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही स्तर पर पायी जाती है जो अनेक तत्वों द्वारा पैदा की जाती है। भारत तथा इसी श्रेणी के अन्य देशों में लोक उद्यम अनेक चुनौतियों का आज भी सामना कर रहे हैं। लोक उद्यमों के सामने आने वाली अनेक प्रकार की चुनौतियाँ एवं उनकी असफलताओं के लिए सरकारी नीतियाँ भी एक बड़ी सीमा तक जिम्मेदार पायी गयी हैं। इस दिशा में यह अत्यन्त आवश्यक है कि सरकारी नीतियाँ एवं सरकार का दृष्टिकोण अत्यन्त ही स्पष्ट होना चाहिए।

14.7 शब्दावली (Glossary)

- **लोकसत्ता** – जनता द्वारा चुनी जाने वाली सरकारें।
- **चुनौतियाँ** – कठिनाइयाँ या परेशानियाँ।
- **मिश्रित अर्थव्यवस्था** - यह अर्थव्यवस्था जिसमें सरकारी तथा निजी दोनों ही क्षेत्रों का अस्तित्व पाया जाता है।
- **कल्याणकारी** – जनता के कल्याण में वृद्धि करने वाले।
- **निजी उद्यम** – व्यक्तिगत लोगों द्वारा स्थापित एवं संचालित उपक्रम।

- प्रतिस्पर्धा – प्रतियोगिता का सामना करना।
- वैश्विक - विश्व की अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

1. प्रश्न संख्या 01 के हल के लिए बिन्दु संख्या 14.3, 14.3.1 तथा 14.3.2 का अवलोकन करें।
 2. प्रश्न संख्या 02 के हल के लिए बिन्दु संख्या 14.4.1 का अवलोकन करें।
 3. प्रश्न संख्या 03 के हल के लिए बिन्दु संख्या 14.4.2 का अवलोकन करें।
 4. प्रश्न संख्या 04 के हल के लिए बिन्दु 14.4.1 का अवलोकन करें।
-

14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- पंत, जे0सी(2007) 0, राजस्व) Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
 - भाटिया एच0एल(2006) 0, लोकवित्त) Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा 0लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
 - मिश्रा एवं पुरी(2011) , भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
 - वार्णेय, जे0सी(1997) 0, राजस्व, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
-

14.10 सहायक/उपयोगी ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- सेठी, टी0टी(2005) 0, मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक विक्रेता एवं प्रकाशन, आगरा।
 - दत्त, रुद्र एवं के0पी0एम 0सुन्दरम(2010) , भारतीय अर्थव्यवस्था, एस 0चन्द एण्ड कं 0लिमिटेड, नई दिल्ली।
 - जालान, विमल21 (2008) वीं सदी में भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रभात प्रकाशन, आसफअली रोड, नई दिल्ली।
-

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Question)

- प्र.1 लोक उद्यमों के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले कल्याणकारी प्रभावों की व्याख्या कीजिए?
- प्र.2 लोक उद्यमों के संचालन में आने वाली आन्तरिक चुनौतियों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए?
- प्र.3 वैश्वीकरण के दौर में लोक उद्यमों के सामने पैदा होने वाली कठिनाइयों की विवेचना कीजिए?
- प्र.4 लोक उद्यमों की असफलताओं के लिए सरकारी नीतियाँ कहाँ तक जिम्मेदार हैं?